आगम - अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

(भाग-2)

रचयिता

धर्म-प्रभावक आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का

जीवन परिचय

पूर्व नाम	-	पारसचंद जैन
पिता जी	-	श्री शिखरचंद जैन
माता जी	-	श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	-	11.9.1967, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	-	फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	-	पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.) में
शिक्षण	-	बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	-	19.12.1984, अतिशय क्षेत्र, पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	-	1985, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	-	8.11.85, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	10.7.1987, अतिशय क्षेत्र थूवोनजी
मुनि दीक्षा	-	31.3.1988, सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी, महावीर जयन्ती।
दीक्षा गुरु	-	आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्यपद	-	25.01.2015 (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)
कृतियाँ व रचनाएँ	-	धर्म-भावना शतक, जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-वाणी, पर्यूषण-पीयूष, आर्जव-कविताएँ, जैन शासन का हृदय, आगम-अनुयोग, लोक -कल्याण (षोडसकारण) विधान, सदाचार सूक्ति-काव्य, अध्यात्म समयोदय, गुरु गुण-महिमा काव्य, आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग प्रभावना, श्री अंतादि शतक, विनयांजलि।
स्फुट रचनाएँ	-	जिनवर स्तुति, साम्य भावना, जम्बूस्वामी अष्टक, गोम्मटेश अष्टक, अहिंसा सूत्र गान, गिरनार स्तुति, विद्यासागर वंदनाष्टक, शांतिसागर विनयांजलि अष्टक, सम्मेदशिखर वंदन, जैन परंपरा गीत, मुनि मूरत के शिल्पी, विद्यागुरु विनयांजलि, गुरु विद्यासागर की छवि
पद्यानुवाद	-	गोमटेश थुदि, वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, द्रव्य-संग्रह, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका, भक्तामर स्तोत्र।

ॐ

सिद्धांत-भूषण पदवी हेतु
भाव-विज्ञान धार्मिक परीक्षा बोर्ड, भोपाल द्वारा स्वीकृत

आगम-अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

(भाग-2)

ॐ

रचयिता

आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

प्रकाशक

आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट, भोपाल

कृति - आगम-अनुयोग (भाग-2)

कृतिकार - आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

पावन स्मृति - पिच्छिका परिवर्तन समारोह 2024, पिड़ावा (राजस्थान) के उपलक्ष्य में

संस्करण - प्रथम

पुण्यार्जक - श्री प्रकाशचंद्र जी-विमला बाई जैन, मनोज-रचना जैन, शुचि जैन, प्रासुक जैन रन्नौद परिवार, अशोकनगर (म.प्र.)

प्रतियाँ - 1000

मुद्रक - पारस प्रिंटर्स, भोपाल
207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1
एम.पी.नगर, भोपाल
फोन : 0755-4260034, 9826240876

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान - आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट
4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास
बावड़ियाकलाँ, भोपाल-462039
मो. : 7049004653, 9425011357, 9425601161, 9425601832

© - सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

मूल्य - (पुनः प्रकाशन हेतु सहयोग)

चारों अनुयोग की कुंजी: आगम-अनुयोग

-इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह
(B.E.,M.A., P.H.D. संलग्न)

गृहस्थ जीवन में षट्-आवश्यकों के अंतर्गत स्वाध्याय भी एक महत्वपूर्ण कार्य है जैन धर्म को समझने हेतु यह आवश्यक है कि जैनागम का स्वाध्याय प्रतिदिन चलता रहे। स्वाध्याय के लिये आगम-अनुयोग एक अद्वितीय कृति है जिसके माध्यम से जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्यश्री 108 विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित परम पूज्य आध्यात्म योगी आचार्य गुरुदेव श्री आर्जवसागरजी महाराज ने मोक्षमार्गोंपयोगी अनेक बहुमूल्य कृतियों की रचना की है; जिनमें 'आगम-अनुयोग' एक ऐसी अनूठी, अद्वितीय (Unique)कृति है, जिसमें जैन धर्म के चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग) रूप ग्रंथों का सार समाहित है। यह बहुमूल्य कृति स्वाध्याय प्रेमी श्रावकों के लिये अत्यंत मूल्यवान एवं बहुउपयोगी है। इसके माध्यम से आचार्यश्री ने जैन आगम की, लोक-अलोक की विस्तृत जानकारी का समावेश इसमें किया गया है। यह कृति प्रश्नोत्तरी रूप में अत्यंत सरल शब्दों में लिखित है। इसके माध्यम से सम्यग्ज्ञान भूषण, सिद्धांत भूषण पदवी की उपाधि भी प्राप्त हो सकती है। आगम अनुयोग (प्रश्नोत्तर प्रदीप) का मुख्य उद्देश्य भव्यजीवों को स्वाध्याय के माध्यम से आगम ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कराना है।

गुरुवर की यह अनूठी कृति संपूर्ण जैन दर्शन को बताने वाली है एवं अत्यंत सरल शब्दों में आगम ग्रन्थों का मुख्य ज्ञान कराने वाली है। हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें गुरुवर रचित इस 'आगम-अनुयोग' कृति को पढ़ने का, इसका स्वाध्याय करने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

'आगम-अनुयोग' कृति में करीब 2164 प्रश्नोत्तरों के माध्यम से प्रथमानुयोग, करणानुयोग चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग का विशेष वर्णन किया है।

त्रेसठ (63) शलाका पुरुषों, कुलकरों आदि महापुरुषों संबंधी पुराणों का संपूर्ण सारांश 'आगम-अनुयोग' में प्रथमानुयोग में लगभग 404 प्रश्नों में समाहित है। यह प्रथमानुयोग का ज्ञान भव्यों के लिये अत्यंत उपकारी है। इसके ज्ञान से जीवों को सम्यग्दर्शनादि रूप बोधि और धर्मध्यान, शुक्लध्यान रूप समाधि की प्राप्ति होती है। इसी अनुयोग में भोगभूमि-कर्मभूमि की व्यवस्था, पुरुषार्थ की भी विस्तृत विवेचन है।

आचार्य गुरुदेव ने 63 शलाका पुरुषों में भी सर्वप्रथम तीर्थंकर महापुरुषों का वर्णन किया है कि तीर्थंकर कौन होते हैं? किस तरह तीर्थंकर प्रकृति का संचय होता है? भरत क्षेत्र, विदेह क्षेत्र संबंधी कितने-कितने तीर्थंकर होते हैं? किस तरह सौधर्मेन्द्र-शचि इन्द्राणि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु का जन्मोत्सव मनाते हैं? किस कारण से उन्हें वैराग्य होता है? किस तरह अयोध्या की रचना होती है? कैसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होता है? और उनका समवशरण कितना विशाल विस्तार वाला होता है? कौन से जीव उस समवशरण में उनकी दिव्यध्वनि रूप उपदेश को ग्रहण करते हैं? आदि विशेष शंकाओं का समाधान इस प्रथमानुयोग खण्ड में

प्रश्नोत्तर के माध्यम से किया गया है। तीर्थंकरों के विशेष वर्णन के बाद चक्रवर्ती और उनका वैभव आदि एवं बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव आदि महापुरुषों का भी उल्लेख इसमें समाहित है।

करणानुयोग का वर्णन भी प्रश्न 405 से लेकर 1274 प्रश्न तक किया गया है, जिसमें विशेष रूप से तीन लोक का वर्णन समाहित है। अर्थात् लोक-अलोक का विभाग, गणित, उसकी रचना एवं उसमें जीवों का निवास, युग परिवर्तन, प्ररूपणा आदि का ज्ञान प्राप्त कराने वाला यह करणानुयोग खण्ड है। तीन लोक (ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक) के वर्णन में अधोलोक में नरकादि एवं उनके पटलों का विस्तार, वहाँ का वातावरण, नरक के दुःख वहाँ उत्पन्न होने वाले जीवों की लेश्या, नरकों की आयु एवं वहाँ कौन से जीव किस कारण से जन्म लेते हैं आदि का भी मुख्यतः से वर्णन किया गया है। मध्यलोक में भी युग परिवर्तन, कल्पकाल, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल आदि का भी विशेष वर्णन है। एवं देवों की विस्तृत जानकारी भी इसमें समाहित है। (सर्वद्वीप और समुद्र, उनपर स्थित पर्वतों का, भोगभूमि-कर्मभूमि की व्यवस्था का, अकृत्रिम चैत्यालयों का भी विशेष वर्णन प्रश्नोत्तरों के माध्यम से किया गया है।)

चरणानुयोग का विशेष वर्णन प्रश्न 1275 से लेकर 1685 तक किया गया है, जिसमें मुनियों के; चारित्र, दीक्षादि के छह काल, सामाचार निर्यापक लक्षण एवं स्वाध्याय से लाभ, सत्य के भेद, एषणा समिति, आदि का विस्तृत वर्णन है। चरणानुयोग के प्रश्नों का ऐसा अनूठा संग्रह अन्यत्र और कही देखने को नहीं मिलता; जो कि गुरुदेव की लेखनी के माध्यम से इस कृति में मिलता है।

द्रव्यानुयोग के अंतर्गत प्रश्न 1686 से 2084 तक सात तत्त्व, कर्म-बंध, बंध-उदय-सत्त्व आदि प्रकृतियाँ, बंध त्रिभङ्गी, गुणस्थानों में प्रकृतियों का संवर, गुणश्रेणी निर्जरा नय, प्रमाण, द्रव्य, गुण, पर्याय आदि विषय का अति महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

एवं अंत में सैद्धान्तिक प्रकरण तो बहुत ही उपयोगी है; जिसमें छह अधिकारों द्वारा शास्त्र व्याख्यानादि का वर्णन है इस तरह चारों अनुयोगों की कुंजी यह 'आगम-अनुयोग' प्रश्नोत्तर-प्रदीप हम भव्य जीवों को कल्याणकारी रूप है यह कृति मोक्ष रूपी पद (शिवालय) को शीघ्र ही प्रदान करायेगी।

जिनके दर्शन से नयन धन्य हो जाते हैं, जिनको आहार दान देने से हाथ धन्य हो जाते हैं, जिनका सुमरण करने से मन धन्य हो जाता है, जिनका गुणगान करने से कण्ठ धन्य हो जाता है, जिनके पास जाने से जीवन धन्य हो जाता है। ऐसे आगम-अनुयोग ग्रन्थ के प्रणेता आर्जवगुण के धारी, तपस्वी संत परमोपकारी, धर्म प्रभावक, षोडशकारण व्रत प्रणेता, मोक्षमार्ग उपदेशक, आध्यात्मिक संत आचार्य गुरुदेव श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज के चरणों में बारंबार नमोस्तु.... नमोस्तु.... नमोस्तु।

अनुक्रमणिका

क्र.	विवरण	पृष्ठ क्र.
1.	आचारांग और मुनि चारित्र (अट्ठाईस मूलगुण और गुप्ति आदि वर्णन)	1
2.	यतियों (मुनियों) के दीक्षादि छह काल आदि (भय, मद, संज्ञा, असादना, मरण, सल्लेखना और मन्त्र स्मरणादि)	10
3.	निर्यापक-लक्षण एवं मुनियों के सामाचार आदि (आगन्तुक सामाचार, शिष्य और आर्यिका के गुरु आदि)	31
4.	स्वाध्याय से लाभ, सत्य के भेद, एषणा समिति आदि (छियालीस दोष और बत्तीस अन्तरायादि का वर्णन)	49
5.	आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका स्थानादि (बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमाएँ, सत्रह प्रकार के असंयम, बीस प्रकार के असंयम स्थान, उन्नीस प्रकार के पाप सूत्र, तैतीस प्रकार की असादनाएँ, नव-पदार्थ, पुद्गल के भेद और कर्म के भेदादि)	68
6.	बन्ध त्रिभंगी, बन्ध-उदय-सत्त्व (गुणस्थानों में बन्धादि और आबाधा कालादि)	89
7.	गुणस्थानों में प्रकृतियों का संवर, गुणश्रेणी निर्जरादि (गुणस्थानों में प्रकृतियों का क्षय व निर्जरा, ध्यान के भेद, मोक्ष और सिद्धों के प्रकार)	108
8.	आगम में नय, प्रमाण, नयों के प्रकार, द्रव्य-गुण-पर्याय (द्रव्यादि के भेद, उपनय और उनके भेद, अध्यात्म पद्धति में नय व उनके भेद व तीन प्रकार के संबन्धादि)	127
9.	सैद्धान्तिक प्रकरण- छह अधिकारों द्वारा शास्त्र व्याख्यानादि (मंगल का व्युत्पत्ति अर्थ, पर्यायवाची नाम आदि, चौबीस अनुयोग द्वार, निर्देशादि का लक्षण, सत्-संख्यादि का लक्षण, काल-अन्तर्मुहूर्तों का स्पष्टीकरण, गुणस्थानों में भाव, अल्पबहुत्व, चार अभाव और मोक्ष की भावना आदि)	147
10.	प्रश्न पत्र क्रमांक 1 से 9 तक	164

आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित

आगम-अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

मंगलाचरण

प्रथम तीर्थ के कर्त्ता प्रभुवर, आदिनाथ को करूँ नमन।
चौबीसी के अन्तिम जिनवर, महावीर हैं परम शरण॥
तीर्थंकर से उदित तीर्थ में, है आगम-अनुयोग प्रधान।
जिसे कहूँ मैं भविकजनों को, मिले मोक्ष-पद शीघ्र महान॥

चरणानुयोग

अध्याय-1
आचारांग और मुनि चारित्र
(अट्ठाईस मूलगुण व गुप्ति वर्णन)

प्र.1275 जिनागम में चरणानुयोग का लक्षण किस रूप है?

उत्तर जिनागम में गृहस्थों और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और उसकी रक्षामय आचारांग रूप चरणानुयोग कहा गया है।

प्र.1276 श्रुत स्कन्ध का आधारभूत आचारांग कितने पद प्रमाण है?

उत्तर श्रुत स्कन्ध का आधारभूत आचारांग अठारह हजार पद प्रमाण है।

प्र.1277 आचारांग कौन-से प्रमुख अधिकारों से निबद्ध और अर्थों से गम्भीर है?

उत्तर आचारांग मूलगुण, प्रत्याख्यान, संस्तर, स्तवाराधना, समयाचार, पंचाचार, पिंडशुद्धि, षडावश्यक, द्वादशानुप्रेक्षा, अनगार-भावना, समयसार, शीलगुण प्रस्तार और पर्याप्ति आदि अधिकार से निबद्ध होने से महान् अर्थों से गम्भीर है।

प्र.1278 आचारांग और किन विशेषों से सहित है?

उत्तर आचारांग लक्षण-व्याकरण, शास्त्र से सिद्ध; पद, वाक्य और वर्णों से सहित है। (आ.अनु. भाग-1 अध्याय-11 पृ.159)

प्र.1279 आचारांग किन महानात्मा द्वारा उपदिष्ट है?

उत्तर घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए केवलज्ञान के द्वारा जिन्होंने अशेष गुणों और पर्यायों से खचित छह द्रव्य और नव पदार्थों को जान लिया है ऐसे जिनेन्द्र के द्वारा उपदिष्ट है।

प्र.1280 आचारांग किन महान आत्मा द्वारा रचित है?

उत्तर आचारांग बारह प्रकार के तपों के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की ऋद्धियों से समन्वित गणधर देव के द्वारा रचित है।

प्र.1281 आचारांग किस आचार्य परम्परा से चला आ रहा है?

उत्तर जो मूलगुणों और उत्तरगुणों के स्वरूप भेद, उपाय, साधन, सहाय और फल के निरूपण करने में कुशल हैं ऐसे महान आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा है ऐसा यह आचारांग नाम का पहला अंग है। (भेद उपाय आदि के लक्षण आगे वर्णित हैं।)

प्र.1282 मुनियों के मूलगुण किन्हें कहते हैं?

उत्तर तपादिक उत्तरगुणों के आधारभूत महाव्रतादिक रूप प्रधान अनुष्ठान को मुनियों के मूलगुण कहते हैं।

प्र.1283 मूलगुणों से विशुद्ध संयत कौन होते हैं?

उत्तर जो सं-सम्यक् प्रकार से यत-उपरत हो चुके हैं अर्थात् पाप-क्रियाओं से निवृत्त हो चुके हैं वे संयत कहलाते हैं। प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली इस प्रकार छठवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के सभी मुनि संयत कहलाते हैं जो कि आदि में 7 और अन्त में 8 तथा मध्य में छह बार 9 अंक संख्या रखने से तीन कम नौ करोड़ (8,99,99,997) होते हैं।

प्र.1284 मूलगुणों के आचरण से संयत जीव इहलोक और परलोक में कौन-से फल को प्राप्त करते हैं?

उत्तर मूलगुणों का आचरण करते हुए संयत जीव इस लोक में पूजा, सर्वजन से मान्यता, गुरुता (बड़प्पन) और सभी जीवों से मैत्री भाव आदि को प्राप्त करते हैं तथा इन्हीं मूलगुणों के धारण व पालन से संयत जीव परलोक में देवों के ऐश्वर्य, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि के पद और सभी जनों में मनोज्ञता-प्रियता आदि प्राप्त करते हैं तथा अंत में सिद्धत्व को भी अवश्य प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.1285 साधक साधु के लिए साध्य क्या है?

उत्तर साधक-साधु के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय साध्य हैं या मूलगुणों द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप साध्य है।

प्र.1286 साध्य की प्राप्ति के लिए उपाय या साधन क्या हैं?

उत्तर साध्य की प्राप्ति के लिए साधन यम और नियम रूप परिणाम हैं।

प्र.1287 यम और नियम किसे कहते हैं?

उत्तर शाश्वतिक यावज्जीवन के लिए होने वाला यम कहलाता है। और अल्पकालिक अवधि रूप होने वाला नियम कहलाता है।

प्र.1288 यम रूप परिणाम कौन-से कहलाते हैं?

उत्तर महाव्रत आदि आजीवन के लिए धारण करने योग्य होने से यम रूप कहलाते हैं।

प्र.1289 नियम रूप परिणाम कौन-से कहलाते हैं?

उत्तर सामायिक, प्रतिक्रमण आदि अल्पकालिक होने से या रसादिक का त्याग जो अल्पकालावधि के लिए होने से नियम कहलाते हैं।

प्र.1290 मुनियों के मूलगुण और उत्तरगुण कौन-से कितनी संख्या में होते हैं?

उत्तर मुनियों के महाव्रत और समिति आदि मूलगुण अट्ठाईस होते हैं तथा बारह तप और बाईस परीषह ये उत्तर गुण चौंतीस होते हैं। (मू.चा.टी.पृ.5)

प्र.1291 मुनि किन्हें कहते हैं?

उत्तर 'मौनं धारयतीति मुनिः' इस परिभाषा से जो मौन धारण करते हैं अर्थात् अपने वचनादिक से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पापों को नहीं करते अपितु पाप वचनों से मौन धारण करते हैं वे मुनि कहलाते हैं।

प्र.1292 जिनवर किन्हें कहते हैं?

उत्तर कर्म शत्रु को जो जीतते हैं वे 'जिन कहलाते हैं'। उनमें वर अर्थात् श्रेष्ठ हैं वे जिनवर हैं। 'कर्मारातीन् जयन्तीति जिनास्तेषांवरा श्रेष्ठाः जिनवराः' (मू.ला., पृ.6)

प्र.1293 जिनवर ने यतियों के अट्ठाईस मूलगुण किस तरह के बतलाये हैं?

उत्तर पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक, लोंच, अचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितिभोजन, और एक भक्त ये अट्ठाईस मूलगुण जिनेन्द्र देव या जिनवरों ने यतियों-मुनियों के लिए बतलाये हैं।

प्र.1294 महाव्रत इतने महान क्यों कहलाते हैं?

उत्तर ये महाव्रत प्राणियों की हिंसा की निवृत्ति में कारणभूत हैं और मोक्ष की प्राप्ति के लिए निमित्तभूत हैं तथा जिनका अनुष्ठान महान पुरुषों द्वारा किया जाता है अतः वे महान कहलाते हैं।

प्र.1295 समिति किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यक् अयन अर्थात् प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। सम्यक् अर्थात् शास्त्र में निरूपित क्रम से गमन आदि क्रियाओं में प्रवृत्ति करना समिति कही जाती हैं।

प्र.1296 पंच महाव्रत और समितियाँ किसके समान हैं?

उत्तर पंच महाव्रत मुख्य फसल के समान तथा पाँच समितियाँ व्रत की रक्षा हेतु बाड़ स्वरूप होती हैं।

प्र.1297 पांच इन्द्रिय निरोध किस तरह घटित होता है?

उत्तर पांच इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति नहीं करना रोध कहलाता है। सम्यक् ध्यान के प्रवेश में प्रवृत्ति करना अर्थात् धर्म, शुक्ल ध्यान में इन्द्रियों को प्रविष्ट करना यह इन्द्रिय निरोध कहलाता है।

प्र.1298 आवश्यक का लक्षण क्या है?

उत्तर अवश्य करने योग्य कार्य को आवश्यक कहते हैं। आवश्यक का दूसरा नाम निश्चय-क्रिया भी है।

अर्थात् सर्वकर्म के निर्मूलन या क्षय करने में समर्थ नियम विशेष को आवश्यक कहते हैं।

प्र.1299 केशलोंच करने का अर्थ क्या है?

उत्तर हाथों से मस्तक, दाढ़ी और मूँछ के बालों का उखाड़ना लोंच कहलाता है।

प्र.1300 अचेलकत्व की परिभाषा क्या है?

उत्तर चेल-यह शब्द उपलक्षण मात्र है, इससे श्रमण अवस्था के अयोग्य सम्पूर्ण परिग्रह को चेल शब्द से कहा जाता है। नहीं है चेल जिनके, वे अचेलक हैं, अचेलक का भाव अचेलकत्व है अर्थात् सम्पूर्ण वस्त्र, आभरण आदि का परित्याग करना अचेलक्य मूलगुण कहलाता है।

प्र.1301 अस्नान गुण से क्या तात्पर्य है?

उत्तर जल का सिंचन, उबटन, (तैलमर्दन) अभ्यंगस्नान आदि का त्याग अस्नान मूलगुण कहलाता है।

प्र.1302 क्षिति (भूमि) शयन मूलगुण का पालन किस तरह किया जाता है?

उत्तर पृथ्वी पर पाषाण-शिला एवं तृण, फलक (पाटे) आदि पर शयन रूप क्षिति शयन मूलगुण का पालन किया जाता है।

प्र.1303 स्थाण्डिलशायी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर खुले आकाश (स्थान) पर सोने रूप स्थाण्डिलशायी गुण कहलाता है।

प्र.1304 अदन्तधावन गुण किसे कहते हैं?

उत्तर दन्त घर्षण नहीं करना अदन्त धावन है अर्थात् तांबूल, दन्तकाष्ठ (दातोन) आदि का त्याग करना अदन्तधावन मूलगुण है।

प्र.1305 स्थिति भोजन कैसे किया जाता है?

उत्तर पैरों में चार अंगुल अन्तराल से खड़े होकर भोजन करना स्थितिभोजन कहलाता है।

प्र.1306 स्थिति भोजन मूलगुण से जीवन के अंत में कौन-सा शुभ संकेत प्राप्त होता है?

उत्तर स्थिति भोजन से जब पैरों की शक्ति कमजोर होने लग जाती है तब सल्लेखना विधि प्रारम्भ करने की शिक्षा मिलती है क्योंकि मुनि का भोजन (आहार) कदापि बैठकर या लेटकर नहीं हुआ करता है।

प्र.1307 एकभक्त मूलगुण का अर्थ क्या है?

उत्तर सूर्य प्रकाश से आलोकित-दिन में एक ही बार आहार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) का ग्रहण करना एक भक्त मूलगुण कहलाता है।

प्र.1308 आचार ग्रन्थ रचना रूप प्रवृत्ति कितने प्रकार से की जाती है?

उत्तर आचार ग्रन्थ (जिसमें मूलगुणादिक वर्णन हो ऐसा मूलाचार) की रचना रूप प्रवृत्ति तीन प्रकार से होती है- उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा।

1. नाम रूप से मूलगुणों का कथन करना उद्देश्य कहलाता है।

2. कथित पदार्थों के स्वरूप की व्यवस्था करने वाला धर्म लक्षण कहलाता है।

3. जिनका लक्षण किया गया है ऐसे पदार्थों का जैसा- का तैसा लक्षण है या नहीं, इस प्रकार से प्रमाणों के द्वारा अर्थ का निर्णय (निश्चय) करना परीक्षा कहलाता है।

प्र.1309 ग्रन्थ व्याख्या के तीन प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर ग्रन्थ व्याख्या संग्रह, विभाग और विस्तार रूप से तीन प्रकार की मानी गई है। जिसे सूत्र, वृत्ति और वार्तिक स्वरूप से अथवा सूत्र, प्रतिसूत्र और विभाषा सूत्र के स्वरूप से भी व्याख्यायित किया जाता है। (विशेष देखें पृ. 34 प्र.1523)

प्र.1310 हिंसा का लक्षण क्या है?

उत्तर प्रमत्त-योग से प्राणों का व्यपरोपण-वियोग करना हिंसा है।

प्र.1311 प्रमत्त-योग किसे कहते हैं?

उत्तर कषाय सहित अवस्था को प्रमाद कहते हैं। (कषाय वह जो बुद्धिपूर्वक या अबुद्धि पूर्वक अथवा व्यक्ताव्यक्त रूप निद्रादिक के समय में भी होती हो उसे प्रमाद में ग्रहण किया जा सकता है।)

प्र.1312 अहिंसा महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर प्रमत्त योग से होने वाली हिंसा का त्रियोग से परिहार करना- सभी जीवों के ऊपर दया करना या दया का होना अहिंसा महाव्रत है।

प्र.1313 असत्य का लक्षण क्या है?

उत्तर जो सत् अर्थात् प्रशस्त रूप नहीं है वह अप्रशस्त कथन असत् या प्राणी पीड़ा जनक अनृत वचन असत्य कहलाता है।

प्र.1314 सत्य महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर सत् शब्द प्रशंसावाची है प्रशस्त शब्द सत् का पर्यायवाची है। ऋत सत्य को कहते हैं। जो ऋत नहीं वह अनृत है और जो पीड़ा जनक होने से अप्रशस्त हैं। वे चाहे विद्यमान अर्थ विषयक हों चाहे अविद्यमान अर्थ विषयक हों, अप्रशस्त ही कहे जाते हैं। ऐसे असत्य वचनों का त्रियोग से त्याग करना ही सत्य महाव्रत है।

प्र.1315 चौर्य या स्तेय का लक्षण क्या है?

उत्तर रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई और बिना पूछे ग्रहण की हुई पर वस्तु अदत्त शब्द से कही जाती है, ऐसी अदत्त का आदान अदत्तादान अर्थात् चोरी कहलाता है।

प्र.1316 अचौर्य महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर सचित्ताचित्त सूक्ष्मादिक या उपकरणादिक अदत्त वस्तु के ग्रहण का त्रियोगपूर्वक त्याग अचौर्य महाव्रत कहलाता है।

प्र.1317 अब्रह्म या मैथुन का लक्षण क्या है?

उत्तर चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से राग परिणाम आविष्ट हुए स्त्री और पुरुष का परस्पर में स्पर्श के प्रति

जो इच्छा है उसका नाम मिथुन और मिथुन की क्रिया को मैथुन अब्रह्म कहते हैं।

प्र.1318 ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर ब्रह्म शब्द का अर्थ जीव होता है। उस आत्मवान्-जितेन्द्रिय जीव का चेतनाचेतन-सचित्ताचित्त स्त्री संभोग के त्रियोग से अभाव रूप वृत्ति का नाम चर्या है। इस प्रकार की चर्या; जो मैथुन का त्याग करना है वह ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है।

प्र.1319 परिग्रह का लक्षण क्या है?

उत्तर सर्व ओर से पर पदार्थ में आसक्ति का नाम परिग्रह है। वह मूलरूप से बाह्य और अभ्यन्तर उपधि के भेद से दो प्रकार का है। उनमें बाह्य परिग्रह के दस भेद एवं अभ्यन्तर परिग्रह के चौदह भेद होते हैं।

बाह्य परिग्रह- क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य(चाँदी), सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य (वस्त्र) और भाण्ड (बर्तन)।

अभ्यन्तर- मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद।

प्र.1320 अपरिग्रह महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह की विमुक्ति-त्याग करना संग-विमुक्ति है। अर्थात् श्रमण के अयोग्य सर्ववस्तु का त्याग करना और त्रियोग से परिग्रह में आसक्ति का अभाव होना परिग्रह त्याग रूप अपरिग्रह महाव्रत कहलाता है। (समिति आदि वर्णन देखिये जैनागम संस्कार, अ.11)

प्र.1321 सदाचार-प्रवृत्ति वाले आचार्य के वचन स्खलन में दोष का अभाव मानने पर क्या असत्य कहलता है?

उत्तर सदाचारी आचार्य के द्वारा अन्यथा अर्थ कर देने पर भी दोष नहीं है अर्थात् यदि आचार्य सदाचार प्रवृत्ति वाले पाप भीरु हैं और कदाचित् अर्थ का वर्णन करते समय कुछ अन्यथा बोल जाते हैं या उनके वचन स्खलित हो जाते हैं तो उसे दोष रूप नहीं समझना चाहिए। अथवा आचार्यादि के वचन स्खलन में दोष को छोड़ कर अर्थात् दोष को ग्रहण न करके जो वचन बोलना है वह सत्यव्रत है। (मूलाचार गा.6, टीका-पृष्ठ 13)

प्र.1322 जीव निबद्ध, जीव अप्रतिबद्ध और जीव सम्भव परिग्रह कौन-से कहलाते हैं?

उत्तर 1. मिथ्यात्व, वेद, राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि अथवा दासी, दास, गो, अश्व आदि ये जीव निबद्ध अर्थात् जीव आश्रित परिग्रह हैं।

2. जीव से पृथग्भूत क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य आदि जीव से अप्रतिबद्ध, जीव से अनाश्रित, परिग्रह हैं।

3. जीवों से उत्पत्ति है जिनकी ऐसे मोती, शंख, सीप, चर्म, दाँत, कम्बल आदि अथवा श्रमणपने के अयोग्य क्रोध आदि परिग्रह जीव सम्भव परिग्रह कहलाते हैं।

प्र.1323 ईर्या समिति के अन्तर्गत जो मुनियों के गमन हेतु दिवस में प्रासुक मार्ग से गमन करना कहा

गया है वहाँ प्रासुक मार्ग का अर्थ क्या है?

उत्तर 'प्रगता असवो यस्मिन्'- निकल गये हैं प्राणी जिसमें से उसे प्रासुक कहते हैं। ऐसा प्रासुक-निरवद्यमार्ग है। उस प्रासुक मार्ग से अर्थात् हाथी, गधा, ऊँट, गाय, भैंस और मनुष्यों के समुदाय (या वाहनादि) के गमन से उपमर्दित हुआ जो मार्ग है वह प्रासुक मार्ग कहलाता है।

प्र.1324 मुनि रूप के चार चिह्न (लिंग) कौन-से माने गये हैं?

उत्तर मुनि रूप के अचेलक्य (निर्वस्त्रता), केशलोंच, पिच्छिका ग्रहण और शरीर संस्कार रहितपना ये चार चिह्न (लिंग) होते हैं।

प्र.1325 जैन साधु, साध्वी स्व हस्त से केशलोंच क्यों करते हैं?

उत्तर जैन साधु, साध्वी दीनवृत्ति को दूर करने एवं स्वाभिमान और स्वावलम्बन पूर्ण जीवन जीने हेतु स्वहस्त से केशलोंच करते हैं तथा ऐसा करना निर्ममता (वैराग्य) का प्रतीक है।

प्र.1326 स्थिति भोजन मूलगुण में साधु किस तरह खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर दीवाल आदि का सहारा न लेकर जीव-जन्तु से रहित तीन स्थान की भूमि देखकर समान पैर रखकर खड़े होकर दोनों हाथ की अंजुली बनाकर भोजन (आहार) करना स्थिति भोजन कहलाता है।

प्र.1327 स्थिति भोजन में दीवाल आदि का सहारा न लेने से तात्पर्य क्या है?

उत्तर स्थिति भोजन में दीवाल का भाग या खंभे आदि का सहारा न लेकर, पैरों में चार अंगुल प्रमाण का अन्तर रखकर खड़े होकर आहार लेते हैं, साधु न बैठकर आहार ले सकते हैं न लेटकर और न तिरछे आदि स्थित होकर आहार ले सकते हैं।

प्र.1328 साधु तीन स्थान की भूमि देखकर आहार ग्रहण करते हैं, इसका अर्थ क्या है?

उत्तर साधु; आहार के समय अपने पैर रखने के स्थान को, उच्छिष्ट (जूठन) गिरने के स्थान को और परोसने वाले (आहार देने वाले दाता) के स्थान को जीवों के गमनागमन या वध आदि से रहित-विशुद्ध देखकर आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1329 साधु खड़े होकर अंजुली में आहार लेते हैं, इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर साधु खड़े होकर अंजुली-पुट में अर्थात् पाणिपुट या पाणी-पात्री हो अथवा कर-पात्र में आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1330 साधु किस उद्देश्य से स्थिति भोजन का अनुष्ठान करते हैं?

उत्तर साधु यह विचार करते हैं कि जब तक मेरे हाथ पैर चलते हैं तब तक ही आहार ग्रहण करना योग्य है अन्यथा नहीं; ऐसा सूचित होते ही कि मेरा शरीर अब स्थिति भोजन करने में अशक्त हो रहा है तब वे सल्लेखना की साधना का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया करते हैं। तथाहि वे साधु बैठकर दोनों हाथों से या बर्तन में लेकर के या अन्य के हाथ से मैं भोजन नहीं करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा के निर्वहन के लिए खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1331 साधु के आहार हेतु पाणिपात्र ही क्यों योग्य है बर्तन योग्य क्यों नहीं?

उत्तर साधु विचार करते हैं कि बर्तन रखने और शुद्ध करने की अपेक्षा अपना हस्त रूपी पाणिपात्र ही शुद्ध रहता है तथा अंतराय हो जाने पर पूरी भोजन से भरी हुई थाली को छोड़ना नहीं पड़ता है अन्यथा थाली में खाते समय अंतराय हो जाने पर पूरी भोजन से भरी हुई थाली को छोड़ना पड़ेगा, इसमें दोष लगेगा। तथा इन्द्रिय संयम और प्राणी संयम का परिपालन करने के लिए भी साधु स्थिति भोजन के साथ पाणी पात्री हुआ करते हैं।

प्र.1332 एक भक्त (एकाशन) मूलगुण का पालन साधु किस तरह किया करते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण अहोरात्र में दिन की दो बेलाओं में से किसी एक बेला में सूर्य उदय और अस्त के काल में से तीन-तीन घड़ी से रहित मध्य काल में एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्तकाल तक आहार ग्रहण करना साधु का एक भक्त मूलगुण कहलाता है।

प्र.1333 एक भक्त मूलगुण में सूर्योदय और सूर्यास्त के काल में तीन-तीन घड़ी से रहित मध्यकाल ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर प्रातःकालीन तीन घड़ी (घटिकाएँ) काल छोड़कर आहार ग्रहण करने में कुछ आवश्यक अभिप्राय रूप बिन्दु विचारणीय जानना चाहिए-

(1) रात्रिकालीन जीवों की उत्पत्ति सूर्योदय के वातावरण में पूर्ण रूपेण रुक जाती है।

(2) मुनियों की आवश्यक क्रियायें सम्पूर्ण हो जाती है।

(3) मुनिगण निहार इत्यादिक क्रियाओं से निवृत्त हो जाते हैं।

(4) श्रावकगण जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति आदि क्रियाओं से निवृत्त हो जाते हैं।

(5) श्रावकों द्वारा की जाने वाली रसोई से संबन्धी क्रिया पूर्ण हो जाती है।

इसी तरह सायंकाल में रात्रि कालीन तीन घड़ी पूर्व चर्या पूर्ण करने का अभिप्राय यह होता है कि-

(1) तीन घड़ी प्रारम्भ से ही वातावरण में रात्रिकालीन जीवों की उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है।

(2) मुनिवर चर्या-उपरान्त स्व-गन्तव्य स्थल तक पहुँच सकते हैं।

(3) मुनिवर प्रतिक्रमण आदिक आवश्यक क्रियायें समय-पूर्वक पूर्ण कर सकते हैं।

(4) श्रावकगण भी अपनी आवश्यक क्रियायें समय पूर्वक सम्पूर्ण कर सकते हैं।इत्यादि।

प्र.1334 मुनिराज एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्त तक आहार ग्रहण करते हैं इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर मुनिराज के लिए स्वशक्ति- बल, क्षुधा और स्वास्थ इत्यादि की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता को ध्यान में रखते हुये यह एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्त तक का काल आहार ग्रहण के योग्य बतलाया गया है।

प्र.1335 यह आहार ग्रहण का काल आहारचर्या को निकलने से लेकर ग्रहण किया गया है अथवा आहार को प्रारंभ करने से लेकर ग्रहण किया गया है?

उत्तर यह काल का परिमाण सिद्धभक्ति करने के अनन्तर आहार ग्रहण करने का है, न कि आहार के लिये

भ्रमण करते हुये विधि न मिलने के पहले का भी है। अर्थात् यदि साधु आहार हेतु भ्रमण कर रहे हैं, उस समय का काल इसमें शामिल नहीं है।

प्र.1336 साधु को जो श्रावक उच्चासन के रूप में काष्ठ का आसन प्रदान करता है और साधु उस आसन को इस प्रकार मानकर कि यह काष्ठ का आसन इतना ऊँचा है; जिस पर से कोई मूषक (चूहा) आदि जन्तु भी छलांग लगाकर लाँघ सकते हैं तथा इस आसन के ऊपर खड़े होकर मुझे आहार लेने से कोई चींटी आदि जीवों से कोई अधिक बाधा या हिंसादि दोष की बाधा तथा शीतादिक की बाधा भी नहीं होगी ऐसा जानकर वे साधु उस आसन पर खड़े होकर आहार ग्रहण कर सकते हैं, तो क्या दोष है?

उत्तर ऐसा करने में कोई दोष नहीं है। अर्थात् काष्ठ के आसन पर खड़े होकर आहार ग्रहण कर सकते हैं। और जो वर्तमान में प्रचलन में भी है।

प्र.1337 नियुक्त तप और गुप्तियाँ मूलगुणों में किस तरह गर्भित हैं?

उत्तर मुनियों के द्वारा नित्य पालन किये जाने वाले षडावश्यकों में जो सामायिक तथा कायोत्सर्ग रूप कृति-कर्मों में समता पूर्वक कायक्लेश, व्युत्सर्ग आदि किये जाते हैं उनमें ध्यान रूप मन, वचन और काय की स्थिरतामय गुप्तियाँ भी देखी जाती है अतः मूलगुणों में इनका पालन होना संभव है।

प्र.1338 नैमित्तिक रूप से तप और गुप्तियाँ उत्तर गुणों में किस तरह गर्भित होते हैं?

उत्तर यदा-कदा नैमित्तिक रूप से होने वाले उपवास और योगधारणादिक उत्तर गुणों में तप और गुप्तियों का अनुपालन होना बन जाता है। अतः नैमित्तिक रूप से तप और गुप्तियाँ उत्तर गुणों में गर्भित होना संभव है।

अध्याय-2
यतियों (मुनियों) के दीक्षादि छह काल आदि
(एवं भय, मद, संज्ञा, असादना, मरण, सल्लेखना, मन्त्रस्मरणादि)

प्र.1339 यतियों के (मुनियों के) जीवन में होने वाले छः काल कौन से हैं?

उत्तर यतियों के जीवन के छः काल-1. दीक्षा काल 2. शिक्षा काल 3. गणपोषण काल 4. आत्मसंस्कार काल 5. सल्लेखना काल और 6. उत्तमार्थ ये छह काल होते हैं।

प्र.1340 यतियों का दीक्षा काल किस तरह का होता है?

उत्तर जब कोई आसन्न भव्य-जीव भेदाभेद रत्नत्रयात्मक निर्ग्रंथ आचार्य को प्राप्त करके आत्माराधना के अर्थ या प्रयोजन से बाह्यभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर निर्ग्रंथ-दीक्षा ग्रहण करता है, वह मुनि का दीक्षा काल है।

प्र.1341 यतियों का शिक्षा-काल किस तरह का होता है?

उत्तर दीक्षा के अनन्तर निश्चय, व्यवहार रत्नत्रय तथा परमात्म-तत्त्व के परिज्ञान के लिये उसके प्रतिपादक अध्यात्म और आचार शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करना शिक्षा-काल है।

प्र.1342 यतियों का गणपोषण काल किस तरह का होता है?

उत्तर शिक्षा के पश्चात् निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग में स्थित होकर उसके जिज्ञासु भव्य प्राणी गणों को परमात्मोपदेश से पोषण करना गणपोषण काल है।

प्र.1343 यतियों का आत्मसंस्कार काल किस तरह का होता है?

उत्तर गणपोषण के अनंतर गण (स्वसंघ) को छोड़कर जब निज परमात्मा में शुद्ध संस्कार किया जाता है तब आत्मसंस्कार काल कहलाता है।

प्र.1344 यतियों का सल्लेखना काल किस तरह का होता है?

उत्तर तदनन्तर उसी आत्मसंस्कार के हेतु परमात्म पदार्थ में स्थित होकर रागादि विकल्पों के कृश करने रूप भाव-सल्लेखना तथा उसी के प्रयोजनार्थ कायक्लेश आदि के अनुष्ठान रूप द्रव्य-सल्लेखना है। और इन दोनों का आचरण करने का काल सल्लेखना काल कहलाता है।

प्र.1345 यतियों का उत्तमार्थ काल किस तरह का होता है?

उत्तर सल्लेखना धारण के पश्चात् बहिर् द्रव्यों में इच्छा का निरोध है लक्षण जिसका, ऐसे तपश्चरण रूप (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप) निश्चय चतुर्विधाराधना; जो कि तद्भव मोक्षगामी ऐसे चरम देह अथवा उससे विपरीत जो भवान्तर से मोक्ष जाने के योग्य हैं इन दोनों के होती हैं, वह उत्तमार्थ काल कहलाता है।

प्र.1346 मुनियों के द्वारा त्याज्य सप्तभय कौन से हैं?

उत्तर मुनियों के द्वारा त्याज्य इह-लोक, पर-लोक, अत्राण, अगुप्ति, मरण, वेदना और आकस्मिक नामक सप्त भय हैं।

प्र.1347 इह-लोक भय किसे कहते हैं?

उत्तर इस लोक में शत्रु, विष, कण्टक आदि से भयभीत होना इहलोक भय है।

प्र.1348 पर-लोक भय किसे कहते हैं?

उत्तर अगले भव में कौन-सी गति मिलेगी? वहाँ क्या होगा ? इत्यादि सोचकर भयभीत होना, परलोक भय है।

प्र.1349 अत्राण भय किसे कहते हैं ?

उत्तर मेरा कोई रक्षक नहीं है, ऐसा डर पैदा होना अत्राण भय है।

प्र.1350 अगुप्ति भय किसे कहते हैं?

उत्तर इस क्षेत्र या ग्राम आदि में परकोटे आदि साधन नहीं हैं, अतः शत्रु आदि से कैसे मेरी रक्षा होगी ऐसा चिंतवन करना अगुप्ति भय है।

प्र.1351 मरण भय किसे कहते हैं?

उत्तर मृत्यु से भयभीत होना, मरण भय कहलाता है।

प्र.1352 वेदना भय किसे कहते हैं?

उत्तर रोग आदिक से उत्पन्न होने वाली पीड़ा से डरना, वेदना भय है।

प्र.1353 आकस्मिक भय किसे कहते हैं?

उत्तर अकस्मात मेघ गर्जना, विद्युतपात आदि से डरना, आकस्मिक भय है।

प्र.1354 मुनियों के द्वारा त्याज्य अष्ट मद कौन-से हैं?

उत्तर विज्ञान मद, ऐश्वर्य मद, आज्ञा मद, कुल मद, बल मद, जाति मद, तपो मद और रूप मद इस तरह मुनियों के द्वारा त्याज्य अष्ट मद (गर्व) हैं।

प्र.1355 विज्ञान मद किसे कहते हैं?

उत्तर अक्षर ज्ञान और संगीत आदि के ज्ञान से गर्वित होना, विज्ञान मद है।

प्र.1356 ऐश्वर्य मद किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्यादि सम्पत्ति के वैभव से गर्वित होना, ऐश्वर्य मद है।

प्र.1357 आज्ञा मद किसे कहते हैं?

उत्तर अपने द्वारा दिए गये आदेश का उलंघन न होने रूप गर्व का होना आज्ञा मद है।

प्र.1358 कुल मद किसे कहते हैं?

उत्तर पिता के वंश परंपरा की शुद्धि का अथवा इक्ष्वाकु वंश, हरिवंश आदि में जन्म लेने रूप गर्व का होना,

कुल मद कहलाता है।

प्र.1359 बल मद किसे कहते हैं ?

उत्तर शरीर, आहार आदि से उत्पन्न हुई शक्ति से गर्वित होना बल मद है।

प्र.1360 जाति मद किसे कहते हैं?

उत्तर माता के वंश परंपरा की शुद्धि से गर्वित होना जाति मद कहलाता है।

प्र.1361 तपो मद किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर के संतापित (तप में तपाने) से रूप गर्वित होना तपो मद है।

प्र.1362 रूप मद किसे कहते हैं?

उत्तर समचतुरस्र संस्थान, गौर आदि वर्ण, सुन्दर कांति और यौवन से उत्पन्न हुई रमणीयता से गर्वित होना रूप मद है।

प्र.1363 यतियों के द्वारा त्याज्य चार संज्ञायें कौन-सी हैं?

उत्तर यतियों के द्वारा त्याज्य (वैराग्य द्वारा विजय पाने योग्य) आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप चार संज्ञायें होती हैं।

प्र.1364 आहार संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर आहार को देखने से अथवा उसकी तरफ उपयोग लगाने से जो उदर के खाली रहने से तथा असातावेदनीय की उदय और उदीरणा के होने पर जीव के नियम से आहार संज्ञा होती है।

प्र.1365 भय संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर अत्यन्त भयंकर पदार्थ के देखने से, पहले देखे हुए भयंकर पर्याय (पदार्थ) के स्मरण से, अधिक निर्बल होने से और अन्तरंग में भयकर्म की उदय-उदीरणा होने रूप चार कारणों से भय संज्ञा होती है।

प्र.1366 मैथुन संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर स्वादिष्ट और गरिष्ठ रस युक्त भोजन करने से, काम विषय की ओर उपयोग लगाने से तथा कुशील आदि रूप क्रीड़ा करने से और वेदकर्म की उदय उदीरणा होने रूप चार कारणों से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।

प्र.1367 परिग्रह संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर इत्र, भोजन, उत्तम स्त्री आदि भोगोपभोग के साधनभूत पदार्थ के देखने से, पहले भुक्त पदार्थों का स्मरण करने से और ममत्व परिणामों के होने से तथा लोभकर्म की उदय-उदीरणा होने रूप चार कारणों से परिग्रह संज्ञा होती है।

प्र.1368 यतियों के द्वारा त्याज्य तीन गारव (गौरव) कौन-से हैं?

उत्तर यतियों के द्वारा त्याज्य ऋद्धि गारव, रस गारव, सात गारव ये तीन गारव हैं।

प्र.1369 ऋद्धि गारव किसे कहते हैं?

उत्तर मेरे शिष्य आदि बहुत हैं, दूसरे यतियों के पास इस तरह नहीं हैं, ऐसा अभिमान होना ऋद्धि (वैभव) गारव कहलाता है।

प्र.1370 रस गारव किसे कहते हैं?

उत्तर मुझे आहार में रसयुक्त पदार्थ सहज ही उपलब्ध होते रहते हैं, ऐसा अभिमान होना रस गारव कहलाता है।

प्र.1371 सात गारव किसे कहते हैं?

उत्तर मैं यति होकर भी इन्द्रत्वसुख, चक्रवर्तीसुख अथवा तीर्थंकर जैसे सुख का उपभोग ले रहा हूँ, ये दीन यति सुखों से रहित हैं, इत्यादि रूप से अभिमान करना साता गारव कहलाता है।

प्र.1372 असादना किसे कहते हैं? और यतियों द्वारा त्याज्य असादनाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर अस्तिकाय पाँच ही हैं, जीव निकाय छह हैं, महाव्रत पाँच हैं, प्रवचन मातृकाएँ आठ हैं और पदार्थ नव हैं- ये तेतीस ही यहाँ तेतीस असादना नाम से कहे गए हैं। अर्थात् इनकी विराधना या अनादर ही असादना कहलाती है।

प्र.1373 अस्तिकाय की असादना किस रूप होती है?

उत्तर अस्ति-विद्यमान है काय निचय अर्थात् प्रदेशों का समूह जिसमें वह अस्तिकाय है। वे पाँच हैं- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। (काल में प्रदेशों का प्रचय न होने से वह अस्ति मात्र है, अस्तिकाय नहीं है।) इनका अनादर या विराधना करना अस्तिकाय की असादना है।

प्र.1374 षट्काय जीवों की असादना किस रूप होती है?

उत्तर पृथ्वीकायिक आदि छह जीव निकाय की विराधना या अनादर करना षट्काय जीवों की असादना है।

प्र.1375 महाव्रत की असादना किस रूप होती है?

उत्तर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप जो महाव्रत हैं, उनकी विराधना या अनादर करना (अर्थात् उत्साह पूर्वक महाव्रतों का पालन नहीं करना) महाव्रत की असादना है।

प्र.1376 प्रवचन-मातृका की असादना किस रूप होती है?

उत्तर पाँच समिति और तीन गुप्ति इन आठ प्रवचन मातृका का अनादर या विराधना करना प्रवचन मातृका की असादना है।

प्र.1377 नव-पदार्थ की असादना किस रूप होती है?

उत्तर जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इनका अनादर या विराधना करना(अर्थात् नव पदार्थों पर श्रद्धा का अभाव होना) नव-पदार्थ की असादना है।

प्र.1378 कोई भव्य साधु आत्मसंस्कार काल से लेकर सन्यास (सल्लेखना) काल तक की आलोचना गुरु के पास किस भाव से प्रकट करता है?

उत्तर जो अपने में स्वयं के प्रकट करने योग्य दोष हैं उनकी मैं स्वयं निन्दा करता हूँ, जो पर के समक्ष कहने

योग्य दोष है उनको मैं आचार्य आदि के सामने प्रकट करते हुये अपनी गर्हा करता हूँ और मैं चारित्राचार की आलोचनापूर्वक सम्पूर्ण बाह्य अभ्यन्तर उपधि (विषय-कषाय) की आलोचना करता हूँ अर्थात् सम्पूर्ण उपधि को अपने से दूर करता हूँ। तात्पर्य यह हुआ कि जो उपधि अथवा परिग्रह निन्दा करने योग्य है उनकी मैं निन्दा करता हूँ, जो गर्हा करने योग्य हैं उनकी गर्हा करता हूँ और समस्त बाह्य अभ्यन्तर रूप उपधि की आलोचना करके अपने से दूर करता हूँ। इस प्रकार वे भव्य-साधु आत्मसंस्कार काल से लेकर सन्यास काल तक की आलोचना गुरु के पास प्रकट करते हैं।

प्र.1379 यतिलोग जिन निर्यापक के पास आलोचना प्रकट करते हैं वे कैसे आचार्यों के गुणों से समन्वित होते हैं?

उत्तर जो ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र इन चारों में अविचल हैं, धीर हैं, आगम में निपुण हैं और रहस्य अर्थात् गुप्त दोषों को प्रकट (प्रचारित) नहीं करते हैं ऐसे गुणों से समन्वित आचार्य आलोचना सुनने के योग्य होते हैं।

प्र.1380 आलोचना के अनन्तर यति सल्लेखना के पूर्व किस तरह की क्षमा याचना प्रकट करते हैं?

उत्तर राग से अर्थात् माया, लोभ या स्नेह से; द्वेष से अर्थात् क्रोध से, मान से या अप्रीति से मैंने आपके प्रति जो अयोग्य कार्य किया है अथवा जो मैंने प्रमाद से जिसके प्रति कुछ भी वचन कहे हैं। उन सभी साधुजनों से मैं क्षमा माँगता हूँ अर्थात् उनको संतुष्ट करता हूँ। तात्पर्य, यह हुआ कि मैंने राग या द्वेषवश जो किंचित् भी अयोग्य अनुष्ठान किया है, उसके लिए और जिस किसी साधु को भी अयोग्य कहा है उन सभी से मैं क्षमा चाहता हूँ। इस तरह क्षमा-याचना प्रकट करते हैं।

प्र.1381 शिष्य द्वारा प्रायश्चित्त ग्रहण की इच्छा से गुरु के समक्ष एकान्त में निवेदित किये गये गुप्त दोषों को अन्य किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना गुरु का कौन-सा गुण कहलाता है?

उत्तर एकान्त में निवेदित गुप्त दोषों को रहस्य में रखना गुरु का अपरिश्रावी गुण कहलाता है।

प्र. 1382 मूलाचार ग्रन्थ में मरण के तीन प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर मूलाचार ग्रन्थ में मरण के बालमरण, बालपण्डित-मरण और पण्डित-मरण इस तरह तीन प्रकार बतलाये गये हैं।

प्र. 1383 उपर्युक्त तीन मरणों के स्वामी कौन-से जीव होते हैं?

उत्तर असंयत जीव बाल कहलाते हैं अतः उनका मरण बालमरण कहलाता है। संयातासंयत -देशव्रती बाल पण्डित मरण कहलाते हैं क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों के वध से विरत न होने के कारण ये बाल और द्वीन्द्रिय आदि जीवों के वध से विरत होने के कारण पण्डित (विवेकी) हैं अतः इनका मरण भी बाल-पण्डित मरण कहलाता है। त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा के त्यागी ऐसे संयत ज्ञानी मुनीश्वरों को पण्डित कहते हैं। जिसमें छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक वाले संयत मुनीश्वर विवक्षित हैं। ऐसे पण्डितों का मरण अर्थात् देह का परित्याग अथवा शरीर का अन्यथा रूप होना

पण्डित मरण है जिसके द्वारा केवल शुद्ध ज्ञान के धारी केवली भगवान् तथा निर्ग्रन्थ साधु मरण करते हैं।

प्र. 1384 अन्यत्र ग्रन्थों में मिथ्यादृष्टि के मरण को बाल-बाल मरण कहा गया है जिसका वर्णन यहाँ क्यों नहीं किया है?

उत्तर जो अकुटिल-सरल परिणामी हैं, सम्यग्ज्ञान और दर्शन से युक्त हैं वे इन उपर्युक्त तीन मरणों वाले कहलाते हैं। अतः मूलाचार ग्रन्थ में सल्लेखना के प्रसंग पर मिथ्यादृष्टि के बाल-बालमरण को ग्रहण नहीं किया है।

प्र. 1385 केवली भगवान के मरण को यहाँ पण्डित-पण्डित मरण क्यों नहीं कहा?

उत्तर पण्डित-पण्डित मरण को यहाँ पर पण्डित मरण में ही अन्तर्भाव कर लिया गया है क्योंकि संयम के स्वामी में सामान्यतः भेद नहीं है। (मू.चा. भा.1, गा-59, पृ.64)

प्र. 1386 बालमरण आदि तीन सम्यक्मरणों के अतिरिक्त बाल-बाल मरण रूप कुमरण किन कारणों से प्राप्त होते हैं?

उत्तर जो मिथ्या रूप नष्ट बुद्धि वाले हैं, जिनकी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञायें उत्कृष्ट रूप से प्रकट हैं तथा जो मायाचार रूप कुटिल परिणामों व अशुभ ध्यानों में लीन हैं वे असमाधि से दुर्गति को प्राप्त होते हैं। अर्थात् वे कर्मक्षय करने वाले आराधक नहीं हो सकते हैं। (मू.चा.भा.1, गा.60)

प्र. 1387 यदि मरणकाल में परिणाम बिगड़ जाते हैं तो क्या होगा?

उत्तर मरण की विराधना हो जाने पर देवदुर्गति होती है तथा निश्चित रूप से बोधि की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है, और फिर आगामी काल में उस जीव का संसार अनन्त हो जाता है।

प्र. 1388 मरण की विराधना से क्या तात्पर्य है?

उत्तर मरण की विराधना का अर्थ सम्यक्त्व की विराधना ऐसा अर्थ लेना चाहिए।

प्र. 1389 देव दुर्गति का अर्थ क्या है?

उत्तर भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क आदि देवों में उत्पत्ति होना देवदुर्गति कहलाती है। या कान्दर्प, आभियोग्य, किल्विषक, स्वमोह और आसुरी ये देव दुर्गतियाँ कहलाती हैं।

प्र. 1390 देव-दुर्गति हो जाने के उपरान्त इस जीव का और क्या होता है?

उत्तर ऐसे जीव को सम्यक्त्व या रत्नत्रय रूप बोधि की प्राप्ति होना अतीव दुर्लभ है। वह आगामी काल में इस चतुर्गति रूप संसार में अनन्त काल तक भटकता रहता है।

प्र. 1391 एक बार सम्यक्त्व होने पर संसार अनन्त कैसे रहेगा? क्योंकि वह अर्द्धपुद्गल प्रमाण ही तो है अतः अर्द्धपुद्गल को अनन्त संज्ञा कैसे दी?

उत्तर यह अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल भी अनन्त नाम से कहा जाता है क्योंकि यह केवलज्ञान का ही विषय है। (मू.चा.भाग1, गा.61)

प्र. 1392 असमाधि रूप कुमरण करने वाले जीव भवनत्रिक के अलावा वैमानिक देवों में भी कौन-से देवों में उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर ऐसे जीव भवनत्रिक के अलावा वैमानिक देवों में भी आभियोग्य और किल्विषक जाति के देवों में जन्म ले लेते हैं। क्योंकि वहाँ पर भी अनेक जाति के देवों में या वाहन जाति के तथा किल्विषक जाति के देवों में सम्यग्दृष्टि का जन्म नहीं होता है।

प्र. 1393 कान्दर्प भावना (कर्म) क्या है और उसका फल क्या है?

उत्तर कन्दर्प का भाव कान्दर्प है अर्थात् उप्लव स्वभाव वाला दुर्गुण (शील और गुणों का नाश करने वाला भाव) तथा जो राग के उद्रेक से सहित होता हुआ स्वयं असत्य बोलता है और बहुजनों में उसी का प्रतिपादन करता है वह ऐसे कंदर्प कर्म या भावों से कान्दर्प जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. 1394 आभियोग्य कर्म क्या है और उससे कहाँ उत्पत्ति होती है?

उत्तर जो साधु इन्द्रिय सुख के निमित्त तन्त्र-मन्त्र (ग्रहादि प्रपंच)आदि नाना प्रकार के प्रयोग करता है और हँसी, काय की कुचेष्टा सहित हँसी-कौत्कुच्य, भू-कर्म (वास्तु आदि)और लोक में आश्चर्य उत्पन्न करना (जादू-टोना)आदि रूप बहुत से बाग्जाल को करता है वह इन आभियोग्य क्रियाओं से युक्त होता हुआ हाथी, घोड़े, मेष, महिष आदि रूपवाहन जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. 1395 किल्विष भावना का स्वरूप क्या है और उससे होने वाली उत्पत्ति किस तरह की होती है?

उत्तर जो तीर्थंकर, संघ, चैत्य और सूत्र के प्रतिकूल हैं अर्थात् उनके प्रति विनय नहीं करते हैं और दूसरों को ठगने (धन एंठने) में कुशल हैं, वे इस किल्विष कार्यों के द्वारा पटह आदि वाद्य बजाने वाले किल्विषक जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. 1396 तीर्थंकर कौन एवं उन से प्रतिकूल होने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर संसार समुद्र से पार होने के उपाय रूप तीर्थ को करने वाले तीर्थंकर हैं, उन्हें अर्हन्त भट्टारक कहते हैं। जो साधु भी सम्यक्त्व से च्युत होकर तीर्थंकर की आज्ञा पालन नहीं करते वे तीर्थंकर के प्रतिकूल हैं।

प्र. 1397 संघ किसे कहते हैं?

उत्तर ऋषि, यति, मुनि और अनगार को संघ कहते हैं। ये सभी नग्न दिगम्बर मुनि होते हैं। अथवा मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इनको भी चतुर्विध संघ कहते हैं। अथवा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को संघ कहते हैं। (मू.चा.भा.1,पृ.70)

प्र. 1398 चैत्य किसे कहते हैं?

उत्तर सर्वज्ञ (वीतरागी, केवलज्ञानी) देव की प्रतिमा को चैत्य कहते हैं।

प्र. 1399 सूत्र किसे कहते हैं?

उत्तर बारह अंग, (ग्यारह अंग-चौदह पूर्व) रूप श्रुत-आगम को सूत्र कहते हैं।

प्र. 1400 सम्मोह भावना का स्वरूप और उससे होने वाली देव-दुर्गति क्या है?

उत्तर जो उन्मार्ग अर्थात् मिथ्यात्व आदि का उपदेशक है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग की विराधना करने वाला है, तथा इसी सन्मार्ग के विपरीत है अर्थात् स्वतीर्थ का प्रवर्तक है। वह साधु मिथ्यात्व अथवा माया के प्रपंच से अन्य लोगों को विपरीत बुद्धि वाला करता हुआ संमोह कर्म के द्वारा स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले सम्मोह जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. 1401 आसुरी भावना किस तरह की होती है एवं उससे होने वाली हानि कौन-सी होती है?

उत्तर जो क्षुद्र अर्थात् चुगलखोर है अथवा हीन परिणाम वाला, क्रोध स्वभाव वाला, मान कषायी है, मायाचार-प्रवृत्ति रखता है; तथा तपश्चरण करते हुए और चारित्र को पालते हुए भी जिसके परिणामों में संक्लेश भाव बना रहता है अर्थात् परिणामों में निर्मलता नहीं रहती; जो अनन्तानुबन्धी रूप बैर को बाँधने में रुचि रखता है अर्थात् किसी के साथ कलह हो जाने पर उसके साथ अंतरंग में ग्रन्थि के समान बैर-भाव बाँध कर रखता है ऐसा जीव इन असुर भावनाओं के द्वारा असुर जाति में, अन्तर्भेद रूप एक अंबावरीष जाति है उसमें जन्मता है। ये अंबावरीष जाति के देव ही नरकों में जाकर नारकियों को परस्पर में पूर्वभव के बैर का स्मरण दिला-दिलाकर लड़ाया करते हैं और उन्हें लड़ते-भिड़ते, दुःखी होते देखकर प्रसन्न होते हैं। (मू.चा.भाग1, पृ.71)

प्र. 1402 बोधि की दुर्लभता को आगम में किस तरह से बतलाया गया है?

उत्तर जो अतत्त्व के श्रद्धान सहित हैं, भविष्य में संसार-सुख की आकांक्षा रूप निदान से सहित हैं और अनन्तानुबन्धी कषाय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति रूप कृष्ण लेश्या से संयुक्त रौद्र परिणामी हैं ऐसे जीव यदि यहाँ मरण करते हैं तो पुनः सम्यक्त्व सहित शुभ परिणाम रूप बोधि उनके लिए बहुत ही दुर्लभ है। तात्पर्य यह है कि यदि एक बार सम्यक्त्व होकर छूट जाय तो पुनः अधिक से अधिक यह जीव किंचित् (कुछ) कम अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र काल तक संसार में भटक सकता है। अतः यहाँ ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि का अर्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र काल ही शेष रहता है और बोधि सम्यक्त्व के बिना नहीं हो सकती है अतः बोधि का सम्यक्त्व के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है अतः बोधि की दुर्लभता और सुलभता को बतलाते हुए सम्यक्त्व के माहात्म्य को बतलाकर आचार्यदेव ने प्रकारान्तर से बोधि का लक्षण ही बतलाया है ऐसा समझना।

प्र. 1403 बोधि की सुलभता को आगम ग्रन्थों में किस तरह बतलाया है?

उत्तर जो तत्त्वों में रुचि रूप सम्यग्दर्शन से युक्त हैं, इह लोक और परलोक की आकांक्षा से रहित हैं, शुक्ल लेश्यामय निर्मल परिणाम वाले हैं ऐसे जीव संन्यास विधि से मरते हैं अतः उन्हें बोधि की प्राप्ति सुलभ ही है।

प्र.1404 अनन्त संसार का कारण क्या है?

उत्तर जो पुनः गुरु के प्रतिकूल हैं, मोह की बहुलता से सहित अर्थात् राग-द्वेष-परिणामी हैं, अतिचार सहित चारित्र पालते हैं, कुत्सित (अशोभनीय) आचरण वाले हैं वे असमाधि से मरण करते हैं और अनन्त

संसारी हो जाते हैं।

प्र. 1405 परीत संसारी कैसे होते हैं?

उत्तर जो अर्हन्त देव के प्रवचन रूप आगम के अच्छी तरह भक्त हैं, मन्त्र-तन्त्र की या ग्रन्थों की आकांक्षा से रहित होकर भक्ति पूर्वक गुरुओं के आदेश का पालन करते हैं, मिथ्यात्व भाव रहित हैं और शुद्ध परिणामी हैं वे चतुर्गति में गमन रूप संसार को परिमित करने वाले अथवा संसार को समाप्त करने वाले हो जाते हैं।

प्र. 1406 दुर्गतियों में भटकाने वाले महा अज्ञान रूप बालबाल मरण किस तरह के होते हैं?

उत्तर शस्त्रों के घात से मरना, विष भक्षण कर मरना, अग्नि में जल जाना, जल में प्रवेश कर मरना और पापक्रियामय द्रव्य का सेवन करके मरना ये सभी मरण; जन्म-मृत्यु की परम्परा को बढ़ाने वाले महाअज्ञानी जीवों के मरण हैं।

प्र. 1407 सल्लेखना का इच्छुक भव्यात्म क्षपक बालबाल मरण के अतिरिक्त कौन से मरणों से एवं दुःखों से भयभीत होकर पण्डित मरण की इच्छा करता है?

उत्तर सल्लेखना का इच्छुक भव्यात्म क्षपक उद्वेग मरण और जातिमरण तथा नरकों के दुःखों से भयभीत होकर मैं सल्लेखना पूर्वक मरण कर पण्डित मरण की इच्छा करता हूँ ऐसा विचार करता है।

प्र. 1408 उद्वेग मरण किसे कहते हें?

उत्तर इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के दुःख से जो मरण होता है अथवा अन्य किसी त्रास से जो मरण होता है उसको उद्वेग मरण कहते हैं।

प्र. 1409 जाति मरण किसे कहते हैं?

उत्तर जन्म लेते ही मर जाना या गर्भ में मर जाना जातिमरण कहलाता है।

प्र. 1410 संसार के मरणों से संवेगी और निर्विण्य स्वभावी; मरण के विषय में किस तरह का चिंतवन करता है?

उत्तर मैंने तीनों लोकों में अनन्त बार बालबाल-मरण किये हैं उनमें जन्म की परम्परा बढ़ती रही, अतः अब मैं कुमरण से होने वाली हानि को जानकार धर्म में प्रीति तथा शरीरादि से विरक्ति धारण करता हुआ दर्शन और ज्ञान के साथ एकता धारण करता हुआ पण्डित मरण अर्थात् मुनि अवस्था के साथ होने वाले मरण को प्राप्त करूँगा।

प्र. 1411 सब तरह के मरणों में पण्डित मरण ही किसलिए शुभ है?

उत्तर एक बार प्राप्त किया पण्डित मरण सौ-सौ जन्मों का नाश कर देता है अतः ऐसे ही मरण से मरण करना चाहिए कि जिससे मरण सुमरण होकर आत्मा को मोक्षपद की प्राप्ति हो जावे। शरीर और इन्द्रियों का वियोग हो जाना जीव का मरण है इसलिए ऐसे मरण से देह छोड़ना चाहिए कि जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े। अतः मैं अब मुनिपद धारण कर योग्य समयानुसार आहार जल का भी त्याग कर पंच

नमस्कार मंत्र पूर्वक पण्डित मरण नामक सल्लेखना विधि से मरण करूँगा, क्षपक ऐसा दृढ़ निश्चय करता है।

प्र. 1412 सल्लेखना रूप संन्यास के समय भूख प्यासादिक की बाधायें होने पर क्षपक किस तरह के चिन्तवन को मन में धारण करे?

उत्तर ऐसे समय में नरक की वेदनाओं को देखना चाहिए एवं संसार में मैंने कौन-से दु:खों को कई बार प्राप्त नहीं किया है? ऐसा चिंतवन कर धैर्य धारण करना चाहिए।

प्र. 1413 संन्यास के समय विषय अतृप्ति के सम्बन्ध में क्या विचार करना चाहिए?

उत्तर चतुर्गति के जन्म-मरण रूप आवर्त अर्थात् भँवर में मैंने अन्न व रसादि पदार्थों या पुद्गल वर्गणाओं को अनन्त बार ग्रहण किया है, उनका आहार रूप से भक्षण भी किया है और खलभाग, रसभाग रूप से परिणमाया भी है अर्थात् उन्हें जीर्ण भी किया है, किन्तु आज तक उनसे मुझे तृप्ति नहीं हुई प्रत्युत आकांक्षाएँ बढ़ती ही गयी हैं, ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1414 काम और भोगों की वस्तुओं के सेवन तथा भोग करने पर तृप्ति क्यों नहीं मिलती? इसके लिए कोई उदाहरण दीजिए।

उत्तर जैसे अग्नि; तृण और काष्ठ के समूह से तृप्त नहीं होता है अर्थात् बुझ नहीं सकती है प्रत्युत बढ़ती जाती है। जैस हजारों नदियों से लवण समुद्र तृप्त नहीं होता है, ठीक उसी तरह इच्छित सुख के साधन भूत आहार, स्त्री, वस्त्र आदि काम-भोगों से इस जीव को तृप्त व संतुष्ट करना शक्य नहीं है।

प्र. 1415 काम भोगों की इच्छा मात्र से पाप होता है? इसका उदाहरण बतलाइये।

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य के कर्ण में तन्दुल मत्स्य होते हैं जो कि तन्दुल (चावल) के समान ही लघु शरीर वाले हैं किन्तु उनमें भी वज्रवृषभनाराच संहनन होता है। वे मत्स्य आदि जन्तु महामत्स्य के मुख में प्रवेश करते हुए और निकलते हुए तमाम जीवों को देखते हैं तो सोचते रहते हैं कि यदि मेरा बड़ा शरीर होता तो मैं इन सबका भक्षण कर लेता, एक को भी नहीं छोड़ता किन्तु वे भक्षण नहीं कर पाते हैं। तथापि इस भावना मात्र से पाप बन्ध करते हुए वे जीव भी सातवीं पृथ्वी सम्बन्धी नरक में चले जाते हैं। अत: साधुओं व सज्जनों को मन में भी काम भोगों एवं सदोष आहार आदि का चिंतवन भी करना युक्त नहीं है।

प्र. 1416 आचार्य परमेष्ठी; क्षपक के लिए सदोष आहार आदिक से बचा कर शुद्ध परिणामों को धारण करने हेतु किस प्रकार का उपदेश देते हैं?

उत्तर मति और बुद्धि अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण के ज्ञान से सम्पन्न हुआ साधु उद्योग-पुरुषार्थ करके सबसे पहले परिकर्म-तप का अनुष्ठान कर लेता है, वह इहलोक और परलोक के सुखों की अभिलाषा रूप निदान को नहीं करता है। पश्चात् वही साधु कषायों का मंथन करके क्षमा-गुण से सम्पन्न हो जाता है। ऐसे साधु को आचार्य कहते हैं कि हे क्षपक! अब तुम समाधिमरण सह स्वाध्याय

मरण का अनुष्ठान करो। वह क्षपक सद्य: समाधि में तत्पर हो कृतकृत्य हो जाता है।

प्र. 1417 आचार्य देव; समाधि-सल्लेखना के अंतकाल में क्षपक को सावधानी वर्तने हेतु एक उदाहरण देकर किस तरह सतर्कता का उपदेश-संदेश देते हैं?

उत्तर जैसे उत्तम-बहुमूल्य रत्नों से भरे हुए जहाज आदि पत्तन अर्थात् समुद्र तट तक पहुँच जाने पर भी खेवटिया-कर्णधार से रहित होने पर प्रमाद-असावधानी के कारण निश्चित ही वे समुद्र में डूब जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही क्षपक रूपी नौकाएँ भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूपी रत्नों से परिपूर्ण हों और उनके पास सिद्धि के समीप में ही रहने वाला संन्यास रूपी पत्तन हो, फिर भी निर्यापकाचार्य के बिना प्रमाद के कारण वे क्षपक रूपी नौकाएँ संसार समुद्र में डूब जाती हैं अत: परिणामों की विशुद्धि में सावधानी व सतर्कता आवश्यक है।

प्र. 1418 आचार्य भगवन् संन्यास काल में क्षपक के प्रयत्न एवं निर्यापकाचार्य की सावधानी के सम्बन्ध में क्या उपदेश देते हैं?

उत्तर संन्यास-समाधि के इच्छुक साधु को प्रयत्न पूर्वक पूर्व संघ से निर्मोही बन निर्यापकाचार्य की खोज करना चाहिए तथा उनका आश्रय लेकर अन्तिम समय तक पूर्ण सावधानी रखना चाहिए। निर्यापकाचार्य के बिना क्षपक को मरण काल में वेदनादि के निमित्त से यदि किञ्चत् भी प्रमाद आ गया तो क्षपक रत्नत्रय से च्युत होकर संसार में डूब जायेगा किन्तु यदि निर्यापकाचार्य कुशल अप्रमादी होंगे तो वे सावधान करते रहेंगे अत: एक साधु की सल्लेखना हेतु अड़तालीस मुनियों की आवश्यकता मानी गई है। (★ सल्लेखना का काल एवं विधि इत्यादिक का वर्णन देखें जैनागम संस्कार-अध्याय 15, पृष्ठ 141)

प्र. 1419 वृद्धावस्था में बारह वर्ष की सल्लेखना धारण करने से पूर्व अगर आकस्मिक व्याधि, अग्नि, शत्रु, सिंह या व्याघ्रादि की बाधा उपस्थित हो जाने पर साधु किस तरह संक्षेप-प्रत्याख्यान रूप सल्लेखना ग्रहण करता है?

उत्तर सर्वप्रथम जिस साधु ने सम्पूर्ण प्राणी हिंसा को, असत्य वचन को, सम्पूर्ण अदत्त ग्रहण और मैथुन (अब्रह्म) तथा परिग्रह को छोड़ दिया है, वह साधु सभी प्राणियों में मेरा साम्यभाव है, किसी के साथ भी मेरा बैर नहीं है, मैं सम्पूर्ण आकांक्षाओं को छोड़कर शुभ परिणाम रूप समाधि को प्राप्त करता हूँ ऐसा कृत संकल्पित होता है।

प्र. 1420 सल्लेखना के काल में साधु किन-किन भावों को छोड़ता हुआ क्या करता है ?

उत्तर सर्व आहार त्याग विधि को अंगीकार करता हुआ आहार आदि संज्ञाओं को, आकांक्षाओं और कषायों को तथा सम्पूर्ण ममत्व को भी मैं छोड़ता हूँ तथा सभी से क्षमाभाव धारण करता हूँ इस तरह संकल्पित होता है।

प्र. 1421 संक्षेप प्रत्याख्यान रूप सल्लेखना में साधु का प्रत्याख्यान किस तरह का होता है?

उत्तर इस देशकाल में उपसर्ग आदि के प्रसंग में यदि मेरा जीवन नहीं रहेगा तो मेरे द्वारा चतुर्विध आहार का त्याग है और यदि उस देश काल में उपसर्ग आदि का निवारण हो जाने पर जीवन का अस्तित्व रहता है तो मैं आहार ग्रहण करूँगा। इस तरह जीवन पर संदेह होने पर संक्षेप प्रत्याख्यान किया जाता है।

प्र. 1422 जब अपने मरण का निश्चय हो जाता है तब साधु किस तरह कृत संकल्पित होता है?

उत्तर ऐसे अन्तिम काल में साधु; पेय पदार्थ को भी छोड़कर सम्पूर्ण आहार विधि का मैं त्याग करता हूँ और मन-वचन-काय पूर्वक दोनों प्रकार की उपधि (परिग्रह) का भी त्याग करता हूँ, इस तरह कृत संकल्पित होता है।

प्र. 1423 उत्तमार्थ विधि किसे कहते हैं?

उत्तर सल्लेखना के अन्तिम काल में साधु के द्वारा जो कुछ भी मेरा अभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह है उसको तथा आहार और शरीर को मैं जीवन भर के लिए छोड़ता हूँ ऐसा कृत संकल्पित होना उत्तमार्थ विधि कहलाती है।

प्र. 1424 सल्लेखना के समय क्षपक द्वारा किये जाने वाले तीन तरह के प्रतिक्रमण कौन-से हैं?

उत्तर सल्लेखना के काल का प्रथम सर्वातिचार प्रतिक्रमण है। दूसरा त्रिविध आहार त्याग प्रतिक्रमण है। तथा तीसरा उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है।

प्र. 1425 सर्वातिचार प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर दीक्षाकाल का आश्रय लेकर आज तक जो भी दोष हुए हैं उन्हें सर्वातिचार कहते हैं। सल्लेखना को ग्रहण कर क्षपक निर्यापकाचार्य के मूल में जीवन के सम्पूर्ण दोषों की आलोचना कर सर्वातिचार प्रतिक्रमण करता है।

प्र. 1426 त्रिविध आहार त्याग प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर खाद्य-अन्नाहार, स्वाद्य-लड्डू आदि पकवान या इलायची आदि और लेह्य-रबड़ी, खीर इत्यादि का सम्पूर्ण रूप से यावज्जीवन त्याग करना त्रिविधाहार त्याग प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1427 उत्तमार्थ प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर अन्त में यावज्जीवन, मोक्ष के लिए पानक वस्तु (दूध, रस, तक्र-छाछ व जलादि) का त्याग कर देना सो उत्तमार्थ प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1428 जीवन में या सल्लेखना में और कौन-कौन से प्रतिक्रमण किये जाते हैं?

उत्तर दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिकादि तथा सर्वातिचार आदि प्रतिक्रमणों के अतिरिक्त योग, इन्द्रिय, शरीर और कषाय भावों के भी प्रतिक्रमण आगम में वर्णित किये गये हैं। जो निज दोषों की निंदा, गर्हा और आलोचना तथा त्याग पूर्वक यथावसर किये जाते हैं।

प्र. 1429 योग प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर साधु द्वारा मन, वचन और काय का निग्रह किया जाना योग प्रतिक्रमण कहलाता है। अर्थात् जिसमें

मन, वचन और काय को शुभ ध्यान हेतु परिवर्तित कर दिया जाता है।

प्र. 1430 इन्द्रिय प्रतिक्रमण किसे कहा जाता है?

उत्तर पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करना अर्थात् उनके विषयों को चिंतवन में नहीं लाना इन्द्रिय प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1431 शरीर प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर पाँच प्रकार के शरीरों का त्याग कर देना अर्थात् उनसे पूर्ण रूपेण निस्पृह हो जाना शरीर प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1432 कषाय प्रतिक्रमण किस तरह से किया जाता है?

उत्तर क्रोधादि सोलह कषायों का एवं हास्यादि नव नोकषाओं का निग्रह करना अर्थात् उनका कृश करना कषाय प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1433 सल्लेखना में स्वाध्याय मरण का अर्थ क्या है?

उत्तर सल्लेखना में स्वाध्याय मरण से अपने जीवन में जो आत्मा के सम्बन्ध में किये गये ग्रंथों के अध्ययन, चिन्तवन का स्मरण करते हुए मरण करना ऐसा अर्थ है। (मू.चा.भा.1, पृ.81)

प्र. 1434 सल्लेखना के समय क्षपक का अभ्यन्तर योग क्या कहलाता है?

उत्तर सल्लेखना के समय क्षपक द्वारा जो आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करते हुए सम्यक् ध्यान होता है वह अभ्यन्तर योग कहलाता है। इस योग का आश्रय लेकर क्षपक आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञाओं में मूर्छित न होता हुआ शरीर छोड़े ऐसा आचार्य भगवन् का उपदेश है। (मू.चा., भाग 1, पृ.75)

प्र. 1435 सल्लेखना के समय पंच नमस्कार मंत्र सह शरीर छोड़ने से क्या तात्पर्य है?

उत्तर रत्नकरण्डक में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं और णमो लोए सव्व साहूणं रूप पंच पदों सह, पूर्ण सावधानी पूर्वक, शरीर छोड़ने का उपदेश दिया है ऐसा जानना चाहिए।

प्र. 1436 सल्लेखना के काल में एक पद में या द्वितीय पद में निरन्तर संवेग को प्राप्त करता है इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर जो सर्व संग का त्यागी मुनि वीतराग मार्ग-सर्वज्ञदेव के प्रवचन के किसी एक पद में या 'अर्हद्भ्यो नमः' इस प्रथम पद में या द्वितीय पद अर्थात् 'सिद्धेभ्यो नमः' इस पद में निरन्तर संवेग को प्राप्त होता है या धर्म में हर्ष भाव को प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ लेना चाहिए।

प्र. 1437 सल्लेखना के काल में एक बीज पद का आश्रय लेता है इसका क्या अर्थ है?

उत्तर किसी एक बीज पद में अर्थात् 'ॐ ह्रीं नमः' या 'अ-सि-आ-उ-सा नमः' आदि बीजाक्षर पदों का आश्रय लेता है ऐसा अर्थ होता है इसलिए मरण के अन्त में अर्थात् कण्ठगत प्राण के होने पर या

अन्तिम समय में इन पदों का अवलम्बन नहीं छोड़ना चाहिए। अथवा जो भी कोई साधु जैसे भी बने वैसे (वीतरागरूप) जिस पद में प्रीति को प्राप्त कर सकते हैं, उस पद को उन्हें नहीं छोड़ना चाहिए अर्थात् उन्हें उसी पद का आश्रय लेना चाहिए। (मू.चा,भा.1, पृ.88)

प्र. 1438 संन्यास काल में किसकी आराधना से कौन आराधक हो जाता है?

उत्त्र आराधना से उपयुक्त अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों आराधनाओं के अनुष्ठान में तत्पर हुआ साधु द्वादशांग रूप श्रुत स्कन्ध से या पंच नमस्कार पद से एक भी तथ्य-सत्यभूत श्लोक को ग्रहण कर यदि संन्यास (समाधि-सल्लेखना) काल में उसका चिंतवन करता है तो वह आराधक-रत्नत्रय का स्वामी-अधिकारी हो जाता है। अतः तुम्हें भी किसी एक पद का अवलम्बन लेकर उसे नहीं छोड़ना चाहिए ऐसा आचार्य उपदेश देते हैं।

प्र. 1439 यदि सल्लेखना में क्षपक को पीड़ा उत्पन्न हो जावे तो क्या औषधि है?

उत्तर जिनेन्द्रदेव की वाणी महान् औषधि है यह विषय-सुख का विरेचन करा देती है। वृद्धावस्था और मरण रूप जो महा व्याधियाँ हैं उनको तथा सम्पूर्ण वेदना रूप दुःखों को दूर करा देती है। इसीलिए यह जिनवाणी अमृतमय है। ऐसी जिनेन्द्रवाणी रूप धर्मामृत का निरन्तर अपनी कर्णञ्जलि से पान करते रहना चाहिए।

प्र. 1440 समाधि मरण के समय कौन-सी शरण का विचार करना चाहिए?

उत्तर समाधि मरण के समय क्षपक-साधु के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम और तीर्थंकर (महावीर) आदि वीतराग शरण का विचार करना चाहिए। (मू.चा.,भाग1, पृ.89)

प्र. 1441 ज्ञान रूप शरण का विचार किस तरह करना चाहिए?

उत्तर जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में जानना सो ज्ञान है वह ज्ञान ही मेरा शरण अर्थात् आश्रय है। ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1442 दर्शन रूप शरण का विचार किस तरह करना चाहिए?

उत्तर प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य इनकी अभिव्यक्ति लक्षण रूप जो परिणाम है वह दर्शन है, और वही मेरा शरण है अर्थात् संसार में मेरी रक्षा करने वाला है। ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1443 चारित्र रूप शरण का चिन्तवन किस तरह करना चाहिए?

उत्तर संसार के कारणों का अभाव करने के लिए उद्यत हुए ज्ञानवान पुरुष का जो अनुष्ठान है वह चारित्र है, वही मेरा सहाय है ऐसा चिन्तवन करना चाहिए।

प्र. 1444 तप रूप शरण की विचारणा किस तरह करना चहिए?

उत्तर जो शरीर और इन्द्रियों को तपाता है और दुष्टाष्ट कर्मों को जलाता है वह तप है। वह बारह भेद वाला है ऐसी विचारणा करना चाहिए।

प्र. 1445 संयम रूप शरण का विचार किस तरह करना चाहिए?

उत्तर प्राणियों की रक्षा तथा इन्द्रियों का संयम-दमन करना संयम है। जिसकी परिरक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1446 तीर्थंकर (भ.महावीर) की शरण का चिन्तवन किस तरह करना चाहिए?

उत्तर तीर्थंकरों से ही हमें संसार समुद्र से तारने वाला तीर्थ प्राप्त हुआ है, अतः वे तीर्थंकर (भ.महावीर) आदि मेरी शरण हैं, रक्षक हैं ऐसा चिन्तवन सदा ही करते रहना चाहिए।

प्र. 1447 तीर्थंकर महावीर जिनेन्द्र किससे सम्पन्न थे?

उत्तर तीर्थंकर महावीर जिनेन्द्र विज्ञान और ज्ञान से सम्पन्न थे।

प्र. 1448 विज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर विशेष ज्ञान या भेद विज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

प्र. 1449 विज्ञान को चारित्र क्यों कहा जाता है?

उत्तर क्योंकि वह भेद विज्ञान (देह और आत्मा की भिन्नता रूप अनुभव) सराग और वीतराग चारित्र पूर्वक संभव है जो यथाख्यात चारित्र से परिपूर्ण है।

प्र. 1450 वीर प्रभु का ज्ञान कैसा माना जाता है?

उत्तर वीर प्रभु का ज्ञान बोधमयी अथवा केवलज्ञान से परिपूर्ण माना जाता है।

प्र. 1451 वीर प्रभु किसे उद्योत करने वाले माने जाते हैं?

उत्तर वीर प्रभु सम्पूर्ण विश्व या लोक सम्बन्धी भव्य जीवों के लिए उद्योत प्रकाश करने वाले अथवा पदार्थों के प्रकाशक माने जाते हैं।

प्र. 1452 वीर प्रभु किसे जीतने वाले कहलाते हैं?

उत्तर वीर प्रभु पण्डित-पण्डित मरण से सम्पन्न होकर जरा और अनादि मरण को जीतने वाले कहलाते हैं।

प्र. 1453 क्षपक की सल्लेखना में महापुण्य से बड़भागी अड़तालीस मुनिगण क्या कार्य कर वैयावृत्त का सौभाग्य प्राप्त करते होंगे?

उत्तर क्षपक मुनिवर की सेवा में एक-एक वैयावृत्त के कार्य के लिए दो-चार, दो-चार मुनिगण नियुक्त होकर निर्यापकाचार्य की आज्ञा पालन करते हैं जैसे- 1. कोई मुनि के पैर दबाते हैं, 2. तो कोई हस्त दबाते हैं 3.कोई सिर दबाते हैं, 4. तो कोई पीठ दबाते हैं, 5. कोई करवट दिलाते हैं, 6. तो कोई धर्म ध्यानों की महिमा गाते हैं, 7. कोई शुचिता करवाते हैं, 8. तो कोई आहार को ले जाते हैं, 9. कोई आहार में खड़ा करते हैं, 10. तो कोई आहार शोधन क्रिया करते हैं, 11. कोई भीड़ में रक्षा करते हैं, 12. तो कोई पहरा देकर भी खड़े रहते हैं। 13. क्षपक मुनि के पूर्व परिजनों-मोहियों को कोई मुनि समझाते हैं, 14. तो कोई त्याग रूप सम्बोधन करते हैं, 15. कोई प्रतिक्रमण सुनाते हैं, 16. कोई स्तुति पाठ सुनाते है, 17. कोई प्रभु वंदना सुनाते हैं, 18. तो कोई णमोकार मंत्र गाते हैं, 19. कोई तैल लगाते हैं, 20. तो कोई औषध लेप करते हैं, 22. कोई गुरु भक्ति सुनाते हैं, 23. तो कोई समवसरण का वर्णन

करते हैं, 24. कोई समाधिमरण पाठ सुनाते हैं, 25 तो कोई विदेह क्षेत्र की महिमा गाते हैं, 26. कोई सम्यक्त्व की महिमा गाते हैं, 27. तो कोई वैराग्यप्रद कथायें सुनाते हैं, 28. कोई तीर्थंकरों के गुण गाते हैं, 29 कोई सल्लेखना या पण्डित मरण के गुण गाते हैं, 30 तो कोई धन्य-धन्य के शब्द ही गाते हैं।
31. कोई मुनि द्वादशांग की महिमा गाते हैं, 32. कोई अतिशय क्षेत्र का अतिशय गाते हैं, 33. तो कोई सिद्ध क्षेत्र का प्रभाव बताते हैं, 34. और कोई अकृत्रिम जिनालयों की महिमा भी गाते हैं। 35. कोई मुनि नरकों के दुःख दिखाते हैं (भाव सहित चित्रण कराते हैं), 36. कोई तिर्यञ्चों के दुःख याद दिलाते हैं, 37. तो कोई मनुष्यों के दुःखों को गाते हैं और 38. कोई देवों के दुःख बताते हैं।
39. कोई मुनि मिथ्यात्व का अपाय बताते हैं, 40. कोई पंच पापों का अपाय बताते हैं, 41. कोई निर्माल्य सेवन के दुःख बताते हैं, 42 कोई कषायों के दुःख समझाते हैं, 42. कोई पात्रदान का फल दिखाते हैं, और 43. कोई चार दान की कथाएँ सुनाते हैं।
44. कोई मुनि पंच परमेष्ठी का स्वरूप गाते हैं, 45. कोई जिनायतन सेवा का फल बताते हैं, 46. कोई मूर्ति निर्माण की महिमा गाते हैं 47. कोई चार दान की महिमा (चित्रण) सुनाते हैं और 48. कोई महाव्रतों की महिमा गाते हैं।

प्र.1454 सल्लेखना लेने वाले कोई क्षपक अगर सिद्धांतवेत्ता, स्वाध्याय-शील रहे हों तो उन्हें मुनिगण किस तरह के तत्त्व चिंतवन में आनंदित कराते हैं?

उत्तर सिद्धांतवेत्ता क्षपक के लिए कोई मुनि उन्हें 1. लोक रचना को याद दिलाते हैं, 2. कोई सप्त तत्त्वों का वर्णन सुनाते हैं, 3. कोई षड्द्रव्यों का स्वरूप सुनाते हैं, 4. कोई गुणस्थानों का स्वरूप सुनाते हैं, 5. तो कोई मार्गणा की चर्चा सुनाते हैं, 6. कोई नयों का स्वरूप कहते हैं, 7. तो कोई प्रमाण की महिमा गाते हैं, 8. कोई दस धर्मों का स्वरूप समझाते हैं, 9. कोई उपसर्ग निवारण की कथा सुनाते हैं, 10. और कोई पञ्चकल्याणक की महिमा गाते हैं। 11. कोई मुनि वचन गुप्ति आदि पच्चीस भावनाएँ सुनाते हैं, 12. कोई मुनि; षोडसकारण भावनाएँ सुनाते हैं, 13 तो कोई अनित्याशरण आदि बारह भावनाएँ सुनाते हैं, 14. कोई शास्त्राभ्यास, जिन पद नुति आदि सात भावनाओं के गुण गाते हैं, 15. कोई मैत्री, प्रमोद आदि चार भावनाएँ याद दिलाते हैं, 16. तो कोई रत्नत्रय रूप चेतन रत्नों की महिमा गाते हैं, 17. कोई संवेग, वैराग्य रूप दो भावना समझाते हैं और 18. कोई एक स्वात्मतत्त्व की भावना जगाते हैं। 19. कोई मुनि पंच परावर्तन बतलाते हैं, 20. तो कोई षट्काल परिवर्तन दिखलाते हैं, 21. कोई स्तोत्रों का अतिशय गाते हैं, 22.कोई विभिन्न पूजा, विधान का फल दर्शाते हैं और 23.कोई निरतिचार व्रतों का फल बतलाते हैं। 24. कोई मुनि उपवासों की महिमा गाते हैं, 25. तो कोई मुनि कायक्लेश में समता-सह धीरज दिलवाते हैं, 26. कोई नवधा भक्ति का फल दर्शाते हैं, 27. कोई सिद्धालय का चिंतवन करवाते हैं, 28. तो कोई सम्मेद शिखर की महिमा गाते हैं और 29. कोई मुनि पृथ्वी, अग्नि आदि पंच धारणाओं के फल से मुक्ति फल दर्शाते हैं।

प्र. 1455 निर्यापकाचार्य की अनुशास्ति अर्थात् वाणी रूप मार्गदर्शन को सुनकर और शास्त्र को समझकर क्षपक कारण पूर्वक परिणाम को करने की इच्छा रखता हुआ क्या कहता है?

उत्तर निर्यापकाचार्य और समस्त मुनि समूह के मध्य क्षपक अन्तिम मंगल-भाव प्रकट करता है कि- श्रमण-समरसीभाव युक्त होना' यह मेरी प्रथमस्थिति है। 'सर्वत्र संयत होना' ये मेरी दूसरी अवस्था है। अथवा श्रमण-समता भाव में मेरा मैत्री भाव है यह प्रथम है और सभी संयतों-मुनियों में मेरा मैत्रीभाव है यह दूसरी अवस्था है। अभिप्राय यह है कि प्रथम तो मै सुख-दुःख आदि में समान भाव को धारण करने वाला हूँ और दूसरी बात यह है कि मैं सभी जगह संयत-संयमपूर्ण प्रवृत्ति करने वाला हूँ इसलिए सभी अयोग्य कार्य या वस्तु का मैं त्याग करता हूँ यह मेरा संक्षिप्त कथन है। इस प्रकार से वचनों द्वारा क्षपक संक्षेप से आलोचना करता है। (मू.चा., भा.1, पृ.91)

प्र. 1456 निर्ग्रन्थों के ऐसे कौन-से अलब्धपूर्व वचनों को सुनकर क्षपक किस तरह की विशुद्धि को प्राप्त होता है?

उत्तर सल्लेखना के काल में निर्ग्रन्थ-मुनियों से अलब्धपूर्व, अमृतमय, जिन-वचन सुनकर क्षपक परम विशुद्धि को प्राप्त करता हुआ चिंतवन करता है कि- जिनेन्द्र देव के वचन प्रमाण और नयों से अविरुद्ध होने से सुभाषित हैं और सुख के हेतु होने से अमृतभूत हैं। ऐसे इन वचनों को मैंने पहले कभी नहीं प्राप्त किया था। अब इनको प्राप्त करके मैंने सुगति के मार्ग को ग्रहण कर लिया है। अर्थात् जिनदेव की आज्ञानुसार मैंने संयम को धारण कर लिया है। अर्थात् जिनदेव की आज्ञानुसार मैंने संयम को धारण करके मोक्ष के मार्ग में चलना शुरु कर दिया है। अब मैं मरण से नहीं डरूँगा। (मू.चा.,भा.1, पृ.91)

प्र. 1457 क्षपक; और किस तरह का विचार करता हुआ मरण से नहीं डरता है?

उत्तर क्षपक विचार करता है कि-धीर को मरना पड़ता है और निश्चित रूप से धैर्य रहित जीव को भी मरना पड़ता है। यदि दोनों को मरना ही पड़ता है तब तो धीरता सहित होकर ही मरना अच्छा है। अर्थात् सत्त्व (शक्ति) अधिक जिसमें है ऐसे धीर-वीर को भी प्राण त्याग करना पड़ता है और जो धैर्य से रहित कायर हैं-डरपोक हैं, निश्चित रूप से उन्हें भी मरना पड़ता है। यदि दोनों को मरना ही पड़ता है, उसमें कोई अन्तर नहीं है तब तो धीरतापूर्वक-संक्लेश रहित होकर ही प्राण त्याग करना श्रेष्ठ है।

प्र. 1458 कौन-सी आराधनाओं में तत्पर हुआ साधु (क्षपक) कौन-से फल को पा लेता है?

उत्तर सल्लेखना रूप शुभ अनुष्ठान से सहित साधु (क्षपक) सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओं में तत्परता से प्रवृत्त होता हुआ पण्डित मरण करके उत्कृष्ट से तीन भवों को प्राप्त करके पश्चात् निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है।

प्र. 1459 वर्तमान (पंचम-दुषमा) काल में धारण की गई सल्लेखना से इस ही वर्तमान भव से निर्वाण की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर क्योंकि वर्तमान काल में उत्कृष्ट संहनन (शक्ति) एवं शुक्लध्यान का अभाव है।

प्र. 1460 पुनः कब, किसे, किस संहनन और ध्यान से साक्षात् निर्वाण की प्राप्ति होती है?

उत्तर मोक्ष के योग्यकाल अर्थात् अवसर्पिणी सम्बन्धी सुषमादुषमा काल के अन्त में, दुषमासुषमा काल में तथा दुषमा काल के प्रारम्भ में वज्रवृषभनाराच संहनन रहते हुए निर्दोषी महाव्रती भव्यात्मा को शुक्लध्यान के माध्यम से साक्षात् निर्वाण (मोक्ष सुख) की प्राप्ति होती है।

प्र. 1461 सच्चे सल्लेखना धारक और आराधक कौन माने गये हैं?

उत्तर जो ममत्व रहित, अहंकार रहित, कषाय रहित, जितेन्द्रिय, धीर, निदान रहित और सम्यग्दर्शन से सम्पन्न है वह मरण करता हुआ आराधक होता है अर्थात् जो निर्मोह हैं गर्व रहित, क्रोधादि कषायों से रहित हैं, पंच इन्द्रिय को नियन्त्रित कर चुके हैं, सत्व और वीर्य (शक्ति) से सम्पन्न होने से धीर हैं, सांसारिक सुखों की आकांक्षा से रहित हैं और सम्यग्दर्शन से सहित हैं। वे मरण करते हुए आराधक माने गये हैं।

प्र. 1462 सल्लेखना-मरण करते हुए क्षपक के सुख पूर्वक प्रत्याख्यान कैसे होता है?

उत्तर जो कषाय रहित हैं अर्थात् जिनकी संज्वलन कषायें भी मन्द हैं, जो इन्द्रियों के निग्रह में कुशल हैं, शूर हैं अर्थात् कायर नहीं हैं, पुरुषार्थ जिनके है वे पुरुषार्थी हैं अर्थात् चारित्र के अनुष्ठान में तत्पर हैं, चतुर्गति रूप संसार के दुःखों का स्वरूप जानकर जो उससे त्रस्त हो चुके हैं ऐसे साधु के प्रत्याख्यान अर्थात् मरण के समय शरीर-आहार आदि का त्याग सुख पूर्वक अथवा सुख निमित्तक होता है। इसी हेतु से वे साधु सल्लेखना-मरण करते हुए आराधक हो जाते हैं।

प्र. 1463 संन्यास व समाधि के काल में सकल साधु संघ एवं क्षपक साधु की रक्षा तथा कर्म निर्जरा और पुण्य वृद्धि हेतु संघस्थ साधुओं को कौन-कौन से वीतराग मंत्रों का ध्यान अथवा जाप करना चाहिए?

उत्तर ऐसे पावन प्रसंग पर महामंत्र णमोकार के अतिरिक्त सम्यग्दर्शन रक्षामंत्र, अनंत चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र, परम शांति मंत्र, बृहद्शांति व परमेष्ठी पद प्राप्ति मंत्र, जीव रक्षक-वर्द्धमान मंत्र, सर्वऋद्धिसिद्धि मंत्र, निर्ग्रन्थ पद रक्षक मंत्र, सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद प्राप्ति मंत्र, सर्व विघ्न नाशक मंत्र, उपद्रव-नाशक मंत्र, ज्ञानवृद्धि मंत्र, द्वयलोक सुख प्राप्ति मंत्र, शुक्लध्यान प्राप्ति-भावना मंत्र और परमलक्ष्य (मोक्ष) प्राप्ति मंत्र का ध्यान तथा जाप करना चाहिए।

प्र. 1464 सम्यग्दर्शन रक्षा मंत्र किसे कहते हैं।

उत्तर '**ॐ** ह्रीं श्री वीतराग देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः' इसे सम्यग्दर्शन रक्षा मंत्र कहते हैं।

प्र. 1465 अनंत चतुष्टय-लक्ष्मी प्राप्त मंत्र कौन-सा है?

उत्तर '**ॐ** ह्रीं अर्हं श्री कल्पद्रुम जिनेन्द्राय नमः' यह अनंत चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र माना जाता है।

प्र. 1466 परम शांति मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर ' ॐ ह्रीं जगच्छांतिकराय श्री शांतिनाथाय नमः सर्वोपद्रव शांति कुरु-कुरु स्वाहा' यह परम शांतिदायक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1467 बृहत् शांति एवं परमेष्ठी पद प्राप्ति मंत्र कौन-सा है?

उत्तर ' ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेष-दोष-कल्मषाय दिव्य तेजो मूर्तये श्री शांतिनाथाय शांतिकराय सर्व विघ्नप्रणाशनाय सर्व रोगापमृत्यु विनाशनाय सर्व परकृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्व क्षामडामर विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा (अमुकस्य..........) सर्व शांतिं कुरुकुरु स्वाहा'' यह मंत्र बृहत् शांति एवं परमेष्ठी पद प्रदायक मंत्र है इसमें अमुकस्य के स्थान पर जिसके उद्देश्य से यह मंत्र जपा जाय उसका नामोच्चारण किया जाता है।

प्र. 1468 जीव रक्षा कारक वर्द्धमान मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर ॐ नमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स चक्कं जलंतं गच्छई आयासं लोयाणं जये वा, विवादे वा, थंभणे वा, रणंगणे वा, मोहेण वा, सव्वजीव सत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा।

प्र. 1469 सर्वऋद्धि-सिद्धि मंत्र कौन-सा है?

उत्तर ' ॐ ह्रीं चतुःषष्टि ऋद्धि सम्पन्न जिनेन्द्राय नमः' यह सर्व ऋद्धि-सिद्धि दायक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1470 निर्ग्रन्थ पद रक्षक मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर ' ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्माङ्गाय नमः' यह मंत्र निर्ग्रन्थ (मुनि) पद् रक्षक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1471 सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद प्राप्ति मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर ' ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो नमः' यह मंत्र सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद प्राप्ति मंत्र कहलाता है। इस मंत्र के अनुरूप आचरण आवश्यक हैं। (इसके लिए 'तीर्थोदय-काव्य (सप्तशती)आदि षोडशभावनाओं के वर्णन करने वाले ग्रन्थ अवश्य पढ़ें।)

प्र. 1472 सर्व विघ्न नाशक मंत्र कौन-सा है?

उत्तर ' ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा नमः सर्व विघ्न शांतिं कुरु कुरु स्वाहा' यह सर्व विघ्नशांति या सर्वविघ्न नाशक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1473 उपद्रवनिवारक मंत्र कौन-सा है?

उत्तर ' ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः' यह उपद्रवनिवारक गुरु मंत्र है।

प्र. 1474 ज्ञान-वृद्धि मंत्र किसे कहा जाता है?

उत्तर ' ॐ ह्रीं द्वादशाङ्ग सरस्वती देव्यैः नमः' यह ज्ञान-वृद्धि मंत्र कहा जाता है।

प्र. 1475 द्वय लोक सुख-प्राप्ति मंत्र किसे माना गया है?

उत्तर 'ओंकाराय नमो नमः' इस मंत्र को द्वय लोक सुख-प्राप्ति मंत्र माना गया है।

प्र. 1476 शुक्ल ध्यान प्राप्ति भावना मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर 'शुद्धोहं बुद्धोहं निरञ्जनोहं' यह मंत्र शुक्ल ध्यान प्राप्ति भावना रूप कहा जाता है।

प्र. 1477 परम लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्ति मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर ‘ ॐ नमः सिद्धेभ्यः’ इसे परम लक्ष्य रूप मोक्ष प्राप्ति भावना मंत्र कहा जाता है।

प्र. 1478 निर्भार स्वरूप प्रदायक मंत्र किसे जानना चाहिए?

उत्तर ‘निःसंगोहम्’ इस मंत्र को निर्भार व निश्चिन्त स्वरूप प्रदायक गुरु मंत्र जानना चाहिए।

प्र. 1479 मनस् पवित्रीकरण गुरु-मंत्र किसे मानना चाहिए?

उत्तर ‘पूयात् पवित्रो भगवान मनो मे’ इस मंत्र को मनस् पवित्रीकरण गुरु मंत्र मानना चाहिए। इसे जपने से अपना मन पवित्रता को प्राप्त होता है।

प्र.1480 लोक कल्याण कारक मंत्र कौन-सा माना गया है?

उत्तर ‘क्षेमं सर्वप्रजानां’ इस वाक्य रूप मंत्र को लोक (प्रजा) कल्याण कारक माना गया है।

प्र.1481 सर्वलोक सौख्यकारक मंत्र किसे जानना चाहिए?

उत्तर ‘सर्वेभवन्तु सुखिनः’ इस वाक्य रूप मंत्र को सर्वलोक सौख्य कारक जानना चाहिए।

प्र.1482 भेद विज्ञान, शुद्धोपयोग और शुक्लध्यान को प्राप्त कराते हुए केवलज्ञान को प्रकट कराने वाला गुरु मंत्र कौन-सा है?

उत्तर ‘तुषमाषभिन्नं’ यह मंत्र शिवभूति मुनिराज को अपने गुरु द्वारा प्राप्त हुआ था; जिसके बल से उन्होंने भेदविज्ञान को करते हुये कैवल्य की प्राप्ति की थी।

प्र.1483 बीजाक्षर मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे एक बीज में वृक्ष रूप बनने की शक्तियाँ निहित होती हैं वैसे ही बीजाक्षरों में गंभीर, विशाल व अनंत अर्थ रहता है।

प्र.1484 बीजाक्षर, वाक्य, सूत्र आदि रूप मंत्रों में अनंत अर्थ कैसे निहित रहता है? एक उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर जैसे रंग के एक कण में बहुत सारे जल को रंगीन बनाने की शक्ति होती है। एक अगरबत्ती में बड़े निवास स्थान को सुगंधित बनाने की शक्ति रहती है तथा एक कलीष (कंडा) में इतनी शक्तियाँ छुपी रहती हैं कि पूरे ग्राम में धुंध फैला देता है वैसे ही एक मंत्र में अनंत अर्थ रूप शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं।

प्र.1485 बीजाक्षर मंत्र कौन से हैं?

उत्तर ॐ, श्रीं, क्लीं, अर्हं, हँ, ह्राँ, ह्रीं, ह्रूँ, ह्रौं और ह्रः आदि बीजाक्षर मंत्र कहलाते हैं।

प्र.1486 अनेक मंत्रों को तो जान लिया, आखिर मंत्र शब्द का अर्थ-प्रयोजन क्या होता है इसे नहीं जान पाये अतः मंत्र शब्द का अर्थ बतलाइये?

उत्तर मंत्र शब्द का अर्थ रहस्य, गुप्तवार्ता, देवता-आह्वान, मोहक, सिद्धि-प्रदायक, संकल्प, परामर्श, विचार, सूक्ति और बीज- पद आदि होता है।

प्र.1487 क्या; मंत्र का अर्थ मालूम होने पर ही मंत्र जाप देना चाहिए या जिस तरह का गुरु ने मंत्र बतला दिया उसे जपना प्रारंभ कर देना चाहिए?

उत्तर मंत्र का अर्थ ज्ञान होना उतना आवश्यक नहीं है, मंत्र के अर्थ को जाने बिना ही गुरु पर श्रद्धा धारण करते हुये कि-गुरु; वीतरागी, सम्यग्दृष्टि, दयालु, पापभीरू और चारित्रवान हैं। इनका दिया हुआ मंत्र स्वपर का हित ही करेगा। जब नाग-नागिन या जटायु पक्षी पञ्चनमस्कार मंत्र मात्र को सुनने से सुगति को प्राप्त हो गये, तो फिर हम तो गुरु के भक्त या शिष्य हैं। अतः यह मंत्र हमारा उद्धार अवश्य करेगा। यह मंत्र कर्म-निर्जरा आदि का कारण बनेगा, अतः अवश्य जपना चाहिए।

प्र. 1488 क्या; श्रद्धा मात्र होते हुये अपूर्ण मंत्र भी प्रभावकारी हो सकता है?

उत्तर हाँ! अंजन चोर ने आणम् ताणम् मात्र को जपते हुये श्रद्धा मात्र से आकाशगामिनी विद्या हासिल कर ली थी।

प्र.1489 श्रद्धा मात्र से क्या गुरु वचन भी मंत्र बन जाते हैं?

उत्तर हाँ! गुरु जो संक्षिप्त सूक्ति रूप वचन कह देते हैं वे वचन बड़े अर्थ को देने वाले रहस्यात्मक वचन बन जाते हैं। जैसे- 'देखभाल कर चलना' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप प्रवृत्ति बनाना।

प्र. 1490 भवि का भव-भोगाकांक्षा रूपनिदान मिथ्यात्व कहलाता है; लेकिन धर्म या उत्तम गति की किञ्चित कांक्षा भी नहीं करना चाहिए?

उत्तर उत्तम-मोक्ष गति या रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग रूप धर्म की कांक्षा प्रशस्त निदान कहलाने से बाधक नहीं है।

प्र. 1491 सल्लेखना-धारक-क्षपक अंतिम इच्छा रूप किञ्चित प्रशस्त निदान किस तरह से करता है, अथवा क्षपक सल्लेखना का फल क्या चाहता है?

उत्तर क्षपक सल्लेखना के फल के रूप में चाहता है कि-अर्हन्तदेव की जो गति हुई है वही गति मेरी हो और कृतकृत्य सिद्धों की और मोह रहित जीवों की जो गति हुई है वही गति सदा के लिए मेरी होवे।

प्र. 1492 सल्लेखना में की गई आराधना का फल क्या है?

उत्तर शुभ अनुष्ठान से सहित साधु सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओं में तत्परता से प्रवृत्त हुआ साधु मरण करके उत्कृष्ट रूप से तीन भवों को प्राप्त करके पश्चात् निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

प्र. 1493 उत्कृष्ट रूप से तीन भव में मोक्ष का अर्थ क्या है?

उत्तर वर्तमान का पहला भव, स्वर्ग का दूसरा भव और चतुर्थ कालीन या मोक्ष के योग्य कर्म भूमि का प्राप्त होना तीसरा भव कहलाता है। इन तीन भवों से अधिक भव रूप संसार में न रहता हुआ मुक्त हो जाता है।

अध्याय-3
निर्यापक-लक्षण एवं मुनियों के सामाचार आदि
(आगन्तुक सामाचार, शिष्य और आर्यिका के गुरु आदि)

प्र.1494 आचार्य कुन्दकुन्द रचित प्रवचनसार ग्रन्थ से दीक्षा गुरु एवं निर्यापक गुरु के सम्बन्ध में किस तरह का वर्णन किया गया है?

उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने अपने प्रवचनसार ग्रन्थ में वर्णन करते हुए कहा है कि- निर्ग्रन्थ दीक्षा दायक आचार्य दीक्षा गुरु कहलाते हैं और संयम भंग होने पर पुनः व्रतों में स्थापित करने वाले श्रमण निर्यापक गुरु कहलाते हैं। (प्र.सा./च.अ./गा.10)

प्र.1495 सामाचार शब्द के निरुक्ति अर्थ कौन-से हैं?

उत्तर समता-समाचार, सम्यक्-आचार, सम-आचार और समान-आचार इस तरह समाचार के चार निरुक्ति अर्थ होते हैं।

प्र.1496 समता समाचार रूप समाचार किसे कहते हैं?

उत्तर सम का भाव समता है- रागद्वेष का अभाव होना समता समाचार है। अथवा त्रिकाल देव वंदना करना या पंच नमस्कार रूप परिणाम होना समता है अथवा सामायिक व्रत को समता कहते हैं। ये समता समाचार हैं।

प्र.1497 सम्यक् आचार रूप समाचार किस तरह से होता है?

उत्तर शोभन आचार अर्थात् निरतिचार रूप मूलगुणों का पालन करना सम्यक् आचार कहलाता है। अथवा सम्यक् आचरण अर्थात् ज्ञान या निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना सम्यक् आचार है।

प्र.1498 आचरण या आचार से ज्ञान और भिक्षा यह अर्थ कैसे निकलता है?

उत्तर जिस चर् धातु से आचरण व आचार शब्द बनता है वह चर् धातु भक्षण करने और गमन करने रूप दो अर्थों में मानी गई है, और गमन अर्थ वाली सभी धातुएँ ज्ञान अर्थवाली भी होती हैं इस नियम से चर् धातु का एक बार ज्ञान अर्थ करना तब समीचीन जानना ऐसा अर्थ विवक्षित (मुख्य) हुआ और, एक बार भक्षण अर्थ करने पर निर्दोष आहार लेना ऐसा अर्थ हुआ। अतः समीचीन ज्ञान और निर्दोष आहार ग्रहण को भी सम्यक् आचार रूप समाचार कहा है।

प्र.1499 सम आचार रूप सामाचार क्या कहलाता है?

उत्तर प्राणिबध आदि के त्याग करने रूप मुनियों के पञ्च महाव्रतों को सम आचार कहते हैं। अथवा सम-उपशम अर्थात् क्रोधादि कषायों के अभाव रूप परिणाम से सहित जो आचरण है वह सम आचार है। अथवा सम् शब्द से दसलक्षण धर्म को भी ग्रहण किया जाता है अतः इन क्षमादि धर्मों सहित जो

आचार है व समाचार है। अथवा आहार ग्रहण और देववन्दना आदि क्रियाओं में सभी साधुओं को सह अर्थात् साथ ही मिलकर करना समाचार कहलाता है।

प्र.1500 समान आचार रूप सामाचार से क्या तात्पर्य है?

उत्तर 'मान' अर्थात् परिणाम 'स' अर्थात् सह या साथ जो रहता है वह समान है। अथवा मान का अर्थ प्रमाण रूप ज्ञान होता है वह परिणाम, या ज्ञान सहित जो आचार है वह समान आचार कहलाता है। अथवा सभी समीचीन साधुओं का समान रूप से पूज्य या इष्ट जो आचार देते हैं, वह समान आचार रूप सामाचार है।

प्र.1501 संक्षेप रूप तथा अन्य तरह से सामाचार का अर्थ कैसा है?

उत्तर समता-आचार-समरसी भाव का होना, सम्यक्-आचार-समीचीन आचार का होना, सम-आचार सभी साधुओं का हानि-वृद्धि रहित (निर्दोष) समान आचरण होना और समान-आचार- कायोत्सर्ग आदि से समान प्रमाण रूप है आचार जिसका, इस तरह सामाचार चार तरह का संक्षेप रूप से भी कहा गया है। (मू.चा., भाग.1, पृ.109)

प्र.1502 सामाचार लक्षण भेद रूप से कितने प्रकार है?

उत्तर सामाचार लक्षण भेद रूप से औघिक और पद विभागी इस तरह दो प्रकार का है।

प्र.1503

समाचार और सामाचार में क्या विशेषता है?

उत्तर समाचार को ही प्राकृत भाषा में सामाचार कहा जाता है। समाचार का 'स' प्राकृत व्याकरण के निमित्त से दीर्घ अर्थात् 'सा' हो जाता है। दोनों का अर्थ सम्यक् (समीचीन) आचार है।

प्र. 1504 औघिक समाचार किसे कहते हैं?

उत्तर सामान्य या संक्षेप रूप समाचार को औघिक समाचार कहते हैं।

प्र.1505 पदविभागी समाचार किस प्रकार का होता है?

उत्तर अर्थ प्रतिपादक पदों का विभाग-भेद जिसमें पाया जाता है या विस्तार रूप जो समाचार होता है वह पदविभागी समाचार है। इस तरह समाचार दो ही हैं।

प्र.1506 औघिक समाचार के कितने भेद हैं और कौन से हैं?

उत्तर औघिक समाचार दशभेद वाला है- इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आसिका, निषेधिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छन्दन, सनिमन्त्रणा और उपसंपत्।

प्र. 1507 इच्छाकार किसे कहते हैं? और वह किस तरह किया जाता है?

उत्तर इच्छा-इष्ट या स्वीकृत को करना-आदर देना इच्छाकार है। जैसे- इष्ट रूप सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय में अथवा शुभ परिणाम में इच्छाकार होता है। अर्थात् इनको स्वीकार करना, इनमें हर्ष-भाव होना और इनमें स्वेच्छा से प्रवृत्ति करना ही इच्छाकार कहलाता है।

प्र.1508 मिथ्याकार क्या है? और उसमें क्या करने योग्य है?

उत्तर मिथ्या-असत्य करना मिथ्याकार है अर्थात् अशुभ परिणाम का त्याग करना। जैसे-अपराध अर्थात् अशुभ परिणाम अथवा व्रतादि में अतिचार होने पर ''तस्स मिच्छामि दुक्कडं'' कहकर मिथ्याकार होता है। अर्थात् मन-वचन-काय से कृत अपराधों से दूर होना मिथ्याकार कहलाता है।

प्र. 1509 तथाकार क्या है? और वह किस तरह किया जाता है?

उत्तर सत् अर्थात् प्रशस्त अर्थ के प्रतिपादित किये जाने पर ऐसा ही है इस प्रकार बोलना तथाकार है। जैसे- प्रति श्रवण अर्थात् गुरु के द्वारा सूत्र और अर्थ प्रतिपादित होने पर उसे सुनकर 'आपने जैसा प्रतिपादित किया है वैसा ही है, अन्यथा नहीं' ऐसा अनुराग व्यक्त करना तथाकार कहलाता है।

प्र. 1510 आसिका क्या है? और वह कहाँ पर कैसे की जाती है?

उत्तर पूछकर गमन करना आसिका है। जैसे- वसतिका (निवासस्थान) आदि से निकलते समय देवता या गृहस्थ आदि से पूछकर निकलना अर्थात् अस्सहि-अस्सहि-अस्सहि बोलना अथवा पाप क्रियाओं से मन को हटाना आसिका कहलाती है।

प्र. 1511 निषेधिका क्या है और वह कहाँ पर और कैसे की जाती है?

उत्तर पूछकर प्रवेश करना निषेधिका है। जैसे- वसतिका आदि में प्रवेश करते समय वहाँ पर स्थित देव या गृहस्थ आदि की स्वीकृति लेकर अर्थात् निस्सही-निस्सही-निस्सही शब्द का उच्चारण करके पूछकर वहाँ प्रवेश करना और ठहरना अथवा सम्यग्दर्शनादि में स्थिर भाव रखना निषेधिका कहलाती है।

प्र. 1512 आपृच्छा क्या है और वह किस तरह से की जाती है?

उत्तर अपने कार्य के प्रति गुरु आदि का अभिप्राय लेना या पूछना आपृच्छा है। जैसे- अपने कार्य-प्रयोजन के आरम्भ में अर्थात् पठन, गमन, या योगग्रहण आदि कार्यों के प्रारम्भ में गुरु आदि की वन्दना करके उनसे पूछना आपृच्छा कहलाती है।

प्र. 1513 प्रतिपृच्छा किसे कहते हैं और वह कहाँ किस तरह से की जाती है?

उत्तर निषिद्ध अथवा अनिषिद्ध जो वस्तुएँ हैं उनको ग्रहण करने के लिए पुनः पूछना प्रतिपृच्छा है अर्थात् जैसे- समान है अनुष्ठान जिनका वे सधर्मा हैं तथा गुरु शब्द से दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु, उपदेश-दाता गुरु अथवा तपश्चरण में या ज्ञान में अधिक जो गुरु हैं- इन सधर्मा या गुरुओं से कोई उपकरण शिष्य आदि पहले लिये थे पुनः उन्हें वापस दे दिये, यदि पुनरपि उनको ग्रहण का अभिप्राय हो तो पुनः पूछकर लेना प्रतिपृच्छा है।

प्र. 1514 छन्दन क्या है? और कैसे किया जाता है?

उत्तर अनुकूल प्रवृत्ति करना छन्दन है। अर्थात् जैसे- जिन गुरु या सधर्मी से जो कुछ भी पुस्तक आदि उपकरण (या शिष्यादि) लिये हों उसमें उनके अभिप्राय के अनुकूल प्रवर्तन-उपयोग करना छन्दन कहलाता है।

प्र. 1515 सनिमन्त्रणा क्या है? और उसे कैसे करना चाहिए?

उत्तर सत्कार करके याचना करना अर्थात् गुरु को आदर पूर्वक नमस्कार आदि करके उनसे किसी वस्तु या आज्ञा को माँगना सनिमन्त्रणा है। जैसे-अगृहीत-अन्य किसी की पुस्तक आदि वस्तुओं के विषय में आवश्यकता होने पर गुरुओं से सत्कार पूर्वक याचना करना या ग्रहण कर लेने पर विनय-पूर्वक उनसे निवेदन करना निमन्त्रणा या सनिमन्त्रणा कहलाती है।

प्र. 1516 उपसंपत् क्या है? और वह कैसे करना चाहिए?

उत्तर 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा गुरुओं से अपना निवेदन करना उपसंपत् है। जैसे- गुरुकुल अर्थात् गुरुओं के आम्नाय-संघ में, गुरुओं के विशाल पादमूल में 'मैं आपका हूँ', इस प्रकार से आत्म का त्याग करना- आत्म समर्पण कर देना, उनके अनुकूल ही सारी प्रवृत्ति करना यह उपसंपत् है। अर्थात् अतिशय रूप से गुरु को अपना जीवन समर्पित कर देना उपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1517 आगम में उद्धेश्य और निर्देश का लक्षण क्या है?

उत्तर नाम कथन को उद्धेश्य कहते हैं और उसके लक्षण आदि रूप से वर्णन करने को निर्देश कहते हैं। जैसा उद्धेश्य होता है वैसा ही निर्देश होता है ऐसा न्याय है।

प्र. 1518 पद विभागी समाचार का विशेष लक्षण क्या है?

उत्तर एक प्रातःकाल से लेकर दूसरे प्रातःकाल तक अर्थात् अहोरात्र पर्यन्त श्रमणगण निरन्तर जिन नियम आदि का पालन करते हैं वह सब पदविभागी समाचार कहलाता है।

प्र. 1519 औधिक समाचार संबंधी तथाकार के विषय में कही जाने वाली वाचना किसे कहते हैं?

उत्तर जीवादि पदार्थों का व्याख्यान करना वाचना है अथवा गुरु के मुख से सिद्धांत ग्रन्थों का सुनना वाचना है।

प्र. 1520 उपदेश क्या कहलाता है?

उत्तर आचार्य परंपरागत अविसंवाद रूप जिसका गुरु वर्णन करते हैं ऐसा धर्म उपदेश कहलाता है।

प्र. 1521 सूत्र किसे कहते हैं?

उत्तर सूक्ष्म अर्थ को सूचित करने वाले और वृत्ति, वार्तिक तथा भाष्य के कारण भूत सूत्र कहलाते हैं।

प्र. 1522 टीका किसे कहते हैं?

उत्तर सूत्र का विशद अर्थ करने के लिये जो वृत्ति, वार्तिक और भाष्य रूप अर्थात् विशेष विश्लेषण रूप रचनायें की जाती हैं उन्हें टीका कहते हैं।

प्र. 1523 सूत्रार्थ कथन क्या है?

उत्तर सूत्र के अर्थ का कथन करना या सूत्र और अर्थ दोनों का कथन करना सूत्रार्थ कथन है।

प्र. 1524 निषेधिका, आसिका के निमित्त या जहाँ निषेधिका आसिका की जाती है ऐसे स्थान कौन से हैं?

उत्तर कन्दरा, पुलिन, गुफा आदि स्थानों में निषेधिका, आसिका करना चाहिए। आदि शब्द से नदी, ग्राम,

गृह भी ग्रहण किये जा सकते हैं।

प्र. 1525 कन्दरा, पुलिन, गुफा किसे कहते हैं?

उत्तर जल प्रवाह से विदीर्ण हुआ- विभक्त प्रदेश कन्दरा कहलाता है। नदी अथवा सरोवर के जल से रहित प्रदेश को पुलिन अथवा सैकत कहते हैं। (सैकत अर्थात् बालु का ढेर)। पर्वत के पार्श्व भाग में जो बिल अर्थात् बड़े-बड़े छिद्र होते हैं उन्हें गुफा कहते हैं।

प्र. 1526 उपसंपत् का विशेष अर्थ और उसके प्रकार कौन से हैं?

उत्तर उपसंपत् का अर्थ उपसेवा अर्थात् अपना निवेदन करना अथवा विनय पूर्वक आत्म समर्पण करना उपसंपत् कहलाता है। इसके पाँच भेद हैं- विनयोपसंपत्, क्षेत्रोपसंपत्, मार्गोपसंपत्, सुख-दुखोपसंपत् और सूत्रोपसंपत्।

प्र. 1527 विनयोप संपत् किसे कहते हैं?

उत्तर प्राघूर्णिक या पादोष्ण का विनय और उपचार करना, उनके निवास स्थान और मार्ग के विषय में प्रश्न करना, उन्हें उचित वस्तु प्रदान करना और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना आदि विनयोपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1528 प्राघूर्णिक या पादोष्ण किन्हें कहते हैं?

उत्तर आगंतुक (अन्य संघ या स्थान से आने वाले) साधु को प्राघूर्णिक या पादोष्ण कहते हैं।

प्र. 1529 विनयोपसंपत् को विशेष रूप से किस तरह समझना चाहिए?

उत्तर आगन्तुक साधु का अंगमर्दन करना, प्रिय वचन बोलना आदि विनय है। उन्हें आसन आदि देना उपचार है। आप किस गुरुगृह (संघ) के हैं? किस मार्ग से आये हैं? और आपके दीक्षा गुरु का नाम क्या है? ऐसे प्रश्न करना, तथा उन्हें संस्तर-घास, पाटा, चटाई आदि देना, पुस्तक शास्त्र आदि देना, उनकी अनुकूलताओं पर ध्यान देना आदि आत्मसमर्पण रूप व्यवहार या निज समान बनाने रूप व्यवहार विनयोपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1530 क्षेत्रोपसंपत् किसे कहते हैं?

उत्तर जिस क्षेत्र में संयम, तप, गुण, शील तथा यम और नियम वृद्धि को प्राप्त होते हैं उस क्षेत्र में निवास करना, यह क्षेत्रोपसंपत् जानना चाहिए।

प्र. 1531 मार्गोपसंपत् का लक्षण क्या है?

उत्तर संयम, तप, ज्ञान और ध्यान से युक्त आगन्तुक और स्थानीय अर्थात् संघस्थ साधुओं के बीच जो परस्पर में मार्ग से गमनागमन के विषय में सुख समाचार पूछना मार्गोपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1532 साधु तो आरम्भ परिग्रह से विरहित होते हैं वे अन्य साधु के लिए वसति, आहार, औषधादि कैसे देंगे?

उत्तर किसी वसतिका में ठहरे आचार्य उस वसतिका में ही उचित स्थान देंगे या अन्य वसतिकाओं में उनकी

व्यवस्था करा देंगे अथवा श्रावकों द्वारा वसतिका की व्यवस्था करायेंगे, ऐसे ही श्रावकों के द्वारा उनके स्वास्थ्य आदि के अनुकूल आहार या रोग आदि के निमित्त औषधि आदि की व्यवस्था करायेंगे। यही व्यवस्था सर्वत्र विधेय है।

प्र. 1533 सूत्रोपसंपत् किसे कहते हैं?

उत्तर सूत्र के विषय में उपसंपत् के तीन प्रकार है- सूत्रोपसंपत्, अर्थोपसंपत् और तदुभयोपसंपत्। पुनः लौकिक वेद और समय की अपेक्षा से वह एक-एक भी तीन प्रकार से समझना चाहिए।

प्र. 1534 सूत्रोपसंपत्, अर्थोपसंपत्, तदुभयोपसंपत् (सूत्रार्थोपसंपत्) का लक्षण क्या है?

उत्तर 1. सूत्र के लिये प्रयत्न करना सूत्रोपसंपत् है। 2.अर्थ को समझने के लिये प्रयत्न करना अर्थोपसंपत् है। 3. सूत्र व अर्थ दोनों के लिये प्रयत्न करना सूत्रार्थोपसंपत् है।

प्र. 1535 लौकिक, वैदिक और सामायिक शास्त्रों का लक्षण क्या है?

उत्तर व्याकरण, गणित आदि शास्त्रों को लौकिक शास्त्र कहते हैं। प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगों को वेद कहा गया है, इनसे संबंधित शास्त्र अथवा स्वमत-परमत (स्वसमय-परसमय) के विषय में परमत का खण्डन करके स्वमत का वर्णन करना भी वैदिक शास्त्र में आता है। सिद्धांत ग्रन्थ जैसे- षट्खण्डागम आदि और अध्यात्म शास्त्र समयसार आदि सामायिक शास्त्र कहलाते हैं।

प्र. 1536 निर्ग्रंथ मुनि या आचार्य परमेष्ठी को आयतन किस अपेक्षा से कहा जाता है?

उत्तर जो तेरह प्रकार के चारित्र और तेरह प्रकार की क्रियाओं में उद्यत तथा सर्व शास्त्रों में पारंगत होते हैं; ऐसे आचार्य आदि आयतन शब्द से कहे जाते हैं।

प्र.1537 छह आयतन कौन से होते हैं?

उत्तर सर्वज्ञ देव, सर्वज्ञ का मंदिर, ज्ञान, ज्ञान से संयुक्त ज्ञानी, चारित्र और चारित्र से युक्त साधु ये छह आयतन हैं।

प्र. 1538 कोई मुनि अपने गुरु- आचार्य (दीक्षा-शिक्षा गुरु) से विशेष अध्ययन हेतु जब यह पूँछता है कि- आपके चरणों की कृपा से अब मैं अन्य आयतन को प्राप्त करना चाहता हूँ आप मुझे यथायोग्य आज्ञा प्रदान करें और वह मुनि इस विषय में पाँच-छह बार प्रश्न करता है इस प्रसंग में पुनः - पुनः प्रश्न करने में क्या हेतु है?

उत्तर इसका उत्तर देते हुये आचार्य कहते हैं कि शिष्य द्वारा पुनः - पुनः आज्ञा हेतु पूँछा जाना यह शिष्य का उत्साह प्रकट करता है अथवा ऐसा करने से विशेष विनय भी प्रकट होती है। अर्थात् पुनः -पुनः आज्ञा लेने से आचार्य के प्रति विशेष विनय और अपना अधिक ज्ञान प्राप्त करने में उत्साह मालूम होता है।

प्र. 1539 अन्य आयतन की ओर विहार करता हुआ मुनि किसके साथ विहार करता है?

उत्तर अपने पूज्य गुरु से आज्ञा प्राप्त कर वह मुनि अपने सहित चार, तीन या दो मुनि होकर विहार करता है। सारांश रूप से उत्कृष्ट तो यह है कि वह मुनि अपने साथ तीन मुनियों को लेकर जाये। मध्यम मार्ग यह

है कि दो मुनियों को साथ ले जावे और जघन्य मार्ग यह है कि एक मुनि को अपने साथ लेकर जावे। अकेले जाना उचित नहीं है।

प्र. 1540 एकल विहारी साधु कैसे होते हैं?

उत्तर जो तप, सूत्र, सत्त्व, एकत्व, भाव, संहनन और धैर्य इन सबसे परिपूर्ण दीक्षा और आगम में बली मुनि एकल विहारी स्वीकार किये गये हैं।

प्र. 1541 एकल विहारी महामुनि के जीवन में होने वाले तप, सूत्र, सत्त्व, एकत्व, भाव, संहनन और धैर्य तथा दीक्षा और आगम में बली रूप गुणों का अर्थ क्या है?

उत्तर **तप**- अनशनादि बारह प्रकार का तप है।

सूत्र- बारह अंग और चौदह पूर्व को सूत्र कहते हैं। अथवा उस काल, क्षेत्र के अनुरूप जो आगम है वह भी सूत्र है तथा प्रायश्चित्त ग्रन्थ आदि भी सूत्र नाम से कहे जाते हैं।

सत्त्व- शरीरगत बल को, अस्थि की शक्ति को अथवा भावों के बल को सत्त्व कहते हैं।

एकत्व- शरीर आदि से भिन्न अपनी आत्मा में रति करना एकत्व है।

भाव- शुभ परिणाम को भाव कहते हैं।

संहनन- अस्थियों और त्वचा की दृढ़ता को संहनन कहते हैं। जो वज्रवृषभ आदि तीन संहननों में विशेष रहती है।

धैर्य- मन के बल को धैर्य कहते हैं या क्षुधादि से व्याकुल नहीं होना धैर्य कहलाता है।

दीक्षा- जो चिर-प्रवर्जित अर्थात् बहुत काल से दीक्षित व तपस्वी है।

आगम में बली- आचार संबंधी सिद्धांत में भी अक्षुण्य है अर्थात् निष्णात है।

इस तरह आचार ग्रन्थों के अनुकूल जो चर्या में निपुण हैं ऐसे गुण विशिष्ट मुनि को ही जिनेन्द्र देव ने एकलविहारी होने की अनुमति दी है।

प्र. 1542 मुनि को कहाँ-कहाँ स्वच्छन्द प्रवृत्ति को छोड़कर गुरु संघ में रहकर एक साथ प्रवृत्ति करना चाहिए?

उत्तर मुनि को गमन, आगमन, सोने, बैठने, किसी वस्तु का ग्रहण, आहारचर्या, उत्सर्ग समिति (लघु व दीर्घ शंकादि) और वार्ता बोल-चाल आदि में स्वच्छन्दता न करते हुए गुरु संघ सह ही प्रवृत्ति करना चाहिए।

प्र. 1543 यदि मुनि अकेला विहार करता तो कौन-कौन से दोष आते हैं?

उत्तर एकल विहार के दोष-

1. गुरु की निन्दा- शील शून्य मुनि को किसने दीक्षित किया है, ऐसा लोग कहने लगते हैं।

2. श्रुत का विनाश- एकाकी साधु को देखकर अन्य मुनि भी ऐसे हो जाते हैं, पुनः कुछ अन्य भी मुनि देखादेखी कर अपने गुरु- संघ में नहीं रहते हैं तब श्रुत-शास्त्रों के अर्थ को ग्रहण न करने से श्रुत का

नाश हो जाता है।

3. तीर्थ की मलिनता- तीर्थ का अर्थ जिन या जैन शासन है। ऐसे जैन शासन में सभी मुनि ऐसे ही (स्वच्छन्द) होते होंगे ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहने लगते हैं। जिस कारण जैन शासन मलिन प्रतीत होता है।

4. मूढ़ता- निरर्गलता एवं लोक निंदा से बुद्धि भी विकृत हो जाती है।

5. आकुलता- भय या अपमानादि से निराकुलता नहीं रह पाती है।

6. कुशीलता- निरंकुशता के अभाव से व्रतों में विकृति आ जाती है।

7. पार्श्वस्थता- सहधर्मी के अभाव में दुर्गुण प्रवेश कर जाते हैं।

प्र. 1544 मुनि के अकेलेपन में और कौन-कौन-सी विपत्तियाँ आ जाती हैं?

उत्तर एकाकी विहार से मुनि को कंटक-कांटे, ठूँठ, विरोधी-क्रोधी जन, कुत्ता, गौ आदि पशु, सर्प आदि हिंसक प्राणी, म्लेच्छादि नीच जन, विषैला आहार और हैजा व अर्जीण आदि रोगों से आत्म विपत्तियाँ आ जाती हैं। अतएव मुनि को अकेले विहार नहीं करना चाहिए।

प्र. 1545 यदि ऐसा है तो मुनि को कैसे रहना चाहिए?

उत्तर यदि विशाल संघ न हो तो मुनि को गण या गच्छ के साथ ही रहना चाहिए।

प्र. 1546 गण और गच्छ किसे कहते हैं?

उत्तर तीन मुनियों के समूह को गण और सात मुनियों के समूह को गच्छ कहते हैं।

प्र. 1547 एकाकी विहार करने वाले मुनि के और कौन-कौन-से पापस्थान आगम में वर्णित किये गये हैं?

उत्तर एकाकी रहने वाले मुनि के पापस्थान मूलाचार ग्रन्थ में इस तरह बतलाये हैं-

1. आज्ञा-उलंघन- जिनेन्द्र देव के उपदेश का उलंघन होता है।

2. अनवस्था- एकाकी विचरण की परम्परा चल पड़ती है।

3. मिथ्यात्व सेवन- मिथ्यादृष्टियों से मिथ्यात्व का संस्कार पड़ जाता है।

4. आत्मनाश- मुनि के निजी गुण सम्यग्दर्शनादि का नाश हो जाता है।

5. संयम की विराधना- निरर्गल जीवन होने से संयम (व्रतशीलादि) की भी विराधना हो जाती है। अतः जिन कल्पी-उत्तम संहनन आदि गुणों से युक्त मुनि के सिवाय सामान्य-अल्पशक्ति वाले मुनियों को एकल विहारी होने के लिए जिनेन्द्र देव की आज्ञा नहीं है।

प्र. 1548 गुरुकुल में होने वाले मुनियों के पाँच आधार कौन-से हैं?

उत्तर गुरुकुल में होने वाले मुनियों के पाँच आधार आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर होते हैं।

प्र. 1549 गुरुकुल के पाँच आधारों के लक्षण क्या हैं?

उत्तर **आचार्य**- जिनके पास मुनि-शिष्यगण आचरण ग्रहण करते हैं।

उपाध्याय- जिनके पास मुनि-शिष्यगण अध्ययन करते हैं।

प्रवर्तक- जो संघ का प्रवर्तन (व्यवस्थापन) करते हैं।

स्थविर- जो शिष्यों को आचरण में स्थिर दृढ़ बनाते हैं।

गणधर- जो सम्पूर्ण संघ के रक्षक होते हैं।

अर्थात्- 1. जो शिष्यों के अनुग्रह रूप ग्रहण करने में कुशल होते हैं, दीक्षा आदि के द्वारा शिष्यों पर और स्वयं पर अनुग्रह (उपकार) करने वाले हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

2. जो दश प्रकार के धर्म के उपदेश व आचरण से पूर्ण हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं।

3. जो चर्या आदि से संघ का प्रवर्तन (योग्य व्यवस्था बनवाने) रूप कार्य करते हैं वे प्रवर्तक कहलाते हैं।

4. जो मर्यादा का उपदेश देने वाले, संयम में दृढ़ करने वाले होते हैं वे स्थविर कहलाते हैं। और अंत में जो सबकी रक्षा करते हुए-

5. मुनिगण का पालन करने वाले होते हैं वे गणधर कहलाते हैं। जिस संघ में ये पाँच आधार रहते हैं उसी संघ में निवास करना चाहिए। (यह व्यवस्था या परम्परा शताधिक या सहस्राधिक शिष्यों के समुदाय की अपेक्षा प्रतीत होती है।)

प्र. 1550 विहार करते हुए मार्ग के मध्य जो उपकरण या शिष्य आदि का लाभ होता है उनको ग्रहण करने के लिए कौन योग्य है?

उत्तर मुनियों के विहार मार्ग के ग्राम व नगरों में जो कुछ भी सचित्त-छात्र आदि, अचित्त-पुस्तक आदि और मिश्र-पुस्तक आदि से सहित शिष्य आदि मिलते हैं उन सब द्रव्यों के स्वामी वे संघ नायक आचार्य होते हैं।

प्र. 1551 वे संघ के नायक आचार्य किन गुणों से युक्त होना चाहिए?

उत्तर वे आचार्य शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल, सूत्र के अर्थ में विशारद, कीर्ति से प्रसिद्धि को प्राप्त, क्रिया और चारित्र में तत्पर और ग्रहण करने योग्य तथा उपादेय वचन बोलने वाले होते हैं।

प्र. 1552 संग्रह, अनुग्रह आदि का विशेष अर्थ क्या है?

उत्तर **संग्रह**- दीक्षा आदि देकर अपना बनाना संग्रह कहलाता है।

अनुग्रह- जिन्हें दीक्षा आदि दे चुके हैं ऐसे शिष्यों का शास्त्र आदि के द्वारा संस्कार करते हुए दृढ़ता से अभ्यास कराना तथा उन्हें किसी पद में आगे बढ़ाना अनुग्रह है।

सूत्र व अर्थ में विशारद- जो सूत्र और अर्थ का विस्तार से प्रतिपादन करने वाले हैं।

कीर्ति से प्रसिद्धि को प्राप्त- जिनकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है।

क्रिया-पालक- जो पञ्च नमस्कार मंत्र, छह आवश्यक, आसिका और निषेधिका इन तेरह प्रकार की क्रियाओं के पालक हैं।

चारित्र-पालक- जो पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति और त्रिगुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र के पालन में लवलीन हैं।

ग्राह्य व आदेय वचन- जिनके वचन ग्राह्य और आदेय हैं, अर्थात् जैसे- गुरु के कुछ भी कहे जाने पर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार के भाव से उन वचनों को ग्रहण करना ग्राह्य है और प्रमाणीभूतवचनों को आदेय कहते हैं। जिनके वचन ग्राह्य और आदेय हैं ऐसे उपर्युक्त सभी गुणों से समन्वित ही आचार्य होते हैं।

प्र. 1553 आचार्य और कौन-कौन गुणों से समन्वित होते हैं?

उत्तर जो गंभीर, दुर्धर्ष, शूर और धर्म प्रभावक होते हैं तथा भूमि, चन्द्र और समुद्र के गुणों के सदृश होते हैं अर्थात्

गंभीर- जो क्षोभित नहीं होने से अक्षोभ्य हैं और गुणों में अगाध (असीम गहरे) हैं, वे गंभीर कहलाते हैं।

दुर्धर्ष- जिनका प्रवादियों के द्वारा परिभव अर्थात् तिरस्कार नहीं किया जा सकता है, वे दुर्धर्ष कहलाते हैं।

शूर- जो शौर्य अर्थात् निर्भीक गुण से सहित या समर्थ रहते हैं उन्हें शूर कहते हैं।

धर्म-प्रभावक- रत्नत्रय और दशधर्मों की प्रभावना या अरिहंत भगवान के प्रवचनों की प्रभावना करना जिनका स्वभाव है, वे धर्म-प्रभावक कहलाते हैं।

भूमि- जो क्षमा गुण में भूमि के सदृश होते हैं।

चन्द्र- जो सौम्य गुण से चन्द्रमा के सदृश होते हैं।

समुद्र- जो निर्मलता गुण से समुद्र के समान होते हैं।

ऐसे इन विशिष्ट गुणों से ही समन्वित आचार्य होते हैं।

प्र. 1554 किसी समीचीन परम्परा (आर्ष-परम्परा) के आयासपूर्वक निर्ग्रन्थ दिगम्बर आगन्तुक मुनि को देखकर संघस्थ मुनियों में सामाचार की क्या प्रतिक्रिया होती है?

उत्तर आयास-पूर्वक अर्थात् पर संघ से प्रयास कर आते हुए आगन्तुक मुनि को देखकर संघ के सभी मुनि उठकर खड़े हो जाते हैं। किसलिए? मुनि के प्रति वात्सल्य के लिए, सर्वज्ञदेव की आज्ञा पालन करने के लिए, आगन्तुक साधु को अपनाने के लिए और उनको (जिन-मुद्रा को) प्रणाम करने के लिए वे संयत तत्क्षण खड़े हो जाते हैं। इसी तरह वंदना-प्रतिवंदना कर रत्नत्रय की क्षेमकुशलता को भी पूछते हैं।

प्र. 1555 आगन्तुक मुनि के लिए वास्तव्य आचार्य संघ में स्थान पाने हेतु तथा वास्तव्य आचार्य संघस्थ मुनियों द्वारा आगन्तुक मुनि को अपनाने हेतु तीन रात्रि पर्यंत कौन-कौन-सी जगह कौन-कौन-सी क्रियाओं पर परीक्षणार्थ आपस में नजर रखी जाती है?

उत्तर छह आवश्यक क्रिया आदि के कायोत्सर्ग आदि प्रसंगों में, किसी वस्तु को चक्षु इन्द्रिय से देखकर पुनः

पिच्छिका से परिमार्जन कर ग्रहण करते हैं या नहीं ऐसी प्रतिलेखन क्रिया में, वचन बोलने में और किसी वस्तु के प्रतिलेखन पूर्वक धरने या उठाने में, स्वाध्याय क्रिया में, एकाकी गमन-आगमन करने में और चर्या के मार्ग में, ये साधु आपस में एक-दूसरे की परीक्षा करते हैं। अर्थात् इनकी क्रियाएँ आगमोक्त हैं या नहीं ऐसा देखते हैं।

प्र. 1556 आगन्तुक साधु व वास्तव्य साधुओं की आपस में परीक्षा करने के उपरान्त संघस्थ प्रक्रिया किस तरह घटित होती है?

उत्तर आगन्तुक मुनि जिस दिन आये हैं उस दिन मार्ग के श्रम को दूर करके विश्रान्ति में बिताकर पुनः आपस में परीक्षा करके वास्तव्य संघस्थ के आचरण को शुद्ध जानकर दूसरे दिन या तीसरे दिन आचार्य के निकट आकर विनयपूर्वक अपने विद्या-अध्ययन हेतु आगमन के कार्य को आचार्य-देव के पास निवेदन करते हैं। अथवा संघस्थ आचार्य के शिष्य मुनिवर्ग उस आगन्तुक मुनि की परीक्षा करके यह ग्रहण करने योग्य है' ऐसा आचार्य-परमेष्ठी के समीप निवेदन करते हैं।

प्र. 1557 आगन्तुक मुनि की विनय और चर्या देखकर संघस्थ आचार्य-भगवन् आगन्तुक से कौन-कौन-से प्रश्न पूछते हैं?

उत्तर आचार्य गुरुदेव; आगन्तुक मुनि का नाम, कुल, गुरु, दीक्षा के दिन, वर्षावास, आने की दिशा, शिक्षा, प्रतिक्रमण आदि के सम्बन्ध में पूछते हुए प्रश्न करते हैं जैसे कि- तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा कुल या गुरु परम्परा क्या है? तुम्हारे गुरु कौन हैं? तुम्हें दीक्षा लिये कितने दिन हुए हैं? तुमने वर्षायोग कितने और कहाँ-कहाँ किये हैं? तुम किस दिशा से आये हो? तुमने क्या-क्या सुना है? तुम्हारे कितने प्रतिक्रमण हुए हैं और कितने नहीं हुए? और तुम्हें अभी क्या सुनना है? तुम किस मार्ग से आये हो? इत्यादि प्रश्न करते हैं। तब शिष्य उनको समुचित उत्तर देता है।

प्र. 1558 प्रश्नों के उत्तर सुनकर और उसके स्वरूप को जानकर आचार्य देव क्या कहते हैं या क्या करते हैं?

उत्तर यदि आगन्तुक मुनि चारित्र और क्रियाओं में शुद्ध है, नित्य ही उद्यमशील है अर्थात् अतिचार रहित आचरण वाला है, विनयी और बुद्धिमान है तो वह जो पढ़ना चाहता है उसे अपने ज्ञान की सामर्थ्य के अनुसार पढ़ना चाहिए। अथवा उसे संघ में स्वीकार करके उसे उसकी बुद्धि के अनुरूप अध्ययन कराना चाहिए।

प्र. 1559 यदि आगन्तुक मुनि उपर्युक्त गुण विशिष्ट नहीं है तो क्या करने योग्य है?

उत्तर यदि आगन्तुक मुनि अन्य रूप हैं अयोग्य हैं तो प्रायश्चित्त के अधिकारी छेदोपस्थापना के योग्य होते हैं। यदि छेदोपस्थापना अस्वीकार होने पर भी आचार्य उसे संघ में रख लेते हैं तो वे आचार्य भी प्रायश्चित्त के योग्य हो जाते हैं। (मू.चा./भा.1, गा.167)

प्र. 1560 यदि आगन्तुक प्रायश्चित्त से अपनी शुद्धि कर लेता है, और आचार्य भी उसे अपना लेते हैं तब

वह शिष्य क्या कार्य करे?

उत्तर आचार्य के द्वारा अपना लिये जाने पर शिष्य आदर पूर्वक गुरु से सूत्र के अर्थ को विधि पूर्वक अध्ययन करे।

प्र. 1561 गुरु की सान्निधि में सूत्र अध्ययन करने हेतु शिष्य के लिए कौन-सी विधि आवश्यक है?

उत्तर प्रयत्न पूर्वक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को सम्यक् प्रकार से शोधन करके विनय पूर्वक औपचारिक क्रियाओं से युक्त होकर उस मुनि को गुरु के मुख से सूत्रों का अध्ययन करना चाहिए।

प्र. 1562 सूत्र अध्ययन हेतु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सम्यक् प्रकार शुद्धि किस तरह से होना चाहिए?

उत्तर **1. द्रव्य शुद्धि**- शरीर गत शुद्धि द्रव्य शुद्धि है। जैसे शरीर में घाव, पीड़ा, कष्ट आदि का नहीं होना। शरीर आदि का शोधन करना अर्थात् शरीर में ज्वर आदि या शरीर से पीव, खून आदि के बहते समय के अतिरिक्त स्वस्थ शरीर का होना द्रव्य शुद्धि है।

2. क्षेत्र शुद्धि- भूमिगत शुद्धि क्षेत्र शुद्धि है। जैसे चर्म, हड्डी, मूत्र, मल आदि का सौ हाथ प्रमाण भूमिभाग में नहीं होना। अर्थात् इस प्रकार से क्षेत्र में होने वाली अशुद्धि को दूर करना या उस क्षेत्र से अतिरिक्त क्षेत्र का होना क्षेत्रशुद्धि है।

3. कालशुद्धि- सन्ध्याकाल, मेघगर्जन काल, विद्युत्पात और उत्पात आदि काल से रहित समय का होना कालशुद्धि है। अर्थात् संधिकाल आदि के अतिरिक्त काल का होना कालशुद्धि है।

4. भाव शुद्धि- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों का यतिवरों के जीवन में जो त्याग किया जाता है वह भाव शुद्धि है। अर्थात् कषायादि रहित परिणाम होना ही भाव शुद्धि कहलाती है।

प्र. 1563 यदि कोई सूत्र के अर्थ की शिक्षा के लोभ से द्रव्य, क्षेत्र आदि का उल्लंघन करता है तो क्या अनिष्ट घटित होता है?

उत्तर सूत्रार्थ के लोभ में मुनि द्वारा द्रव्यादि शुद्धि की अवहेलना करने पर असमाधि, अस्वाध्याय, कलह, रोग और वियोगरूप अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

असमाधि- मन में असमाधानी रूप असमाधि को अथवा सम्यक्त्व आदि की विराधना रूप असमाधि को प्राप्त हो जाता है।

अस्वाध्याय- शास्त्रादि का अलाभ अथवा शरीर आदि के विघात रूप बाधाओं को प्राप्त होता है।

कलह- मोक्ष-मार्गियों के बीच तव-ममादि रूप कलह उत्पन्न हो जाता है और रोग-ज्वर, श्वास, खाँसी, भगंदर आदि रोगों का आक्रमण हो जाता है।

वियोग- आचार्य और शिष्य के एक जगह नहीं रह सकने रूप वियोग हो जाता है।

प्र. 1564 स्व-पर गुरुकुल में मुनिगणों को जीवदया के निमित्त और कौन-सी शुद्धियों का अनुपालन सतत करते रहना चाहिए?

उत्तर स्व-पर गुरुकुल में मुनिगणों को जीवदया हेतु संस्तर, आवास और उपकरणों का नित्य प्रति शोधन करना चाहिए।

प्र. 1565 मुनियों के संस्तर कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर मुनियों के संस्तर भूमि, शिला, फलक और तृण रूप चार तरह के होते हैं।

❖ शुद्ध, निर्जन्तुक भूमि पर सोना भूमि संस्तर है।

❖ सोने योग्य पाषाण-की शिला को शिला संस्तर कहते हैं।

❖ काष्ठ के पाटे को फलक संस्तर कहते हैं। तथा

❖ तृणों के समूह को तृणसंस्तर कहते हैं।

प्र. 1566 मुनियों का आवास कैसा होता है?

उ. संस्तर के स्थान को आवास कहते हैं अर्थात् जो आकाश प्रदेशों का समूह है वही आवास है।

प्र. 1567 मुनियों के उपकरण कौन-से होते हैं?

उत्तर शास्त्र (पुस्तक), मयूर पिच्छिका, कमण्डलु आदि जो कर्मों के संवर और निर्जरा के साधन हैं वे उपकरण कहलाते हैं।

प्र. 1568 मुनिगण कब-किस-किस काल में संस्तर, आवास और उपकरणों के शोधन का विशेष ध्यान रखते हैं?

उत्तर मुनिगण उपकरणों के साथ होने वाली प्रवृत्ति में प्रत्येक समय उपकरणों का देख-शोध कर प्रयोग किया करते हैं। और सायंकाल में हाथ की रेखा दिखने योग्य प्रकाश रहने पर संस्तर आदि स्थान पिच्छिका से परिमार्जित करके पाटे आदि बिछा लिया करते हैं और प्रातः काल भी इतना प्रकाश हो जाने पर संस्तर और स्थान आदि को देख-शोधकर उसे हटा दिया करते हैं।

प्र. 1569 आगन्तुक मुनियों को पर-संघ में चर्या-गमन और तपादि क्रियायें क्या स्वेच्छा से ही करना चाहिए या और कुछ करना चाहिए?

उत्तर आगन्तुक मुनि पहले जैसे अपने संघ में चर्या आदि कार्यों में विनयपूर्वक अपने आचार्य से पूछकर, प्रणाम आदि करके करते थे, उसी प्रकार से उन्हें पर-संघ में यहाँ पर स्थित आचार्य-देव के अभिप्रायानुसार उनसे आज्ञा लेकर ही इन सब क्रियाओं को करना चाहिए।

प्र. 1570 आगन्तुक मुनि स्वसंघ के सदृश पर-संघ में भी मुनियों की सेवा-वैयावृत्त आदि तप करते हैं या नहीं?

उत्तर आगन्तुक मुनि पर-संघ में क्षीण-शक्तिक, गुरु, बाल, वृद्ध और शैक्ष आदि सभी प्रकार के मुनियों की स्व-शक्ति अनुसार प्रयत्नपूर्वक यथायोग्य वैयावृत्त अवश्य करते हैं।

प्र. 1571 स्व-संघ सदृश पर-संघ में भी मुनिगण कौन-कौन-सी क्रियाओं को एक ही साथ मिलकर किया करते हैं?

उत्तर प्रतिक्रमण क्रियाओं में, आचार्य-उपाध्याय और मुनियों की वंदना रूप क्रियाओं में, देव वन्दना की क्रियाओं में तथा सामूहिक स्वाध्याय आदि की क्रियाओं में मुनिगण स्व-पर संघ में युगपत्-एक साथ रहते हैं अर्थात् सभी क्रियायें मिलकर किया करते हैं।

प्र. 1572 मुनियों की एक साथ की जाने वाली प्रतिक्रमण रूप क्रियायें कितने प्रकार की हैं?

उत्तर दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक रूप से सामूहिक की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रियायें पांच तरह की वर्णित की गयीं हैं। (मू.चा.भा.1, गा.175)

प्र. 1573 प्रतिक्रमण; दैवसिक, रात्रिक आदि क्रिया रूप क्यों हैं?

उत्तर क्योंकि दिवस के अन्त में अपराह्न (सायंकाल) काल में की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया है। पिछली रात्रि में की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया रात्रि प्रतिक्रमण क्रिया है। पक्ष के अन्त में चतुर्दशी को की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रिया है। आष्टाह्निक पर्व के अन्त में चतुर्दशी को की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया है तथा वर्ष के अन्त में वीर-भगवान के निर्वाण के पूर्व चतुर्दशी को की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया होने से उसे वार्षिक प्रतिक्रमण क्रिया कहते हैं।

प्र. 1574 यदि शिष्य से कोई अपराध इस संघ में हो जाता है तो वहीं पर उसका शोधन करना चाहिए अथवा अन्यत्र संघ में?

उत्तर जिस गच्छ-गण या चतुर्विध संघ में व्रतादिकों में अतिचार रूप अपराध हुआ है उसी संघ में उसे मुनि (शिष्य) को मिथ्याकार-पश्चात्ताप और गुरु से प्रायश्चित्त निवेदन कर अपने अन्तरंग से वह दोष निकाल देना चाहिए। अथवा जिस किसी के साथ अपराध हो गया हो उन्हीं से क्षमा याचना व क्षमा कराके उस अपराध से मुक्त होना चाहिए।

प्र. 1575 स्व-पर संघ के मुनि को सभी के साथ बोलना या बैठना करना होता है या नहीं?

उत्तर आर्यिकाओं और स्त्रियों के आने के काल में मुनि को एकान्त में अकेले नहीं बैठना चाहिए और उसी प्रकार से उन आर्यिकाओं और स्त्रियों के साथ अकारण बहुलता से वचनालाप भी नहीं करना चाहिए अर्थात् धर्मकार्य के बिना उनके साथ वार्तालाभ भी न करे।

प्र. 1576 यदि ऐसा है तो गुरु समक्ष आर्यिकाएँ प्रायश्चित्त ग्रहण और जिज्ञासा आदि का समाधान कैसे करेंगी?

उत्तर यदि आर्यिका अपने संघ की प्रधान आर्यिका-गणनी को आगे करके कुछ पूछे तो इस विधान से उन्हें मार्ग प्रभावना की इच्छा रखते हुए प्रतिपादन करना चाहिए अन्यथा नहीं।

प्र. 1577 आर्यिकाओं की वसतिका में मुनियों को कुछ क्रिया आदि करना युक्त है या नहीं?

उत्तर आर्यिकाओं की वसतिका में मुनियों का रहना और वहाँ पर बैठना, लेटना, स्वाध्याय, आहार-भिक्षा व

कायोत्सर्ग करना युक्त नहीं है।

प्र. 1578 मुनियों की तरह आर्यिकाओं की भी प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त आदि क्रियाओं को कराने में कुशल आचार्य कौन-से गुणों से विशिष्ट होते हैं?

उत्तर जो धर्म के प्रेमी हैं, धर्म में दृढ़ हैं, संवेग भाव सहित हैं, पाप भीरू हैं, शुद्ध आचरण वाले हैं, शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल हैं और हमेशा ही पाप क्रिया की निवृत्ति से युक्त हैं। जो गम्भीर हैं, स्थिर चित्त हैं, मित बोलने वाले हैं, किञ्चित कुतूहल करते हैं, चिर दीक्षित हैं, तत्त्वों के ज्ञाता हैं- ऐसे मुनिवर आर्यिकाओं के आचार्य होते हैं अथवा उनको मर्यादा का उपदेश देने वाले उनके गणधर होते हैं।

प्र. 1579 प्रियधर्मी किन्हें कहते हैं?

उत्तर प्रिय-इष्ट है उत्तम क्षमादि धर्म अथवा चारित्र जिनको वे प्रियधर्मी हैं अर्थात् उपशम आदि गुणों से समन्वित हैं।

प्र. 1580 दृढ़ धर्मी कौन कहलाते हैं?

उत्तर दृढ़ है धर्म का अभिप्राय जिनका वे दृढ़धर्मी कहलाते हैं।

प्र. 1581 संवेगी या संविग्न किन्हें कहते हैं?

उत्तर जो धर्म और धर्म के फल (संवर-निर्जरा) में हर्ष से सहित हैं उन्हें संवेगी या संविग्न कहते हैं।

प्र. 1582 पाप भीरू और आचरण शुद्ध कौन कहे जाते हैं?

उत्तर जो पाप से डरने वाले हैं वे पाप भीरू हैं और जो सब तरफ से शुद्ध आचरण वाले-अखण्डित आचरण वाले हैं वे आचरण परिशुद्ध कहे जाते हैं।

प्र. 1583 शिष्यों के संग्रह में कुशल से क्या तात्पर्य है?

उत्तर मोक्षमार्ग के पात्र या योग्य भव्य को ग्रहण करते हैं अर्थात् संघ में स्थान देते हैं और ग्रहण किये गये शिष्यों को शास्त्रज्ञान आदि से संयुक्त-सम्पन्न करते हैं अर्थात् दीक्षा, शिक्षा, व्याख्यान आदि के द्वारा शिष्यों का उपकार करना संग्रह कहलाता है।

प्र. 1584 आचार्य भगवन् शिष्यों पर अनुग्रह किस तरह से करते हैं?

उत्तर शिष्यों का प्रतिपालन करते हैं अर्थात् पञ्चाचारों का पालन करवाते हैं और आचार्यपद आदि प्रदान करते हुए उनकी योग्यतानुसार उन पर अनुग्रह करते हैं। यहीं आचार्य भगवन् का शिष्यों पर अनुग्रह करना कहलाता है।

प्र. 1585 पाप क्रिया से निवृत्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर जो हमेशा सारक्षण क्रिया रूप पाप क्रिया निवृत्ति से युक्त रहते हैं। अर्थात् संघ के मुनियों की रक्षा में युक्त होते हुए उन्हें आत्म हित का उपदेश देते हैं।

प्र. 1586 आचार्य देव के गम्भीर गुण का अर्थ क्या है?

उत्तर जो गुणों में अगाध हैं अर्थात् जिनके गुणों का कोई माप नहीं है तथा जो किसी से कर्मठता रूप उद्यम में कम नहीं पड़ते हैं।

प्र. 1587 आचार्य परमेष्ठी स्थिर चित्त और मित भाषी होते हैं, इसका अर्थ क्या है?

उत्तर जो किसी के द्वारा कदर्थित-तिरस्कृत नहीं होते हैं अर्थात् स्थिर-चित्त होते हैं और जो थोड़े बोलने वाले होते हैं।

प्र. 1588 आचार्य महाराज किंचित् कुतूहल कर्त्ता हैं, ऐसा क्यों कहा?

उत्तर जो अल्प कौतुक करने वाले हैं अर्थात् विस्मयकारी नहीं है अथवा अल्प गुह्य विषय को छिपाने वाले (ढकने वाले) अर्थात् शिष्यों के दोषों को सुनकर उनको अन्य किसी से न बताने वाले हैं। (अपनी किञ्चित् प्रसन्नता से शिष्यों का उत्साह बढ़ाते रहते हैं एतदर्थ भी आचार्य महाराज को किञ्चित् कुतूहली कहा गया है।)

प्र. 1589 आचार्य भगवन् को चिर दीक्षित कहने क्या तात्पर्य होता है?

उत्तर चिर-दीक्षित का अर्थ बहुत काल (कम-से-कम बारह वर्ष रूप एक तप-काल से दीक्षा प्राप्त हैं, अर्थात् व्रतों के भार को धारण करने वाले हैं और गुणों में ज्येष्ठ हैं ऐसे भगवन्; ऐसा तात्पर्य है।)

प्र. 1590 आचार्य परमेष्ठी तत्त्वों के ज्ञाता हैं इसका विशेष अर्थ क्या है?

उत्तर जो गृहीतार्थ-पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले हैं अर्थात् आचार शास्त्र और प्रायश्चित्त आदि शास्त्रों में कुशल हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तत्त्वज्ञ कहे जाते हैं।

प्र. 1591 क्या परगण (पर संघ) में स्थित वह आगन्तुक मुनि ही आचार्य-देव की सभी आज्ञा पाले? अथवा अन्य मुनि भी पालें?

उत्तर नहीं, ऐसी बात नहीं है, किन्तु अपने संघ में एक मुनि (आगन्तुक एकादि मुनि) अथवा समूह रूप सभी मुनियों के लिए भी यही विधि है अर्थात् संघस्थ सभी मुनि आचार्य की सम्पूर्ण तथा अनुकूलता रखें ऐसा आदेश या शास्त्र की आज्ञा है।

प्र. 1592 यदि मुनियों के लिए ऐसा न्याय है तो आर्यिकाओं के लिए क्या आदेश है?

उत्तर पूर्व में जैसा कहा गया है वैसा ही यह समाचार (नित्य कर्त्तव्य) आर्यिकाओं को भी सम्पूर्ण अहोरात्र में यथायोग्य-अपने अनुरूप अर्थात् वृक्षमूल, आतापन आदि योगों से रहित (छोड़कर) वही सम्पूर्ण समाचार विधि आचरित करनी चाहिए।

प्र. 1593 वे आर्यिकाएँ वसतिका में अपना काल किस प्रकार से व्यतीत करती हैं?

उत्तर वे आर्यिकाएँ परस्पर में मात्सर्य भाव को छोड़कर एक दूसरे के अनुकूल रहती हैं, परस्पर की रक्षा करने में पूर्ण तत्पर रहती हैं, क्रोध, बैरभाव और कौटिल्य भावों से रहित होती हैं। लज्जा, मर्यादा और

क्रियाओं से सहित रहती हैं।

प्र. 1594 लज्जा, मर्यादा और क्रिया का अर्थ क्या है?

उत्तर ❖ लोकापवाद से डरते रहना लज्जा गुण है।

❖ राग-द्वेष परिणाम से न्याय का उलंघन न करके प्रवृत्ति करना मर्यादा है अर्थात् अनुशासन बद्धता का अनुसरण मर्यादा कहलाती है।

❖ अपने पितृकुल और पतिकुल अथवा गुरुकुल के धर्म संस्कार के अनुरूप आचरण में तत्पर रहना क्रिया कहलाती है।

प्र. 1595 पुनरपि वे आर्यिकाएँ किन गुणों से विशिष्ट रहती हैं? या किस तरह के उपयोग और योग में सतत युक्त रहती हैं?

उत्तर अध्ययन, परिवर्तन, श्रवण, कथन, अनुप्रेक्षा, तप, विनय और संयम रूप उपयोग तथा योग में वे आर्यिका प्रयत्न शील रहती हैं।

* **अध्ययन**- बिना पढ़े हुए शास्त्रों का पढ़ना अध्ययन है।

* **परिवर्तन**- पढ़े हुए शास्त्रों का पुनः पुनः पढ़ना परिवर्तन है।

* **श्रवण**- सुने या न सुने हुए शास्त्रों का अवधारण करना श्रवण है।

* **कथन**- अपने जाने हुए शास्त्रों का अन्य को सुनाना कथन है।

* **अनुप्रेक्षा**- सुने हुए धार्मिक विषयों का चिंतवन करना अनुप्रेक्षा है।

* **तप**- अनशन आदि और प्रायश्चित्त आदि बाह्याभ्यन्तर तप हैं।

* **विनय**- मन-वचन-काय की स्तब्धता का न होना अर्थात् नम्रता का होना विनय है।

* **संयम**- इन्द्रिय निरोध तथा जीव-वध का परित्याग करना संयम है।

* **उपयोग**- अध्ययन और ज्ञानाभ्यास आदि कार्यों में लीन रहना उपयोग है।

* **योग**- मन-वचन-काय का शुभ अनुष्ठान योग कहलाता है।

प्र. 1596 किन विशेषताओं से युक्त और कैसी चर्या वाली वे आर्यिकाएँ हुआ करती हैं?

उत्तर विकार रहित वस्त्र (धवल व सादे वस्त्र), विलास युक्त गमन और भ्रूविकार कटाक्ष आदि रहित वेष, पसीना युक्त मैल और धूलि से लिप्त देह सहित होती हुई शरीर संस्कार (सजावट) से रहित होती हैं तथा वे आर्यिकाएँ क्षमादि धर्म, माता-पिता या गुरुकुल के अनुरूप अपना यश और अपने व्रतों के अनुरूप निर्दोष चर्या करती हैं।

प्र. 1597 आर्यिकाएँ किस तरह की योग्य वसतिका में किस तरह से रहती हैं?

उत्तर जो गृहस्थों से मिश्रित न हो, असंयतों के, चोरों के, तिर्यञ्चों के, असज्जनों के सम्पर्क से रहित हो,

संयतों के सन्निकट न हो, जो संक्लेश से रहित और प्रतिष्ठापन समिति के लिए गूढ़ (गुप्त) स्थान से सहित हो, स्वाध्याय, ध्यान और रुग्नावस्था में भी अनुकूलता युक्त हो ऐसे विशुद्ध संचरण योग्य वसतिका में आर्यिकाएँ दो तीन या तीस चालीस पर्यन्त भी एक साथ मिलकर रहती हैं।

प्र. 1598 क्या आर्यिकाओं को परगृह में कदाचित् भी नहीं जाना चाहिए?

उत्तर आर्यिकाओं के लिए गृहस्थ के घर और यतियों की वसतिकाएँ परगृह हैं। बिना प्रयोजन के आर्यिकाएँ परगृह न जाएँ। यदि गृहस्थ के यहाँ भिक्षा आदि लेना और आचार्य संघ में प्रतिक्रमण, वन्दना आदि प्रयोजन से जाना है तो आर्यिका-प्रमुख गणिनी से पूछकर पुनः कुछ आर्यिकाओं को साथ लेकर ही जाना चाहिए, अकेली नहीं जाना चाहिए।

प्र. 1599 अपने निवास स्थान में अथवा पर-गृह में आर्यिकाओं को कौन-सी क्रियायें नहीं करना चाहिए?

उत्तर रोना, नहलाना, खिलाना, भोजन पकाना, सूत कातना, आरम्भ करना, यति पदादि मालिश व प्रक्षालन करना, धोना और गीत गाना इन अपवाद जनक क्रियाओं को स्व-परस्थान में आर्यिका नहीं करें।(मू.चा.भा.1, गा.193)

प्र. 1600 देव वंदना, गुरुवंदना आदि के निमित्त आर्यिकाएँ किस तरह जावें?

उत्तर देव वंदना, गुरुवंदना, आहार, विहार, नीहार आदि किसी भी प्रयोजन के लिए बाहर जावें तो दो-चार आदि मिलकर साथ-साथ तथा वृद्धा आर्यिकाओं के साथ ही जावें।

प्र. 1601 क्या जैसे मुनि अपने आचार्य आदि की वंदना करते हैं, वैसे ही आर्यिकाएँ भी करती हैं?

उत्तर नहीं, आर्यिकाएँ तो आचार्य को पाँच हाथ से, उपाध्याय को छह हाथ से और साधु को सात हाथ दूर से रहकर गवासन से बैठकर ही वंदना करती हैं। अन्य प्रकार से नहीं।

प्र. 1602 यदि इस विधि से विपरीत कार्य हो तो क्या समस्या संभव है?

उत्तर क्योंकि मूलाचारादि ग्रन्थानुसार काम से मलिन चित्त, स्थविर, चिरदीक्षित, बहुश्रुत, तपस्वी तथा गुरु व आचार्य को भी नहीं गिनता है, कुल का भी विनाश कर देता है। एतदर्थ आगम में तो शीलवान पुरुष रूपीघृत को स्त्री रूपी अनल से दूरी रूप परहेज रखना बतलाया गया है।

प्र. 1603 सम्यक् आचरण विधान रूप चर्या साधु और आर्यिकाओं के लिए कौन-से महान फल को प्रदान करती है?

उत्तर सम्यक् आचरण-विधान रूप चर्या साधुओं को साक्षात् और आर्यिकाओं के लिए परम्परा से इस जगत् में निर्ग्रन्थ मय महान मोक्षमार्ग से पूज्यता को, यश को और सुख को प्राप्त कराते हुए अंत में सिद्ध पद प्राप्त करा देती है।

अध्याय-4
स्वाध्याय से लाभ, सत्य के भेद, एषणा समिति आदि
(छियालीस दोष और बत्तीस अन्तरायादि का वर्णन)

प्र.1604 किस तरह का ज्ञान विस्मृत हो जाने पर भी परभव में उपलब्ध होकर केवलज्ञान का कारण हो जाता है?

उत्तर विनय से जो शास्त्र पढ़ा गया है, प्रमाद से यदि उसका विस्मरण भी हो जावे तो अन्य जन्म में वह सूत्र-ग्रन्थ उपस्थित हो, जाता है, स्मरण में आ जाता है और वह पढ़ा हुआ शास्त्र केवलज्ञान को भी प्राप्त करा देता है। अतः विनय व कालादि की शुद्धि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। (मू.चा. भाग 1, गा.286, पृ.242)

प्र.1605 स्वाध्याय से साधुओं को होने वाले तात्कालिक लाभ को आचार्यों ने किस तरह दर्शाया है?

उत्तर विनय से सहित मुनि स्वाध्याय करते हुए पंचेन्द्रियों को संकुचित (वश) कर तीन गुप्तियों युक्त हो एकाग्रमना हो जाते हैं। (मू.चा.भा.2, गा.971, पृ.147)

प्र.1606 जिनागम में दस प्रकार के सत्य कौन-से बतलाये गये हैं?

उत्तर जिनागम में जनपद सत्य, सम्मत सत्य, स्थापना सत्य, नाम सत्य, रूप सत्य, प्रतीत्य सत्य, संभावना सत्य, व्यवहार सत्य, भावसत्य और उपमा सत्य इस दस प्रकार के सत्य बतलाये गये हैं।

प्र.1607 जनपद सत्य (देश सत्य) किसे कहते हैं?

उत्तर जनपद सत्य या देश सत्य उसे कहते जो किसी वस्तु का नाम विभिन्न देशों में अपने-अपने व्यवहार चलाने हेतु सर्वमान्य होता है। जैसे- जनपद (देश या प्रदेश) की सभी भाषाओं में ओदन (भात) आदि अन्य-अन्य शब्दों के द्वारा पुकारा जाता है। द्रविड़ भाषा में ओदन को 'चौर' कहते हैं, कन्नड़ भाषा में 'कूल' कहते हैं, गौड़ भाषा में 'भक्त' और तमिल भाषा में 'सादं' कहते हैं। ऐसे ही विभिन्न देशों में उन-उन भाषाओं के द्वारा कहा गया ओदन जनपद सत्य है ऐसा तुम जानो।

प्र.1608 बहुजन (लोक) सम्मत सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो बहुत जनों को सम्मत है वह भी सत्य है जैसे किसी मनुष्य-स्त्री (मानुषी) को लोक में महादेवी कहते हैं और जैसे 'देव बरसता है' इत्यादि वचन लोक सम्मत सत्य है। अर्थात् मेघ बरसता है किन्तु व्यवहार में लोग कहते हैं देव बरसता है यह बहुजन सम्मत सत्य कहलाता है।

प्र.1609 जनपद सत्य या सम्मत सत्य में कहे गये शब्दों को यह ऐसा नहीं है ऐसा कहने पर क्या विसंगति उत्पन्न होती है?

उत्तर जनपद सत्य या सम्मत सत्य में कहे गये शब्दों को प्रतिबन्ध लगाते हुए 'यह ऐसा नहीं है' ऐसा कहने

पर आपके सत्य वचन भी असत्य कहे जायेंगे।

प्र.1610 स्थापना सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर किसी वस्तु में यह वही है ऐसी व्यवहार नय से गुणारोपण रूप स्थापना करना स्थापना सत्य है। जैसे पाषाण की प्रतिमा में यह महावीर भगवान हैं या यह अरिहन्त प्रतिमा, सिद्ध प्रतिमा अथवा इन्द्र प्रतिमा है इत्यादि।

प्र.1611 नाम सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर किसी में जाति आदि गुण की अपेक्षा न करके नाम रख-देना यह नाम सत्य या अपेक्ष्य सत्य कहलाता है। जैसे- यह देवदत्त हैं या यह आदीश कुमार है। यद्यपि वह देवों द्वारा नहीं दिया गया है ना ही युग के आदि में हुआ कोई ईश है फिर नाम सत्य कहलाता है।

प्र.1612 रूप सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर रूप में वर्ण की उत्कृष्टता से कहना रूप सत्य कहलाता है। अर्थात् किसी वस्तु में अनेक वर्ण होने पर भी उसमें जो प्रधान हैं, अधिक है उसी की अपेक्षा रखना यह रूप सत्य है। जैसे बगुला सफेद होता है। यह व्यक्ति गौर वर्ण वाला है। यद्यपि नख, चोंच आँखें भिन्न वर्ण वाली लाल, काली इत्यादिक रूप होने पर भी सफेद, गौर आदि प्रमुख या उत्कृष्ट वर्ण होने पर उसे उस वर्ण का कहना यह रूप सत्य कहलाता है।

प्र.1613 प्रतीत्य सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर अन्य वस्तु की अपेक्षा करके जो कुछ कहा जाता है वह प्रतीत्य या प्रतीति सत्य है; जैसे- किसी ह्रस्व की अपेक्षा करके कहना कि यह दीर्घ है। एक वितस्ति के प्रमाण से एक हाथ प्रमाण दीर्घ है। दो हाथ प्रमाण से पाँच हाथ प्रमाण बड़ा है, इस तरह से मेरु पर्यन्त तक या तीन लोक पर्यन्त व्यवस्था समझना चाहिए। उसी प्रकार से त्रिकोन, चौकोन और गोल आदि भी एक दूसरे की अपेक्षा से ही हैं। तथा कुरूप-सुरूप, पण्डित-मूर्ख, पूर्व-पश्चिम ये सब एक दूसरे को अपेक्षित करके होते हैं अतः इनका कथन अपेक्ष्य सत्य या प्रतीत्य सत्य कहलाता है। इसमें किसी को विवाद करना उचित नहीं है। अन्यथा असत्य की कोटि में आ जावेगा।

प्र.1614 व्यवहार सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर व्यवहार से कथन करना व्यवहार सत्य है। जैसे-भात पकाया जाता है, रोटी या पुआ पकाये जाते हैं। इत्यादि प्रकार के वचन लोक में देखे जाते हैं यह सब व्यवहार सत्य है। जो निर्विवाद भी है। वास्तव में यदि भात पकाया जावे तो वह भस्म हो जाए और यदि रोटी पकायी जावे तो वह जल जाये, किन्तु फिर भी व्यवहार में वैसा कथन होता है। अतः वह व्यवहार सत्य है।

प्र.1615 सम्भावना सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो सम्भावित किया जाता है उसे सम्भावना सत्य कहते हैं। जैसे- 'यदि चाहे तो ऐसा कर डाले', 'इन्द्र चाहे तो जम्बूद्वीप को पलट दे' ऐसे इस वचन में इन्द्र की सामर्थ्य सम्भावित की जा रही है कि यह चाहे तो जम्बूद्वीप को अन्य रूप कर सकता हे किन्तु वह ऐसा कभी करता नहीं है।

प्र.1616 सम्भावना सत्य के कितने कौन-से भेद हैं?

उत्तर सम्भावना सत्य के अभिनीत और अनभिनीत के भेद से दो भेद हैं। जो शक्यानुष्ठान रूप वचन हैं अर्थात् जिनका करना शक्य है वे वचन अभिनीत सम्भावना सत्य हैं जैसे,-'यदि यह चाहे तो प्रस्थ(सेर भर) खा जावे', 'यह अपनी भुजाओं से गंगा को पार कर (तिर) सकता है।' अतः इसे सम्पाद्य वचन भी कहते हैं।

जो कार्य सामर्थ्य होते हुए भी नहीं किया जाता है वह अशक्यानुष्ठान रूप वचन अनभिनीत सम्भावना सत्य कहलाता है जैसे- 'यह महाबलशाली शिर से पर्वत फोड़ सकता है।' इस तरह के वचनों को असम्पाद्य वचन भी कहते हैं।

प्र.1617 भाव सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर हिंसा आदि दोष रहित भाव से अकल्पित भी वचन भाव सत्य है। अर्थात् हिंसा, चौर्य, अब्रह्म, परिग्रह आदि को ग्रहण करने वाले वचनों से रहित वचन हिंसादि दोष रहित हैं, अकल्पित (अयोग्य) भी हैं, तो भी परमार्थ से सत्य होने से भाव सत्य हैं। जैसे- किसी ने पूछा, 'तुमने चोर देखा है तो कहना कि मैंने नहीं देखा है' यद्यपि ये वचन असत्य ही हैं फिर भी परमार्थ से सत्य हैं क्योंकि हिंसादि दोषों से रहित हैं।

जिन वचनों से इहलोक, परलोक बिगड़ता है और पर को कष्ट होता है वे सभी वचन सत्य होकर भी त्याग करने योग्य हैं, क्योंकि राग-द्वेष से सहित हैं। तात्पर्य यह है कि हिंसादि दोषों से सहित वचन सत्य भी हों तो नहीं बोलना चाहिए। इसी का नाम भाव सत्य है।

प्र.1618 उपमा सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर उपमान (समानता या तुलनात्मक) रूप वचन उपमा सत्य हैं। जैसे- पल्योपम आदि वचन; ये वचन उपमा मात्र ही हैं। क्योंकि किसी के द्वारा योजन प्रमाण का गड्ढा रोमों के अतीव सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़ों से भरा नहीं जा सकता। इसी प्रकार से सागर, राजू, प्रतरांगुल, सूच्यंगुल, घनांगुल, श्रेणी, लोक प्रतर और लोक ये सभी उपमावचन हैं तथा चन्द्रमुखी कन्या इत्यादि वचन भी उपमान वचन होने से उपमा सत्य वचन हैं। जो निर्विवाद हैं। (मू.चा., भा.1,गा.313)

प्र.1619 सत्य से व्यतिरिक्त वचन कौन-से हैं? सटीक उत्तर दीजिए?

उत्तर उपर्युक्त जनपद आदि दस प्रकार के सत्य वचनों से जो विपरीत है वह असत्य है। जिसमें सत्य और असत्य दोनों हैं वह सत्यमृषा है। सत्य-असत्य इन उभय से विपरीत अनुभय वचन असत्यमृषा है

ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

प्र.1620 सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप चार तरह के वचनों में से साधुजनों को कौन-से वचन बोलना चाहिए?

उत्तर उपर्युक्त चार तरह के वचनों में से असत्य और उभयवचन को छोड़ देना चाहिए और सत्य तथा अनुभय वचन साधु जनों को बोलना चाहिए।

प्र.1621 अनुभय वचन रूप असत्यमृषा भाषा कितने प्रकार की है?

उत्तर आमन्त्रणी, आज्ञापनी, याचनी, पृच्छना, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, इच्छानुलोमा, संशयवचनी और अनक्षरी इस तरह अनुभय वचन रूप असत्यमृषा भाषा नव प्रकार की कही गई है।

प्र.1622 आमन्त्रणी भाषा किसे कहते हैं? उसे उदाहरणादि से स्पष्ट कीजिए। तथा यह भी बतलाइये कि वह असत्यमृषा रूप अनुभयवचन रूप कैसे है?

उत्तर जिसके द्वारा आमन्त्रण किया जाता है वह आमन्त्रणी भाषा है। जिसने वाच्य-वाचक (कहने योग्य-कहे जाने वाले) सम्बन्ध को जान लिया है उस व्यक्ति को अन्य कार्य से हटाकर अपनी तरफ उद्यत करना आमन्त्रणी भाषा है। जैसे, 'हे देवदत्त!' इत्यादि सम्बन्ध वचन बोलना। इस शब्द से वह देवदत्त अन्य कार्य को छोड़कर बुलाने वाले की तरफ उद्यत होता है।

आमन्त्रणी भाषा में आमन्त्रण-सम्बोधन रूप से अपनी तरफ अभिमुख करने से यह असत्य नहीं है, पश्चात् किस लिए सम्बोधन किया ऐसा कोई अन्य अर्थ ज्ञात न होने से यह सत्य नहीं है। अतः असत्यमृषा भाषा अनुभय वचन रूप है।

प्र.1623 आज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा आज्ञा दी जाती है वह आज्ञापनी भाषा है। जैसे, 'मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ।' इत्यादि वचन बोलना। इसमें सम्बोधन रूप से अपनी तरफ अभिमुख करने से यह असत्य नहीं है, पश्चात् किसलिए सम्बोधन किया ऐसा कोई अन्य अर्थ ज्ञात न होने से यह सत्य नहीं है। अतः असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1624 याचनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा याचना की जाती है वह याचनी भाषा है। जैसे, 'मैं तुमसे कुछ मांगता हूँ।' यहाँ याचना मात्र से असत्य नहीं है, उत्तरकाल में क्या माँगेगा यह नहीं जाना गया है अतः सत्य भी नहीं है। अतः असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1625 पृच्छना भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा प्रश्न किया जाता है वह पृच्छना भाषा है। जैसे, 'मैं आपसे पूछता हूँ' इत्यादि। इस भाषा में प्रश्न मात्र से वह झूठ भी नहीं है, पुनः यह नहीं जाना जाता है कि यह क्या पूछेगा। अतः सत्य भी

नहीं है। इस कारण यह भाषा असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1626 प्रज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा प्रज्ञापना की जाये अर्थात् बतलाने भाव किया जाये वह प्रज्ञापनी भाषा है। जैसे- 'मैं आपसे कुछ निवेदन करता हूँ' इत्यादि। इस भाषा में निवेदन करने मात्र से वह झूठ नहीं है, पुनः क्या निवेदन करेगा यह नहीं जाना गया अतः सत्य भी नहीं है। अतः यह असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1627 प्रत्याख्यानी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा कुछ त्याग किया जाता है वह प्रत्याख्यानी भाषा है। जैसे, 'मुझे प्रत्याख्यान दीजिये' इत्यादि। इस भाषा में प्रत्याख्यान सामान्य के त्यागने की प्रतीति होने से असत्य भी नहीं है, पश्चात् किस वस्तु का त्याग देंगे यह नहीं जाना जाता है अतः सत्य भी नहीं है। अतः यह असत्यमृषा रूप अनुभयवचन है।

प्र.1628 इच्छानुलोमा भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जो इच्छा के अनुकूल है वह इच्छानुलोमा भाषा है जो सर्वत्र अनुकूल रहती है। जैसे, 'मैं ऐसा करता हूँ।' इत्यादि। इस भाषा में इच्छा करता हूँ यह कहना असत्य नहीं, पुनः क्या इच्छा करता हूँ यह नहीं जाना गया अतः सत्य भी नहीं है। इस कारण यह भाषा असत्यमृषा या अनुभय वचन रूप है।

प्र.1629 उपर्युक्त सात भाषाएँ क्या समिति के अन्तर्गत आती हैं?

उत्तर हाँ! उपर्युक्त सात भाषाओं के साथ समिति का सम्बन्ध लगा लेना चाहिए, अर्थात् ये सातों भेद भाषा समिति के अन्तर्गत आते हैं।

प्र.1630 संशय-वचनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जो संशय अर्थात् अव्यक्त अर्थ को कहती है वह संशय-वचनी भाषा है। अर्थात् जिन सन्देह रूप वचनों से अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती है वे वचन संशय-वचनी है। जैसे, दाँत रहित अतिबाल और अतिवृद्ध के (कुछ) वचन तथा भैंस आदि पशुओं के शब्द। यह भाषा भी असत्य व सत्य से परे होने के कारण असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1631 अनक्षरी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें ककार, चकार, मकार आदि अक्षर अभिव्यक्त नहीं हैं, स्पष्ट नहीं हैं वह अनक्षरी भाषा है। यह द्वीन्द्रिय आदि जीवों में तो होती ही है। इस भाषा में अक्षर संदिग्ध प्रतीति में आ रहे हैं इसलिए असत्य भी नहीं है और अर्थ संदिग्ध होने से स्पष्ट प्रतीति में नहीं आता है इसलिए सत्य भी नहीं है। अर्थात् शब्द मात्र तो प्रतीति में आ रहे हैं इसलिए असत्य भी नहीं है और अक्षरों का अर्थ प्रतीति में नहीं आ रहे हैं इसलिए सत्य भी नहीं है। इस न्याय से नव प्रकार की असत्यमृषा भाषा जो अनुभयरूप है उसका व्याख्यान पूर्ण हुआ।

प्र.1632 मुनियों के लिए किस तरह के वचन बोलना चाहिए?

उत्त्र अलीक-झूठ वचन आदिक दोषों से रहित अर्थात् पर को ठगने आदि के वचनों से रहित और हिंसा आदि पाप का आगमन कराने वाले वचनों से रहित ऐसे निर्दोष वचन बोलना चाहिए।

सूत्र के अनुसार अर्थात् आगम के अनुकूल वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा आदि के द्वारा या अन्य भी समीचीन धर्म कार्य के निमित्त बोलना या अनुभय वचन बोलना अथवा सम्यक् शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने रूप, अनेक विषय में प्रश्न रूप या अनुप्रेक्षा आदि रूप वचन बोलना चाहिए।

प्र.1633 पापभीरू और गुणाकांक्षी साधु बोलते समय कौन-सी सावधानी वर्तता है?

उत्तर पापभीरू और गुणाकांक्षी साधु सावद्य (पाप) और अयोग्य वचन को छोड़ता हुआ तथा नित्य ही पाप योग से वर्जित वचन बोलता हुआ वर्तता है।

यदि मुनि-साधु मौन नहीं कर सकता है तो इस प्रकार से बोले कि उसके मुख से पाप सहित वचन और यकार-मकार आदि रूप 'रे', 'तू' आदि शब्द अथवा गाली गलौज आदि अभद्र वचन न निकल सकें।

प्र.1634 मुनि के शुद्ध एषणा समिति कैसे होती है?

उत्तर उद्‌गम उत्पादन और एषणा दोषों के द्वारा आहार, उपकरण और वसति आदि का शोधन करते हुए मुनि के शुद्ध एषणा समिति होती है। (मू.चा., भा.1,गा.318)

प्र.1635 निर्दोष समिति पालक मुनि के शोधन करने योग्य पिण्ड, उपाधि शय्या किसे कहते हैं?

उत्तर पिण्ड आहार को कहते हैं। उपधि से पुस्तक, पिच्छिका आदि उपकरण लिये जाते हैं और शय्या शब्द से वसति आदि ग्राह्य हैं। उद्‌गमादि दोष पुस्तक, पिच्छिका और वसतिका आदि में भी निषिद्ध किये गये हैं। जिनके शोधन से मुनि के निर्दोष अशन (एषणा) आदि समिति का पालन होता है।

प्र.1636 साधु आहार हेतु कहाँ, कैसी चर्या करे और किस तरह की सावधानी का प्रवर्तन करे?

उत्तर *आहार की बेला में चर्या को गमन करते हुए साधु न ही अधिक जल्दी-जल्दी और न अधिक धीरे-धीरे तथा न ही विलम्ब करते हुए चले।

* धन से सम्पन्न और असम्पन्न आदि गृहों का विचार-भेद-भाव न करे।

* मार्ग में किसी से बात न करे और न ठहरे अर्थात् आहार के लिए निकलने से लेकर आहार-ग्रहण करने तक मौन रहे।

* मार्ग में हास्य आदि भी न करे, हँसते हुए या अन्य कोई चेष्टा करते हुए न चले।

* नीच कुलों के घरों में प्रवेश न करे और सूतक, पातक आदि दोषों से दूषित कुलों के गृहों में भी न जावे।

* द्वारपाल आदि के द्वारा रोके जाने पर वहाँ प्रवेश न करे।

* जिन स्थानों पर आहारार्थ जाने का विरोध है उन स्थानों को छोड़ देवे।

* दुष्ट जन, गधे, ऊँट, भैंस, गाय, सर्प आदि जीवों से दूर से बचकर निकले।

* मत्त अर्थात् पागल या उन्मत्त अर्थात् मदिरा आदि से नशातुर, गर्विष्ठ जनों को बिल्कुल दूर से ही छोड़ देवे।

* स्नान, विलेपन, मण्डन अर्थात् शृंगार या रति क्रीड़ा में आसक्त हुई महिलाओं का अवलोकन न करे।

* श्रावक द्वारा विनय पूर्वक ठहराये-पड़िगाहे जाने पर ही ठहरे अन्यथा नहीं ठहरे।

* श्रावक द्वारा सम्यग्विधि-नवधा-भक्ति से दिये गये प्रासुक आहार को सिद्धभक्ति करके (सिद्धभक्तिपूर्वक पूर्व दिन गृहीत प्रत्याख्यान का निष्ठापन करके) ग्रहण करे।

* नीचे भोज्य वस्तु आदि न गिराते हुए या पेय वस्तु न झराते (गिराते) हुए छिद्र रहित अपने पाणिपात्र (अंजली) को नाभि प्रदेश के पास करके शुर-शुर शब्द आदि को न करते हुए आहार करे।

* स्त्रियों के अंगोंपांग आदि अवयवों का या उनके लीलापूर्वक गमन, विलास, गीत, नृत्य, हास्य, स्नेह दृष्टि, कटाक्षपूर्वक देखना आदि चेष्टाओं का अवलोकन न करे।

* उपर्युक्त बातों को अमल में लाते हुए पूर्ण उदर आहार करके अथवा अन्तराय आ जाने पर अपूर्ण उदर आहार करके, मुख-हाथ-पैरों का प्रक्षालन करके, शुद्ध प्रासुक जल से भरे हुए कमण्डलु को लेकर आहार-गृह (चौके) से निकले।

* धर्म-कार्य के बिना अन्य किसी के गृह में प्रवेश न करे।

* आहार-चर्या के उपरान्त जिनालय या गुरुपाद मूल आदि स्थान में आकर प्रत्याख्यान ग्रहण करके गोचर (ईर्यापथ) प्रतिक्रमण करे। (मू.चा., भाग 1, गा. 318 टीका)

प्र.1637 पिण्ड (आहार) शुद्धि कितने प्रकार की होती है?

उत्तर उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजना, प्रमाण, अंगार, धूम और कारण इन दोषों से रहित पिंडशुद्धि आठ प्रकार की है।

प्र.1638 उद्गम आदि आठ दोषों का लक्षण क्या है?

उत्तर **उद्गम दोष**-दाता में होने वाले जिन अभिप्रायों से आहार आदि उत्पन्न होता है वह उद्गम दोष है।

उत्पादन दोष- पात्र में होने वाले जिन अभिप्रायों से आहार आदि उत्पन्न है या कराया जाता है वह उत्पादन दोष है।

एषणा-(अशन) दोष- जिन पारिवेशक-परोसने वालों से भोजन किया जाता है उनकी अशुद्धियाँ एषणा या अशन दोष है।

संयोजना-दोष- जो मिलाया जाता है अथवा किसी वस्तु का मिलाना मात्र ही संयोजना दोष है। या

ठण्डा, गर्म, प्रासुक, अप्रासुक व विरुद्धादि आहार पान परस्पर मिला देना संयोजना दोष है।

प्रमाण दोष- अतिमात्रा में या प्रमाण से अधिक आहार लेना प्रमाण दोष है।

अंगार दोष- जो आहार में गृद्धता (लम्पटता) रखता हुआ आहार लेता है उसके अंगार दोष होता है।

धूम दोष- जो निन्दा करते हुए अर्थात् यह आहार विरूपक है, मेरे लिए अनिष्ट है, ऐसा करके (मुखम्लान करते हुए) आहार लेता है उसके धूम नामक दोष होता है। क्योंकि अंतरंग में संक्लेश देखा जाता है।

कारण दोष- निष्कारण (बिना प्रयोजन) आहार ग्रहण करना कारण दोष है।

प्र.1639 प्रमाण दोष से बचने हेतु आहार में प्रमाण कैसा होना चाहिए?

उत्तर शुद्धाहार से उदर के दो भाग पूर्ण करना और जल से उदर का तीसरा भाग पूर्ण करना तथा उदर का चतुर्थ भाग खाली रखना सो प्रमाणभूत निर्दोष आहार कहलाता है।

प्र.1640 अधिक आहार ग्रहण करने में क्या दोष है?

उत्तर जो प्रमाण से अधिक आहार ग्रहण करते हैं उनके प्रमाण या अतिमात्र नाम का आहार-दोष होता है। प्रमाण से अधिक आहार ग्रहण करने पर स्वाध्याय नहीं होता है, षट् आवश्यक क्रियाएँ करना भी शक्य नहीं रहता है। ज्वर आदि रोग भी उत्पन्न होकर संतापित करते हैं तथा निद्रा और आलस्य आदि दोष भी होते हैं। अतः प्रमाणभूत आहार ही लेना चाहिए। (मू.चा.गा476 टी.)

प्र.1641 मुनि किन कारणों से आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर मुनि वेदना शमन, वैयावृत्ति, क्रिया पालन, चारित्र पालन, प्राण-रक्षा और धर्म-रक्षा इन छह कारणों से आहार ग्रहण करते हैं। अर्थात्-

*'मैं क्षुधा-वेदना का उपशम करूँ' इसलिए मुनि आहार ग्रहण करते हैं।

*'मैं अपनी और अन्य साधुओं की वैयावृत्ति करूँ' अतः आहार करते हैं।

*'मेरी छह आवश्यक क्रियाएँ भोजन के बिना नहीं हो सकती हैं, मैं उन क्रियाओं को विधिवत् कर सकूँ,' इसलिए आहार ग्रहण करते हैं।

*मैं तेरह प्रकार का चारित्र (शक्तिसह) पालन कर सकूँ' अतः आहार करते हैं।

*'मेरे ये दश प्राण (विशेष कर आयु प्राण) आहार के बिना नहीं रह सकते हैं', अतः प्राणों के रक्षणार्थ आहार ग्रहण करते हैं। तथा

* आहार के बिना उत्तम क्षमा आदि रूप दस प्रकार का धर्म मेरे वश में नहीं रह सकेगा। अशन के बिना यह जीव क्षमा, मार्दव आदि धर्म करने में समर्थ नहीं हो सकता है, इसलिए वे आहार करते हैं। (मू.चा., भा.1, गा.481 टी.)

प्र.1642 जिन कारणों से मुनि आहार छोड़ते हैं वे कारण कौन-से हैं?

उत्तर आतंक होने पर, उपसर्ग के आने पर, ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु, प्राणि दया के लिए, तप के लिए और सन्यास के लिए इन छह कारणों से मुनि आहार त्याग कर देते हैं। अर्थात्

* उपसर्ग-देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और अचेतन कृत उपसर्ग के उपस्थित होने पर भोजन का त्याग होता है। (जब तक उपसर्ग दूर न हो तब तक मैं चतुर्विधाहार का त्याग करता हूँ।)

* ब्रह्मचर्य, गुप्ति की रक्षा के लिए अर्थात् अच्छी तरह ब्रह्मचर्य को निर्मल करने हेतु, सप्तम धातु अर्थात् वीर्य का क्षय करने के लिए आहार का त्याग होता है।

* 'यदि मैं आहार ग्रहण करता हूँ तो बहुत प्राणियों का घात होता है इसलिए आहार ग्रहण नहीं करूँगा', इस तरह जीव दया के निमित्त आहार का त्याग करते हैं।

* बारह प्रकार के तपों में अनशन (उपवास) एक तप है उसे मैं करूँगा, ऐसे तप के लिए भी आहार छोड़ देते हैं। तथा

* 'सन्यास काल में अर्थात् वृद्धावस्था में मेरी मुनिचर्या शिथिल हो जावेगी, या 'मैं दुश्साध्य रोग से युक्त हूँ, मेरी इन्द्रियाँ विकल हो गयी हैं, अथवा मेरे स्वाध्याय की हानि हो रही है, मेरे जीने के लिए अब कोई उपाय नहीं है,' इस प्रकार के प्रसंगों में शरीर का परित्याग करना होता है। इसी का नाम संन्यासमरण है। उस संन्यास मरण के निमित्त आहार का त्याग करते हैं। अर्थात् इन छह कारणों से आहार का त्याग करना चाहिए।

प्र.1643 फिर मुनि किन कारणों से आहार ग्रहण नहीं करते हैं?

उत्तर पुनः वे मुनिराज कभी भी बल, आयु, स्वाद, शरीर की पुष्टि, और तेज-वृद्धि के लिए आहार ग्रहण नहीं करते हैं।

प्र.1644 पुनः वे मुनिराज किस लिए आहार ग्रहण करते हैं।

उत्तर पुनः वे मुनिराज ज्ञान, संयम और ध्यान की सिद्धि के लिए मुनि आहार करते हैं। अर्थात् 'मेरा स्वाध्याय चलता रहे' इस तरह ज्ञान के लिए आहार करते हैं। 'मेरा संयम पलता रहे' इस तरह संयम के लिए आहार करते हैं और आहार के बिना ध्यान नहीं हो सकेगा इसलिए ध्यान के हेतु यति आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1645 मुनि किस तरह का आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर मुनिराज, नवकोटि के शुद्ध और 16 उद्गम, 16 उत्पादन, 10 अशन, संयोजन, प्रमाण, अंगार तथा धूम ऐसे 46 दोषों से रहित एवं चौदह मल दोषों से भी रहित और विधि पूर्वक दिया गया आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1646 नवकोटि से शद्ध आहार से क्या तात्पर्य है?

उत्तर मन से कृत, कारित अनुमोदना का होना ; वचन से कृत, कारित, अनुमोदना; तथा काय से कृत, कारित अनुमोदना ऐसे ये नव कोटि हुईं। इन नव कोटियों से शुद्ध आहार मुनि ग्रहण करते हैं। अर्थात् मुनि मन, वचन, काय से आहार न बनाते हैं, न बनवाते हैं और न अनुमोदना करते हैं। नव कोटि से शुद्ध-आहार का यही तात्पर्य है।

प्र.1647 छ्यालीस दोषों से भिन्न, निकृष्ट व्यापार रूप वह महादोष कौन-सा है?

उत्तर छ्यालीस दोषों से भिन्न महा दोष रूप अधःकर्म दोष कहा गया है, जो कि पाँच सूना (चूल्हा, चक्की, बुहारी, ऊखली और घट) से सहित है और गृहस्थ के आश्रित है अर्थात् गृहस्थों के द्वारा ही करने योग्य है। यह अधःकर्म छह जीव निकायों का बध करने वाला होने से निकृष्ट व्यापार रूप है।

प्र.1648 भोजन बनाने व बनवाने रूप या पंचसूना रूप अधःकर्म दोष करने से मुनि गृहस्थ हो जावेंगे अतः उनके यह दोष कैसे घटित होता है?

उत्तर अन्य पाखण्डी साधु नाना तरह के आरम्भ करते हैं। उनकी देखा देखी में अगर कोई दिगम्बर मुनि भी ऐसा करने लग जावें तो वे इस दोष के भागी हो जावेंगे। अतः वे इस दोष से दूर रहते हैं।

प्र.1649 सोलह प्रकार के उद्‌गम दोष कौन-से हैं?

उत्तर औद्देशिक, अध्यधि, पूति, मिश्र, स्थापित, बलि, प्रावर्तित, प्रादुष्कार, क्रीत, प्रामृष्य, पारिवर्तक, अभिघट, उद्भिन्न, मालारोहण, अच्छेद्य और अनिसृष्ट ये उद्‌गम दोष के सोलह प्रकार हैं।

1. जो उद्देश्य-निमित्त करके किया जाता है अथवा जो उद्देश्य से हुआ है वह औद्देशिक दोष हैं।

2. संयत को आते देखकर भोजन पकाना प्रारम्भ करना अर्थात् संयत को देखकर पकते हुए चावल आदि में और अधिक मिला देना अध्यधि दोष है।

3. अप्रासुक और प्रासुक वास्तु का सहेतुक (कारणवश) मिश्रण करना यह पूतिदोष है।

4. असंयतों से मिश्रण करके-साथ में भोजन करना मिश्र दोष है।

5. भोजन पकाने वाले पात्र से निकालकर अपने गृह में अथवा अन्य गृह में रख देना स्थापित दोष है। (इसमें पराया-पन या भिन्न-पना-सा प्रकट होता है।)

6. नैवेद्य या देवार्चना द्रव्य (पूजा-द्रव्य) रूप वस्तु को आहार में देना बलिदोष है।

7. काल की हानि या वृद्धि करके आहार देना प्रावर्तित दोष है। (प्रातः मध्याह्न आदि)

8. मंडप आदि का प्रकाशन करना प्रादुष्करण दोष है। (आहार के स्थान को क्योंकि चर्या के समय खोलना, साफ करना एवं वहाँ प्रकाशन करना इसका अर्थ है।)

9.खरीदकर लाकर देना क्रीत दोष है। (तैयार किये भोजन को या आहार चर्या के समय आहार-वस्तु किसी द्रव्य का मंत्रादिक से खरीद कर देना इसका अर्थ समझना चाहिए।)

10. सूक्ष्म ऋण-कर्जा अथवा उधार (से) लाकर आहार देना प्रामृष्य दोष है।

11. कोई वस्तु; वस्तु के बदले में लाकर आहार देना पारिवर्तक दोष है।

12. अन्य देश से लाया हुआ भोजन (तैयार आहार) देना अभिघट दोष है। (सरल पंक्ति से तीन या सात घर से अतिरिक्त घरों या स्थानों से लाये हुए आहार में अभिघट दोष जानना चाहिए।)

13. ढके हुए या मुद्रा (सील) से बन्द हुए जो औषधि, घी, शक्कर आदि हैं उन्हें खोलकर देना सो उद्‌भिन्न दोष होता है

14. सीढ़ी से- नसैनी से गृह के ऊपर भाग में चढ़कर लाकर कुछ देना माला-रोहण दोष है। (सकरी निसैनी में असावधानी संभव है।)

15. त्रास हेतु-डर से आहार देना अच्छेद्य दोष है। (इसमें राजादिक का भय देखा जाता है)

16. अप्रधान दाता के द्वारा दिये हुए भोजन को लेना अनीशार्थ दोष है। (अप्रधान का अर्थ- वेतन लेकर साधु सेवा करने वाले या स्वार्थी और तुच्छ व्यक्ति लेना चाहिए। किसी के द्वारा विरोध किये जाने पर भी आहार ग्रहण करना भी अनीशार्थ दोष है।)

प्र.1650 कोई नई वस्तु जैसे-चूल्हा, ओखली, कलछी, बर्तन और सुगन्धित पदार्थ से निर्मित आहार को सर्वप्रथम साधु को देने से कौन-सा दोष होता है और क्यों है?

उत्तर ऐसा आहार देने में पूति दोष होता है। क्योंकि जैसे कोई कहे कि मैं इस नये चूल्हे या सिगड़ी आदि में भात आदि पकाकर (बनाकर) पहले मुनियों को दूँगा पश्चात् अन्य किसी को दूँगा इस प्रकार प्रासुक भी भात आदि द्रव्य जिसके तैयार करने में प्रथम आरम्भ दोष किया जाता है अतः पूति कर्म-अप्रासुक रूप भाव से बनाया हुआ होने से पूति दोष कहलाता है। (इसी तरह नये वस्त्र या वास्तु(मकान) आदि के सम्बन्ध में समझना चाहिए।)

प्र.1651 असंयतों के साथ भोजन में मिश्र दोष कैसे होता है?

उत्तर पाखण्डियों और गृहस्थों के साथ मुनियों को आहार देने से उनका स्पर्श आदि हो जाने से आहार अशुद्ध हो जावेगा तथा युगपत् आहार देने से मुनियों का अनादर भी होगा इत्यादि दोष से मिश्र दोष माना गया है। (मू.चा.गा.429, टी.पृ.337)

प्र.1652 मुनियों को पड़िगाहन करने के उपरान्त पूजन-सामग्री के तैयार करने रूप आरम्भ करना या मुनियों के आहार का अवसर मिल गया तो देवादिक को ऐसी वस्तु जरूर समर्पित करूँगा ऐसा विचार करना कौन-सा दोष है?

उत्तर ऐसा कार्य करना बलि नाम का दोष है। क्योंकि इसमें सावद्य दोष देखा जाता है।

प्र.1653 सोलह प्रकार के उत्पादन दोष कौन-से हैं?

उत्तर धात्री, दूत, निमित्त, आजीवन, बनीपक, चिकित्सा, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, पूर्व स्तुति, पश्चात् स्तुति, विद्या, मंत्र, चूर्णयोग और मूलकर्म इस तरह उत्पादन दोष के सोलह प्रकार हैं।

1. माता के समान बालक (बालिका) का स्नान, सजावट, क्रीड़ा, खिलाना-पिलाना और सुलाना आदि रूप लालन-पालन आदि करके या करवाकर जो साधु आहार आदि उत्पन्न कराते हैं उनको धात्री नाम का उत्पादन दोष होता है।

प्र.1654 यह माता सदृश कार्य मुनि को दोष युक्त क्यों हैं?

उत्तर इस अम्बधात्री कार्य को मोक्षमार्गी साधु के द्वारा किये जाने से सवाध्याय का विनाश होता है और मोक्षमार्ग (साधुमार्ग) में दोष (अपवाद) आदि लगते हैं। अतः इसे दोष माना है। (मू.चा.भा.1, गा.447 टी.)

2. स्व-देश से पर देश या ग्राम आदि में वचन (समाचार) ले जाना जिस कारण साधु के वचन को सुनकर उन पर सन्तुष्ट होकर जो उन्हें दान दिया जाता है और यदि मुनि आहार ले लेते हैं तो उनके दूतकर्म नामक उत्पादन दोष होता है। यह कार्य जिनशासन में दोष का कारण है।

3. निमित्त अर्थात् ज्योतिष ज्ञान के द्वारा श्रावकों को शुभ-अशुभ बतलाकर पुनः बदले में उनसे दिया हुआ आहार जो साधु (मुनि) ग्रहण करते हैं उनके यह निमित्त नाम का उत्पादन दोष होता है। इसमें रसों का आास्वादन अर्थात् गृद्धता और दीनता आदि दोष आते हैं।

4. कोई साधु जाति, कुल, शिल्प, तप और ईश्वरता बतलाकर यदि आजीविका करता है अर्थात् जाति आदि के कथन द्वारा अपनी विशेषता बतलाकर पुनः उस दाता के द्वारा दिये गये आहार को ग्रहण करता है उसके यह अजीव नाम का दोष होता है; क्योंकि उसमें अपनी शक्ति का छिपाना, दीनता आदि दोष आते हैं।

5. कुत्ता, कृपण(दीन), अतिथि, ब्राह्मण, पाखण्डी, आजीवक, छात्र और कौवा आदि इनको दान आदि करने से पुण्य है या नहीं। ऐसा पूछने पर पुण्य है ऐसा मुनि दाता के अनुकूल वचन बोल देते हैं, पुनः दाता अपनी बातें मनवा कर प्रसन्न होकर उन्हें आहार देता है और वे ग्रहण कर लेते हैं तो उनके वनीपक नाम का उत्पादन दोष होता है। इसमें भी दीनता आदि दोष दिखाई देते है।

6. चिकित्सा-वैद्यशास्त्र, औषध, रसायन के ज्ञान तथा विष और भूत निवारण के शास्त्रों द्वारा जो मुनि गृहस्थ का उपकार करके उनसे यदि आहार आदि लेते हैं तो उनके यह चिकित्सा नाम का उत्पादन दोष होता है; क्योंकि इसमें सावद्य आदि दोष देखे जाते हैं।

7. क्रोध को करके अपने लिए यदि भिक्षा उत्पन्न कराते हैं तो क्रोध नाम उत्पादन दोष होता है।

8. गर्व को करके अपने लिए आहार उत्पन्न कराते हैं तो मान दोष होता है।

9. कुटिल भाव करके यदि अपने लिए आहार उत्पन्न कराते हैं तो माया नामक दोष होता है। और

10. यदि लोभ-कांक्षा को दिखाकर भिक्षा उत्पन्न कराते हैं तो लोभ नाम का उत्पादन दोष होता है। क्योंकि कषायों में परिणाम दूषित होते हैं।

11. तुम दानपति हो या यशस्वी हो, इस तरह दान देने के पूर्व दाता के सामने उसकी प्रशंसा करना और उसके दान देना भूल जाने पर उसे याद दिलाना पूर्व-संस्तुति नाम का दोष है। इस तरह स्तुति प्रशंसा मुनियों को दोष का कारण है।

12. आहार आदि दान ग्रहण करने के पश्चात् जो साधु इस तरह कीर्ति को कहते हैं कि 'तुम दानपति हो, तुम विख्यात हो, तुम्हारा यश प्रसिद्ध हो रहा है' यह पश्चात् संस्तुति दोष है, चूकि इसमें कृपणता आदि दोष देखे जाते हैं।

13. जो साधित सिद्ध है वह विद्या है। उसकी आशा देना अर्थात् 'मैं तुम्हें इस विद्या को दूँगा,' अथवा उस विद्या के माध्यम से जो अपना जीवन चलाते हैं उनके विद्या नामक उत्पादन दोष होता है। इसमें आहार आदि की आकांक्षा देखी जाती है।

14. जो पढ़ते ही सिद्ध हो वह मन्त्र है। उस मन्त्र के आशा देने से और उसके माहात्म्य से आहार उत्पन्न कराना सो मंत्र दोष है। क्योंकि इसमें लोक प्रतारणा, जिह्वा की गृद्धता आदि दोष देखे जाते हैं।

15. नेत्रों के लिए अंजन चूर्ण और शारीरिक शोभा हेतु भूषण चूर्ण है। इन चूर्णों का लोभ देकर आहार उत्पन्न कराना सो यह चूर्ण दोष हैं। इससे जीविका आदि करने से मुनि पद में मलिनता रूप दोष का कारण है।

16. वशीकरण, मेलकरण (वियोगियों का संयोग) कर आहार उत्पन्न कराना और उसे ग्रहण करना मूलकर्म नाम का दोष है। यह स्पष्टतया लज्जा आदि दोषों का कारण है।

प्र.1655 उद्गम और उत्पादन दोष त्यागने योग्य क्यों है?

उत्तर क्योंकि इन उद्गम और उत्पादन दोषों में अधःकर्म का सद्भाव देखा जाता है। तथा सम्यग्दर्शनादि में दूषण उत्पन्न करने वाले हैं एवं अन्य जुगुप्सा (ग्लानि) आदि दोष इन्हीं के निमित्त से संभव हैं, अतः त्यागने योग्य हैं।

प्र. 1656 दस प्रकार के अशन दोष कौन-से हैं?

उत्तर शंकित, म्रक्षित, निक्षिप्त, पिहित, संव्यवहरण, दायक, उन्मिश्र, अपरिणत, लिप्त और छोटित ये दश अशन दोष हैं।

1. शंका से उत्पन्न हुआ आहार शंकित है। 'क्या यह आहार अधःकर्म से बना हुआ है?' ऐसी शंका करके जो आहार ग्रहण करते हैं उनके शंकित नाम का अशन दोष होता है।

2. तेल आदि से चिकने ऐसे बर्तन, हाथ आदि के द्वारा दिया गया आहार यदि ग्रहण करते हैं तो उनके म्रक्षित दोष होता है। क्योंकि इसमें सम्मूर्च्छन आदि सूक्ष्म जीव-जन्तुओं की विराधना का दोष देखा जाता है।

3. सचित्त पृथ्वी, सचित्त जल, सचित्त अग्नि, हरित काय वनस्पति, बीज काय और त्रसजीव इन पर

रखा हुआ जो आहार आदि है वह सचित्त हो जाता है ऐसे आहार को लेना निक्षिप्त दोष है। अहिंसा की दृष्टि से वर्जनीय है।

4. अप्रासुक या प्रासुक ऐसे किसी बड़े वजनदार ढक्कन आदि से ढके हुए आहार आदि को, उसपर का आवरण खोलकर दिया जाये और जिसे साधु ग्रहण कर लेते हैं तो उनके पिहित नाम का अशन दोष होता है।

5. दान के निमित्त वस्त्र या बर्तन आदि को जल्दी से खींचकर बिना देखे जो भोजन आदि साधु को दिया जाता है और यदि वे उस भोजन-पान आदि को ग्रहण कर लेते हैं तो उनके संव्यवहरण नाम का अशन दोष होता है।

6. धाय (बालक को सजाने वाली सूसित), मद्यपायी, रोगी (व्याधि ग्रस्त), सूतक-पातक से युक्त, नपुंसक, पिशाचग्रस्त, नग्न, मलमूत्र करके आये हुए मूर्छित, वमन करके आये हुए, रुधिर सहित, वेश्या, आर्यिका (साध्वी), तैल मालिश करने वाली, अतिबाला, अतिवृद्धा, खाती हुई, गर्भिणी (पाँच माह के ऊपर), अंधी, किसी दीवाल आदि आड़ में खड़ी, बैठी हुई, ऊँचे स्थान पर खड़ी हुई, नीचे स्थान पर स्थित, (ऐसे ही पुरुष भी) आहार देते हैं तो दायक दोष है।

फूँकना, जलाना, बुझाना इत्यादि अग्नि का कार्य करके या लीपना, धोना करके तथा दूध पीते हुए बालक को छोड़कर इत्यादि कार्य करके आकर यदि दान देते हैं तो दायक दोष होता है।

7. पृथ्वी, जल, हरितकाय, बीज और सजीव त्रस, इन पाँच से मिश्रित हुआ उन्मिश्र है। उसे जो साधु ग्रहण करते हैं उन्हें उन्मिश्र दोष लगता है। इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। चूंकि यह महादोष है, इस दोष में सजीव त्रसों को लिया गया है। निर्जीव अर्थात् मरे हुए त्रसों के आ जाने का हेतुभूत कारण आहार मल दोष के अंतर्गत आ जावेगा, जो अंतराय रूप है और त्याज्य है।

8. जिसका वर्ण, गंध, रस नहीं बदला है ऐसे आहार या पान (पेय) आदि जो कि अग्नि, हरड़चूर्ण आदि के द्वारा अपक्व हैं या अप्रासुक हैं उनको जो साधु ग्रहण करते हैं उनके अपरिणत नाम का दोष होता है।

9. गेरु आदि और गीला आटा, कौंपल-अपक्व शाक, अथवा अप्रासुक जल से लिप्त हुए हाथ से या बर्तन से दिया गया आहार यदि साधु लेते हैं तो उनके लिप्त नाम का अशन दोष होता है।

10. आहार करते हुए साधु के यदि अस्थिर-छिद्र सहित पाणिपात्र (अंजलीपुट) से आहार या पीने की चीजें गिरती रहती हैं या वे साधु बहुत-सा आहार गिराते हुए आहार लेते हैं तो उन साधु के छोटित या परित्यजन दोष होता है। इसी का नाम परिसातन या त्यक्त भी है ये दस अशन दोष सावद्य युक्त, जीव दया रहित और निंदनीय होने से त्याज्य हैं।

प्र.1657 आठ प्रकार की पिण्ड शुद्धि से पृथक् भूत चौदह मल दोष कौन-से हैं?

उत्तर नख, रोम, जंतु, हड्डी, कण, कुण्ड, पीव, चर्म, रुधिर, मांस, बीज, फल, कंद और मूल ये आठ प्रकार की पिण्ड शुद्धि से पृथक् भूत चौदह मल दोष हैं।

नख- मनुष्य या तिर्यञ्चों के हाथ या पैर की उंगुलियों का अग्र भाग।

रोम- मनुष्य और तिर्यञ्चों के बाल या पंखों के बाल।

जन्तु- प्राणियों के निर्जीव शरीर।

अस्थि- कंकाल अर्थात् हड्डी।

कण- जौ-गेहूँ आदि के बाहर का अवयव, छिलका।

कुण्ड- शालि (चावल) आदि अभ्यन्तर भाग का सूक्ष्म अवयव।

पूय- पका हुआ रुधिर अर्थात् घाव का पीव।

चर्म-शरीर की त्वचा (प्रथम धातु)।

रुधिर- खून-रक्त (द्वितीय धातु)।

मांस- रुधिर के लिए आधारभूत (तृतीय धातु)।

बीज- उगने योग्य अवयव अर्थात् गेहूँ, चने आदि।

फल- विकसित हुए आम, अमरूद आदि फल।

कंद- नीचे से उगने वाला, अर्थात् जमीन में उत्पन्न होने वाले अंकुर की उत्पत्ति के कारण भूत सूरण आदि जमीकंद।

मूल- पिप्पली आदि जड़।

प्र.1658 चौदह मल दोषों में महामल दोष कौन-से हैं?

उत्तर रुधिर, मांस, हड्डी, चर्म और पीव ये महामल दोष हैं।

आहार में इनके आ जाने पर सर्वाहार का परित्याग कर भी प्रायश्चित्त ग्रहण करना होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के शरीर अर्थात् मृत लट, चिंवटी, मक्खी आदि तथा बाल यदि आहार में आ जावें तो आहार छोड़ देना होता है। क्योंकि बाल चमड़ी से उत्पन्न एक भाग रूप मल होता है। आहार में नख आ जाने पर आहार छोड़ देना होता है और किंचित् प्रायश्चित्त भी ग्रहण करना होता है। क्योंकि नख भी एक हड्डी जैसा अवयव है।

प्र.1659 कण, कुंड आदिक आहार में आ जाने पर क्या किया जाता है?

उत्तर कण, कुंड, बीज, कंद, फल और मूल इनके आ जाने पर यदि इन्हें न निकाल सकें तो आहार छोड़ देना चाहिए। अर्थात् सचित्त फल एवं योनिभूत सचित्तकण आदि अंजली में आने पर इन्हें निकाला जा सकता है, लेकिन अंजली पूर्ण खाली न होने पाये, अन्यथा आगम में पिण्ड पतन नामक अन्तराय माना गया है।

प्र.1660 साधु की अंजली में कंदमूल आ जाना कैसे संभव है?

उत्तर साधु की अंजली में कंदमूल का आ जाना असंभव है, क्योंकि पांच तरह के अभक्ष पदार्थों में बहुघात के अन्तर्गत कंदमूल वर्णित किये गये हैं अतः दाता द्वारा इन्हें साधु को दिया जाना शक्य नहीं है, परन्तु कदाचित् कहीं से अंजली में पड़ जाना सम्भव हो सकता है।

प्र.1661 सिद्ध भक्ति कर लेने के बाद आहार के समय यदि साधु को स्व, पर शरीर से निकलते हुए रुधिर, पीव दिख जाये तो क्या करना चाहिए?

उत्तर ऐसे काल में उस दिन आहार छोड़ देना चाहिए। यदि माँस व मुर्दा भी दिख जाये तो उस दिन आहार त्याग कर देना चाहिए। (मू.चा.भा.1, गा.484 टी.)

प्र.1662 यति-मुनि (दिगम्बर जैन साधु) दोष रहित आहार करते हैं तो वे कैसा आहार करते हैं? या प्रासुक और द्रव्य तथा भाव शुद्ध का अर्थ क्या है?

उत्तर साधु द्रव्य और भाव से जो प्रासुक वस्तु आहार में लेते हैं वह प्रासुक अर्थात् निकल गये हैं असु अर्थात् प्राणी जिसमें से ऐसे द्रव्य से शुद्ध है अर्थात् जिसमें एकेन्द्रिय जीव नहीं है वह द्रव्य से शुद्ध है। पुनः जिसमें द्विन्द्रिय आदि जीव जीते हुए या निर्जीव हुए भी हैं वह आहार मुनि (व्रती) को दूर से ही छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वह द्रव्य से अशुद्ध है। इसी प्रकार से प्रासुक सिद्ध हुआ भी द्रव्य यदि मुनि के लिए तैयार किया गया है तो वह द्रव्य से शुद्ध होते हुए भी अशुद्ध ही है। अर्थात् वह आहार भाव से अशुद्ध है।

प्र.1663 पुनः मुनि के योग्य निर्दोष आहार कैसा होता है?

उत्तर श्रावक अतिथि संविभाग व्रत का पालन करते हुए सामान्यतया शुद्ध भोजन बनाता है और मुनियों को पड़िगाहन करके आहार देता है। तथा साधु भी अपने आहार हेतु मन-वचन-काय, कृत- कारित अनुमोदना रूप नव भेदों को न करते हुए आहार लेते हैं वही निर्दोष आहार है।

प्र.1664 श्रावकों द्वारा आरम्भ करके बनाये गये आहार को करते हुए भी साधु किस तरह निर्दोष कहलाते हैं?

उत्तर जैसे मत्स्यों के लिए जल में मादक वस्तु डालने पर उस जल से मत्स्य ही मद को प्राप्त होते हैं, मेंढक नहीं होते। इसी तरह पर के लिए या श्रावकों के निमित्त बनाये गये भोजनादि में उसे ग्रहण करते हुये भी मुनि विशुद्ध हैं उसके दोष से लिप्त नहीं होते हैं। अर्थात् दाता या उसके कुटुम्बीजन ही अधःकर्म आदि दोष से दूषित हैं, साधु नहीं।

प्र.1665 अतिथि संविभाग हेतु पंचसूना से अधःकर्म कर आहार तैयार कर श्रावक केवल सदोषता को ही प्राप्त करते हैं या उन्हें अन्य कोई फल भी प्राप्त होता है।

उत्तर अतिथि संविभाग करने हेतु आहार बनाने वाले वे गृहस्थ जन यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो साधु को दिये गये आहारादि दान के फल से उस अधःकर्म-आरम्भ जन्य दोष को दूर करके, स्वर्गगामी और मोक्षगामी

हो जाते हैं। और यदि मिथ्यादृष्टि हैं तो फिर भोगभूमि को प्राप्त कर लेते हैं इसलिए उन्हें दोष नहीं होता है।

प्र.1666 आहार के लिए निकले हुए साधु क्या करते हुए भ्रमण करते हैं?

उत्तर भिक्षा चर्या में प्रविष्ट हुए मुनि मन-वचन-काय रूप गुप्ति की रक्षा करते हुए चलते हैं। मूलगुणों और उत्तरगुणों की रक्षा करते हुए तथा शील, संयम आदि की रक्षा करते हुए विचरण करते हैं। ऐसे मुनि शरीर से वैराग्य, संग (परिग्रह) से वैराग्य और संसार (परिजनों) से वैराग्य का विचार करते हुए भ्रमण करते हैं।

प्र.1667 मुनिराज आहार के काल में कौन-से अन्तरायों का परिहार या पालन करते हैं?

उत्तर मुनिराज के आहार के काल में होने वाले बत्तीस अन्तराय-काक, अमेध्य, वमन, रोधन, रुधिर, अश्रुपात, जान्वधःपरामर्श, जानू-परिव्यतिक्रम, नाभ्यधोनिर्गमन, प्रत्याख्यान सेवन, जन्तुबध, काकादि-पिंडहरण, पिंडपतन, पाणौ जन्तु बध, मांसादि दर्शन, उपसर्ग, पदांतरे जीव, भाजन संपात, उच्चार, प्रस्रवण, अभोज्य गृहप्रवेश, पतन, उपवेशन, सदंश, भूमिस्पर्श, निष्ठीवन, उदरकृमि निर्गमन, अदत्तग्रहण, प्रहार, ग्रामदाह, पादेन किंचित् ग्रहण और करेण किंचिद् ग्रहण, इस तरह वर्णित किये गये हैं।

1. **काक**- आहार काल में गमन करते हुए या स्थित हुए मुनि के ऊपर यदि काक, वक आदि पक्षी वीट कर देवे तो वह काक नाम का अन्तराय है। (यहाँ काक शब्द उपलक्षण मात्र है अतः काक, वक, बाज आदि का ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि साहचर्य की अपेक्षा यह कथन किया गया है।)

2. **अमेध्य**-अशुचि पदार्थ विष्ठा आदि से यदि पैर लिप्त हो जाय तो अन्तराय होता है।

3. **वमन**- यदि स्वयं को वमन हो जाय तो वमन नाम का अन्तराय है।

4. **रोधन**- यदि कोई आहार को निकले मुनि को रोक दे या पकड़ ले तो रोधन नामक अन्तराय है।

5. **रुधिर**- यदि आहार को जाते या करते समय अपने या अन्य के शरीर से रुधिर, पीव निकलते (बहते हुए) दिख जावे तो अन्तराय है।

6. **अश्रुपात**-दुःख से यदि अपने अथवा पास में स्थित किसी अन्य के भी अश्रु आ जावें तो अन्तराय है।

7. **जान्वधः परामर्श**- घुटनों से नीचे-भाग का यदि हाथ से स्पर्श हो जावे तो अन्तराय है।

8. **जानूपरिव्यतिक्रम**- घुटनों से ऊपर के अवयवों का यदि हाथ से स्पर्श हो जावे तो अन्तराय है।

9. **नाभ्यधोनिर्गमन**- नाभि से नीचे मस्तक करके यदि निकलना पड़ जावे तो अन्तराय है।

10. **प्रत्याख्यान सेवन**- जिस वस्तु का त्याग है यदि उसका भक्षण हो जावे तो अन्तराय है।

11. **जन्तु वध**- यदि अपने से या अन्य के द्वारा सामने किसी जन्तु का वध हो जावे तो अन्तराय है।

12. काकादि पिण्डहरण- यदि कौवे आदि हाथ से ग्रास हरण कर लेवें तो अन्तराय है।

13. पिंड पतन- यदि आहार करते हुए अपने पाणि-पात्र से पिंड-ग्रास मात्र का पतन हो जावे तो अन्तराय है।

14. पाणौ जन्तु वध- यदि आहार करते हुए साधु के पाणिपुट (अंजली) में कोई जन्तु स्वयं आकर मर जावे तो अन्तराय है।

15. मांसादि दर्शन- यदि मरे हुए पंचेन्द्रिय जीव के शरीर का माँस आदि दिख जावे तो अन्तराय है।

16. उपसर्ग- यदि देवकृत आदि उपसर्ग हो जाये तो अंतराय है।

17. पदान्तरे जीव- यदि पंचेन्द्रिय जीव पैरों के अंतराल से निकल जावे तो अन्तराय है।

18. भाजन संपात- यदि आहार देने वाले के हाथ से बर्तन गिर जावे तो अन्तराय है।

19. उच्चार- यदि अपने उदर से मल च्युत हो जावे तो अन्तराय है।

20. प्रस्रवण- यदि अपने शरीर से मूत्रादि हो जाये तो अंतराय है।

21. अभोज्य गृह प्रवेश- यदि आहार हेतु पर्यटन करते हुए मुनि का चांडाल आदि अभोज्य के गृह में प्रवेश हो जावे तो अन्तराय है।

22. पतन- यदि मूर्च्छा आदि से स्वयं गिर पड़े तो अन्तराय है।

23. उपवेशन- आहार करते समय यदि बैठना पड़ जावे तो अन्तराय है।

24. सदंश- आहार के समय यदि कुत्ता आदि काट दे तो अन्तराय है।

25. भूमि स्पर्श- आहार के प्रारम्भ की सिद्ध-भक्ति कर लेने के उपरान्त यदि हाथ से भूमि का स्पर्श हो जावे तो अन्तराय है।

26. निष्ठीवन- आहार के समय यदि अपने मुख से थूक, कफ आदि निकल जावे तो अंतराय है।

27. उदरकृमि निर्गमन- आहार के वक्त यदि उदर से कृमि निकल पड़े तो अंतराय है।

28. अदत्त ग्रहण- यदि बिना दी हुई कुछ वस्तु ग्रहण कर लेवे तो अंतराय है।

29. प्रहार- यदि अपने ऊपर या अन्य किसी पर तलवार आदि से प्रहार हो जावे तो अन्तराय है।

30. ग्राम दाह- यदि ग्राम में अग्नि लग जावे तो अन्तराय है।

31. पादेन किंचित् ग्रहण- यदि पैर से कुछ ग्रहण कर लिया जावे तो अंतराय है। और

32. करेण किंचिद्ग्रहण- यदि हाथ से कुछ वस्तु भूमि पर से ग्रहण कर ली जावे तो अंतराय है।

प्र.1668 मुनियों के पूर्वोक्त काक आदि अन्तरायों से अतिरिक्त भी क्या भोजन त्याग के हेतु रूप अन्तराय होते हैं?

उत्तर हाँ! जैसे- चांडाल आदि का स्पर्श, कलह, इष्टमरण, साधर्मिक सन्यास पतन, प्रधान का मरण आदि ये भी भोजन त्याग के हेतु हैं। यदि राजा का भय या अन्य किंचित् (कोई) भय हो जावे, यदि लोक

निन्दा हो जावे तो भी आहार त्याग कर देना चाहिए।

प्र.1669 क्या अशुभ कार्यों में ही मुनि को आहार त्याग करना चाहिए या शुभ अनुष्ठान-हेतु भी आहार त्याग करना चाहिए?

उत्तर साधु को संयम (रक्षण व वृद्धि) हेतु तथा व्रत अनुष्ठान, संवर, निर्जरा और निर्वेद (वैराग्य) भाव के लिए भी आहार का त्याग करना होता है।

प्र.1670 सर्वैषण, विद्वैषण और शुद्धाशन आहार किसे कहते हैं?

उत्तर * एषणा समिति से शुद्ध आहार सर्वैषण कहलाता है।

* विकृति अर्थात् पांच प्रकार के रस, उन से रहित आहार निर्विवृति रूप है। अर्थात् जो गुड़, तेल, घी, दही और दूध तथा शाक आदि से रहित है। अर्थात् मांड (भात का जल) या कांजी, शुष्क तक्र-मक्खन निकाला हुआ छाछ इनसे सहित आहार विद्वैषण है।

* कांजी व छाछ आदि से भी रहित आहार अव्यंजन है। जो पाक से अवतीर्ण (बनकर आया हुआ) मात्र है अर्थात् मसाले आदि से संस्कार कर किंञ्चित भी अन्य नहीं किया गया है व वह शुद्धासन है।

प्र.1671 सर्वाशन और असर्वाशन किसे कहते हैं?

उत्तर सर्वैषण, विद्वैषण और शुद्धाशन रूप यह तीन प्रकार का द्रव्य अर्थात् भोजन जो सर्वाशन है वह आहार में ग्रहण करने योग्य है। तथा सर्व रसों से समन्वित और सर्व व्यंजनों से सहित ऐसा आहार असर्वाशन है वह कदाचित ग्रहण करने योग्य है और कदाचित् अयोग्य है। जिस हेतु (शरीर की प्रकृति के अनुरूप पथ्यापथ्यादि अनिष्ट आदि का) विचार करने योग्य है।

प्र.1672 मुनि के लिए देने योग्य आहार में श्रावकों द्वारा की जाने वाली विधि क्या है?

उत्तर मुनि के लिए देने योग्य आहार में श्रावकों द्वारा की जाने वाली विधि नवधा भक्ति एवं सप्त गुण रूप है। जिसका वर्णन देखिये जैनागम संस्कार अ.14, पृ. 136-37

अध्याय-5

आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका स्थानादि

(बारह प्रकार के भिक्षुक प्रतिमाएँ, सत्रह प्रकार के असंयम, बीस प्रकार के असंयम स्थान, उन्नीस प्रकार के पाप सूत्र, तैतीस प्रकार की आसादनाएँ, नव-पदार्थ, पुद्‌गल के भेद और कर्म के भेदादि)

प्र.1673 आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका-स्थान कौन-से हैं?

उत्तर आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका स्थान इस तरह से हैं-

1. कृत्रिम-अकृत्रिम अरहंत सिद्ध प्रतिबिम्ब (जिनबिम्ब) 2. कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालय 3. बुद्धि आदि ऋद्धि सम्पन्न मुनि। 4. ऋद्धि सम्पन्न मुनियों के आश्रित क्षेत्र 5. अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानी योगी मुनीश्वर 6.ज्ञानोत्पत्ति के प्रदेश 7. प्रत्यक्ष ज्ञानियों के आश्रित क्षेत्र 8. सिद्ध जीव 9. निर्वाण क्षेत्र 10. सिद्धों से आश्रित क्षेत्र 11.सम्यक्त्व गुण युक्त तपस्वी 12. सम्यक्त्वी तपस्वी युक्त क्षेत्र 13. सम्यक्त्वी तपस्वी द्वारा छोड़ा हुआ आश्रित क्षेत्र 14. योग स्थित तपस्वी 15. तदाश्रित क्षेत्र 16. तदाश्रित छोड़े हुए क्षेत्र 17. तीन प्रकार के पण्डित मरण में स्थित मुनिगण (प्रायोपगम -सन्यास, इंग्नि मरण और भक्तप्रत्यात्यख्यान)

प्र.1674 बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमायें कौन-सी हैं?

उत्तर किसी देश में उत्कृष्ट-दुर्लभ आहार ग्रहण करने रूप मुनिवर की बारह प्रकार प्रतिमाएँ इस तरह कही गईं हैं-

*एक माह के भीतर-भीतर मुझे ऐसा अहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं ऐसी प्रतिज्ञा करना प्रथम प्रतिमा है। माह के अंतिम दिन प्रतिमा योग धारण करता है।

* प्रथम आहार से सौ गुना दुर्लभ आहार दो माह के भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूँगा नहीं तो नहीं- ऐसी प्रतिज्ञा करना दूसरी प्रतिमा है।

* इसी तरह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आहार तीन माह, चार माह, पाँच माह, छह व सात माह के भीतर मिलेगा तो करूँगा अन्यथा नहीं क्रमशः ऐसी प्रतिज्ञा करना तीसरी, चौथी पाँचवी, छठी और सातवी प्रतिमा है।

* इसके बाद तीन दिन का अवग्रह करना, फिर सात दिन का अवग्रह करना आठवी प्रतिमा है।

* तदुपरान्त किसी भी प्रकार का आहार प्राप्त होने पर क्रम-क्रम से तीन ग्रास लेने का दो ग्रास व एक ग्रास लेने का अवग्रह करना नौवीं, दसवीं और ग्यारहवी प्रतिमा है। उसके बाद भी वह योगी अहोरात्र प्रतिमायोग धारण करता है।

* तत्पश्चात् रात्रि में प्रतिमायोग से स्थित होकर प्रातःकाल केवलज्ञान को प्राप्त कर लेना यह बारहवीं प्रतिमा कहलाती है।

प्र.1675 प्रतिमायोग किसे कहते हैं?

उत्तर एक ही आसन में स्थित होकर नाशाग्र दृष्टि-सह अविचल रहकर आत्मध्यान या तत्त्व चिन्तवन में लवलीन होना ही प्रतिमायोग कहलाता है।

प्र.1676 अवग्रह क्या कहलाता है?

उत्तर एक नियतकाल पर्यन्त कोई नियम व वृत्तिपरिसंख्यान या आंकड़ी धारण करना अवग्रह कहलाता है।

प्र.1677 जिनागम में सत्रह प्रकार के असंयम भाव कौन-से हैं?

उत्तर सत्रह प्रकार के असंयम भाव- 1.पृथ्वीकाय 2. जलकाय 3.वायुकाय 4. अग्निकाय 5.वनस्पतिकाय 6.दो इन्द्रिय 7.तीन इन्द्रिय 8.चार इन्द्रिय 9.पञ्चेन्द्रिय-इन 9 प्रकार के जीवों की विराधना करना 10. पीछे अर्थात् कार्य आरम्भ के उपरान्त प्रतिलेखन करना 11. दुष्परिणामों से प्रतिलेखन करना 12.जीवों को उठाकर दूसरी जगह रखना 13. जिन जीवों को उठाकर अन्यत्र रखा हो उनका पुनः अवलोकन न करना 14.मन का निरोध नहीं करना 15. वचन का निरोध नहीं करना 16. काय का निरोध नहीं करना 17. अजीव तृण कष्ठादि को नख आदि से छेदना इस तरह इन 17 प्रकार के कार्यों में 17 प्रकार के असंयम भाव होते हैं जो योगी द्वारा त्याज्य है।

प्र.1678 आगम में 17 तरह के संयम किस तरह बतलाये गये हैं?

उत्तर पञ्च पाप त्याग, पञ्चेन्द्रिय निग्रह, चार कषाय विजय और मन-वचन-काय वश रूप त्रिगुप्तियाँ इस प्रकार से सत्रह तरह के संयम होते हैं।

प्र.1679 शास्त्रों में बीस प्रकार के असमाधि स्थान कौन-से बतलाये हैं?

उत्तर असमाधि के बीस स्थान-

1. डवडवचर- ईर्या समिति से रहित होकर गमन करना।

2.अप्पमज्जियं- बिना देखे-शोधे शौचादि के उपकरणों का रखना या उठाना।

3. रादीणीयपडिहासी- अपने से एक रात्रि भी दीक्षा में बड़ा है, उसके बीच में बोलना या उसका तिरस्कार करना।

4. अधिसेज्जाणं- अपने से दीक्षा में बड़े हैं उनके अथवा गुरु के मस्तक पर सोना।

5. कोही- गुरु के वचनों पर क्रोध करना।

6. थेरविवादंताराए- जहाँ अपने से बड़े गुरु आदि बोल रहे हों वहाँ बीच में बोलना।

7. उवघादं- दूसरों का तिरस्कार करके बोलना।

8. अणणुवीचि- वीतराग प्रणीत शास्त्र विरुद्ध बोलना।

9. अधिकरणी- स्वबुद्धि से आगम विरुद्ध तत्त्व का कथन करना।

10. पिट्ठिमास-पडिणीओ- पीठ का मांस खाना अर्थात् पीठ पीछे किसी की चुगली करना।

11. असमाहि कलहं- एक दूसरे की बात एक दूसरे को कहकर झगड़ा पैदा करना।

12. झंझा-थोड़ी- थोड़ी कलह करके रोष करना।

13. सद्दकरेपढिदा- सबकी ध्वनि का तिरस्कार करके स्वयं बड़े जोर-जोर से पढ़ना जिससे दूसरे अपना पाठ भूल जायें।

14. एषणा समिदि विरहिया- एषणा समिति रहित आहार करना।

15. सूरधमाण भोजी- जिस भोजन से प्रमाद आवे ऐसे गरिष्ठ भोजन का सेवन करना।

16. गणांगणिगो- बहुत अपराध करने वाला अर्थात् एक गण से दूसरे गण में निकाल देने वाला अपराध करना।

17. सरक्खरावदे- धूलि से भरे हुए पैरों से जल में प्रवेश करना और गीले पैरों से धूलि में प्रवेश करना।

18. अप्माण भोजी- अप्रमाण भोजन करना अर्थात् भूख से ज्यादा खाना।

19. अकाल सज्झाओ- अकाल में स्वाध्याय करना।

20. अदिट्ठ- बिना देखे इधर-उधर देखकर गमन करना।

प्र.1680 प्राचीन ग्रन्थों में उन्तीस तरह के पाप सूत्र कौन- से बतलाये गये हैं?

उत्तर **उन्तीस पाप सूत्र**- 1. **चित्रकर्मादि सूत्र**- चित्रकारितादि के शास्त्र

2.गणित सूत्र- गुणा-भागादि बतलाने वाले शास्त्र।

3. चाटुकार सूत्र- खुसामद या स्वार्थमयी प्रशंसाकारक शास्त्र।

4. वैद्यक सूत्र- शारीरिक चिकित्सा वाले शास्त्र।

5. नृत्यसूत्र- नाच क्रिया सिखलाने वाले शास्त्र।

6. गान्धर्व सूत्र- वाद्य यन्त्र बजाने की शिक्षा देने वाले शास्त्र।

7. पटह सूत्र- ढोल आदि बजाने की शिक्षा देने वाले शास्त्र।

8. अगद सूत्र- विष विद्या के प्रयोग से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र।

9. मद्य सूत्र- मद्य (शराब) से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र।

10. द्यूत सूत्र- जुवा अर्थात् धन, पैसे के दाव व शर्तादि से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र।

11. राजनैतिक सूत्र- राज-शासन व पदाधिकार की हार जीत आदि से सम्बन्धित शाास्त्र।

12. चतुरंग सूत्र- राज्यकीय सेनाओं से सम्बन्धित शास्त्र।

13. हस्ति सूत्र- हाथी के लक्षण, वशीकरण आदि से सम्बन्धित शास्त्र।

14. अश्व सूत्र- घोड़े की पहचान, सम्हाल व सवारी से सम्बन्धित शास्त्र।

15. पुरुष सूत्र- श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण, उसके बल-वीर्य और पराक्रम से सम्बन्धित शास्त्र।

16. स्त्री सूत्र- स्त्री की कला-कुशलता एवं माया बाहुल्य सम्बन्धित शास्त्र।

17. गोसूत्र- गाय उत्पत्ति उनके प्रकार एवं गायों से प्राप्त पदार्थों के प्रयोग सम्बन्धित शास्त्र।

18. छत्र सूत्र- छत्र के लक्षण व निर्माण एवं उपयोगादि सम्बन्धित शास्त्र।

19. असि सूत्र- तलवार के लक्षण व प्रयोग तथा रक्षादि सम्बन्धित शास्त्र।

20. दण्ड सूत्र- दण्ड (डण्डा) लक्षण व चलाने आदि की विद्या वाले शास्त्र।

21. अंजन सूत्र- अञ्जन (काजल) का लक्षण, निर्माण व आँजने के प्रयोग और लाभ से सम्बन्धित शास्त्र।

22. व्यञ्जन सूत्र- किसी के शरीर पर तिल, मसा, लशन आदि देखकर शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

23. स्वर सूत्र- किसी पशु-पक्षी की आवाज सुनकर शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

24. अंगसूत्र- किसी स्त्री अथवा पुरुष के नाक, कान, आँख और अँगुली आदि को देखकर शुभाशुभ बतलाने वाले शास्त्र।

25. लक्षण सूत्र- शरीर में होने वाले ध्वजा आदि को देखकर शुभाशुभ बतलाने वाले शास्त्र।

26. छिन्न सूत्र- वस्त्र को कटा हुआ, चूहे आदि द्वारा खाया हुआ, जला हुआ, स्याही आदि से भरा (रंगा) हुआ देखकर शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

27. भौम सूत्र- पृथ्वी को देखकर- ''यहाँ धन है, यहाँ खारा पानी है, यहाँ मीठा पानी है'' आदि बतलाने वाले शास्त्र।

28. स्वप्न सूत्र- स्वप्नों के शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

29. अन्तरिक्ष सूत्र- सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र आदि के उदय, अस्त या आकृति आदि को देखकर शुभाशुभ बतलाने वाले शास्त्र। ये उन्तीस पाप सूत्र है।- (मुनि पाक्षिक प्रतिक्रमण)

प्र.1681 चित्र कर्मादि सूत्र रूप शास्त्रों को पाप सूत्र रूप क्यों कहा गया है?

उत्तर क्योंकि इनमें सांसारिक प्रयोजन, हिंसादि आरम्भ एवं लौकिक प्रयोजन की मुख्यता देखी जाती है।

प्र.1682 जैनागम में तैतीस तरह की असादनाएँ कौन-सी बतलाई गयी हैं?

उत्तर पंच प्रकार के अस्तिकाय, छह प्रकार के जीव निकाय, पंच महाव्रत, अष्ट प्रवचन मातृका और जीवादि नौ पदार्थ सम्बन्धी अनादर की भावना तैतीस असादना कहलाती है।

प्र.1683 भव्यजनों के लिए प्रतिपल भावने योग्य सप्त भावनाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर सप्त भावनाएँ- कि मैं 1. जिनागम (समीचीन शास्त्र) का अभ्यास करूँ 2. जिनेन्द्र प्रभु या पंच परमेष्ठी के चरणों में वंदन-पूजन करूँ 3. हमेशा आर्य-सज्जन पुरुषों की संगति करूँ 4. सच्चारित्र परायण पुरुषों या भव्यों के गुणों की कथा करूँ 5. दूसरों के दोष-कथन व विवाद में मौन रहूँ 6.सर्व जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन बोलूँ और 7. जब तक मोक्ष न मिले तब तक आत्मतत्त्व की लीनता रूप या उपलब्धि की भावना भी बनी रहे।

प्र.1684 भक्ति आदि के अंत में पढ़ी जाने वाली चूलिका का अर्थ क्या होता है?

उत्तर उक्त (कहा हुआ) अनुक्त (नहीं कहा हुआ) दुरुक्त (कठिन विषय) का कथन करने वाली चूलिका कहलाती है।

प्र.1685 भव्यों द्वारा प्रणम्य श्रुतज्ञान कितने पद प्रमाण है?

उत्तर श्रुतज्ञान 112 करोड़ 83 लाख 58 हजार और 5 पद प्रमाण है, जो भव्यगणों द्वारा वंदनीय है।

द्रव्यानुयोग

प्र.1686 द्रव्यानुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष का वर्णन अथवा सप्त तत्त्व या नव पदार्थों का वर्णन होता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं।

प्र.1687 क्या जीव, अजीव आदि को जानना भी सम्यक्त्व है?

उत्तर हाँ! सत्यार्थ रूप से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये ही सम्यक्त्व हैं। अर्थात् जो पदार्थ जिस रूप से व्यवस्थित हैं उन्हें उसी स्वरूप से जानना सम्यक्त्व है। (मू.चा., भाग 1, गा.203)

प्र.1688 इन जीवादि पदार्थों को सम्यक्त्व कैसे कहा है?

उत्तर परमार्थ रूप में जाने गये ये पदार्थ ही श्रद्धा के विषय हैं अतः ये श्रद्धान में कारण हैं और श्रद्धान होना यह कार्य है जो कि सम्यक्त्व है किन्तु कारण भूत पदार्थों में कार्यभूत श्रद्धान का अध्यारोप करके उन पदार्थों को ही सम्यक्त्व कह दिया है।

प्र.1689 भूतार्थ ज्ञान से जाने हुए नव पदार्थ सम्यक्त्व होते हैं ऐसा जो कहा जाता है उसमें उस भूतार्थ ज्ञान का क्या स्वरूप है?

उत्तर यद्यपि ये नव पदार्थ तीर्थ की प्रवृत्ति निमित्तक होने से प्राथमिक या अल्पज्ञ-नवीन शिष्य की अपेक्षा से भूतार्थ (सत्यार्थ) कहे जाते हैं। फिर भी अभेद रत्नत्रयलक्षण निर्विकल्प समाधि के काल में वे अभूतार्थ-असत्यार्थ ठहरते हैं अर्थात् वे शुद्धात्मा के स्वरूप नहीं होते हैं। किन्तु इस परम समाधि के काल में तो उन नव पदार्थों में शुद्ध निश्चय नय से एक शुद्धात्मा ही झलकता है, प्रकाशित होता है, प्रतीति में आता है, अनुभव किया जाता है। और जो वहाँ पर यह अनुभूति, प्रतीति अथवा शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है वही निश्चय सम्यक्त्व है। वह अनुभूति ही गुण और गुणी में निश्चय नय से अभेद विवक्षा करने पर शुद्धात्मा का स्वरूप है ऐसा तात्पर्य है। और जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं वे प्रारम्भ अवस्था में तत्त्वों के विचार के समय सम्यक्त्व के लिए सहकारी कारणभूत होते हैं वे भी सविकल्प अवस्था में ही भूतार्थ हैं, किन्तु परमसमाधि काल में तो वे भी अभूतार्थ हो जाते हैं। उन सबमें भूतार्थ रूप से एक शुद्ध जीव ही प्रतीति में आता है।

अभिप्राय यह है कि आचार्य देव ने यहाँ पर समीचीनतया जाने गये नव पदार्थों को ही सम्यक्त्व कह दिया है सो अभेदोपचार करके कहा है। वास्तव में ये सम्यक्त्व के विषय हैं अथवा सम्यक्त्व के लिए कारण भी हैं। (मू.चा., भा.1, पृ.169)

प्र.1690 जीव का लक्षण क्या है?

उत्तर जीव का लक्षण चेतना है। वह चेतना ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख के अनुभव स्वभाव वाली है।

प्र.1691 अजीव का लक्षण क्या है?

उत्तर अजीव का लक्षण चेतना से व्यतिरिक्त (रहित) है। पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये अजीव द्रव्य हैं।

प्र.1692 पुद्गल का लक्षण क्या है?

उत्तर रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुणवाला पुद्गल है।

प्र.1693 धर्म-द्रव्य कौन-से लक्षण वाला है?

उत्तर धर्म-द्रव्य जीव-पुद्गलों की गति में सहायक होने से गति लक्षण वाला है।

प्र.1694 अधर्म द्रव्य कौन-से लक्षण वाला है?

उत्तर अधर्म द्रव्य जीव-पुद्गलों की स्थिति में सहायक होने से स्थिति लक्षण वाला है।

प्र.1695 आकाश द्रव्य कौन-से लक्षण वाला है?

उत्तर आकाश द्रव्य सभी द्रव्यों को अवकाश (जगह) देने वाला होने से अवकाश लक्षण वाला है।

प्र.1696 काल द्रव्य का लक्षण क्या है?

उत्तर काल द्रव्य वर्तना लक्षण वाला है।

प्र.1697 पुण्य क्या कहलाता है और वह किसका निमित्त है?

उत्तर शुभ प्रकृति स्वरूप परिणत हुआ पुद्गल पिण्ड पुण्य कहलाता है जो कि जीवों में आह्लाद रूप सुख का निमित्त है।

प्र.1698 पाप क्या कहलाता है और वह किसका निमित्त है?

उत्तर अशुभ कर्म स्वरूप परिणत हुआ पुद्गल पिण्ड पाप रूप है जो कि जीव के दुःख का हेतु है।

प्र.1699 आस्रव क्या कहलाता है?

उत्तर जिससे कर्म आ-सब तरफ से, स्रवति-आते हैं वह आस्रव कहलाता है अर्थात् कर्मों का आना आस्रव है।

प्र.1700 संवर किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म के आगमन-द्वार को जो रोकता है उसे संवर कहते हैं अथवा कर्मों का रुकना मात्र ही संवर है अर्थात् आने वाले कर्मों का आना रुक जाना संवर है।

प्र.1701 निर्जरा का लक्षण क्या है?

उत्तर कर्मों का निर्जीर्ण होना अथवा जिसके द्वारा कर्म निर्जीर्ण होते हैं, झड़ते हैं, वह निर्जरा है। अर्थात् जीव में लगे हुए कर्म प्रदेशों की हानि होना निर्जरा है।

प्र.1702 बंध का लक्षण क्या है?

उत्तर जिसके द्वारा कर्म बंधते हैं अथवा बँधना मात्र ही बंध का लक्षण है। अर्थात् जीव के प्रदेश और कर्म प्रदेश-परमाणुओं का परस्पर में संश्लेष हो जाना-एकमेक हो जाना बंध है, जो जीव और पुद्गल वर्गणा दोनों की स्वतन्त्रता को समाप्त कर उन्हें परतन्त्र कर देता है।

प्र.1703 मोक्ष क्या है?

उत्तर जिसके द्वारा जीव मुक्त होवे, छूट जावे अथवा छूटना मात्र ही मोक्ष है। अर्थात् जिन परिणामों से आत्मा कर्म से छूटता है वह भाव मोक्ष है और कर्मों से छूटना ही द्रव्य मोक्ष है सो ही कहते हैं कि जीव के प्रदेशों का कर्म से रहित हो जाना, जीव की परतन्त्र अवस्था समाप्त होकर उसका पूर्ण स्वतन्त्र भाव प्रकट हो जाना ही मोक्ष है।

प्र.1704 जीव कितने प्रकार के हैं?

उत्तर जीव दो प्रकार के होते हैं- संसार में स्थित अर्थात् संसारी और मुक्त। संसारी जीव छह प्रकार के हैं और मुक्त जीव सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं।

प्र.1705 संसारी जीव के छह प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस ये संसारी जीव के छह भेद हैं।

प्र.1706 पृथ्वी आदि पञ्चस्थावरों में चार-चार भेद कौन-से हैं, उनके लक्षण क्या हैं तथा कौन-से भेद छोड़ने योग्य हैं?

उत्तर पृथ्वी, पृथ्वी काय (शरीर), पृथ्वी कायिक और पृथ्वी जीव इसी तरह चारों में समझना। पृथ्वी आदि के दो-दो भेद छोड़ने योग्य हैं अर्थात् वे निर्जीव हैं और शेष दो-दो भेदों को अभी में ग्रहण करना है क्योंकि वे ही जीव हैं। अर्थात् प्रथम भेद सामान्य पृथ्वी रूप हैं जिसके अन्दर सभी जीव नहीं हैं लेकिन आ सकता है। पृथ्वीकाय से जीव निकल चुका है पुनः उसमें जीव नहीं आवेगा। जो पृथ्वीकायिक नामकर्म के उदय से पृथ्वी पर्याय में पृथ्वी शरीर को धारण किये हुए हैं वे पृथ्वीकायिक हैं तथा जिस जीव ने विग्रह गति में पृथ्वी शरीर को अभी ग्रहण नहीं किया है वह पृथ्वी जीव है।

प्र.1707 इन पृथ्वी आदिक पंच स्थावरों के चार भेदों में किसकी रक्षा करना अनिवार्य है और किसकी हिंसा असंभव है?

उत्तर इन पृथ्वी आदिक में जिसके साथ 'कायिक' यह सम्बन्ध जुड़ा हुआ है अर्थात् जो जीव से सहित है उसकी रक्षा करना अनिवार्य है। तथा जो जीव स्थावरों में जन्म या भवधारण हेतु विग्रह गति से गमन कर रहा है उसकी हिंसा असंभव है।

प्र.1708 पृथ्वी आदिक पाँच स्थावरों के चार-चार भेदों के उदाहरण कौन-से हैं?

उत्तर **पृथ्वी**-1. मार्ग में पड़ी हुई धूलि आदि पृथ्वी हैं।
2. पृथ्वीकायिक जीव के द्वारा परित्यक्त ईंट आदि पृथ्वी काय हैं।
3. पृथ्वी शरीर को धारण करने वाले खान में स्थित पत्थर आदि जीव पृथ्वीकायिक हैं और
4. पृथ्वी में उत्पन्न होने के पूर्व विग्रह गति में रहते हुए एक, दो या तीन समय तक जीव पृथ्वी-जीव हैं।
जल-1. विलोड़ा गया, घर्षित हुआ पानी सामान्य जल है।
2. गरम किया गया पानी जलकाय है।
3. जिसमें जल-जीव है वह जलकायिक है और
4. वायु में उत्पत्ति हेतु विग्रह गति से आ रहा जीव जल-जीव है।
अग्नि- 1. जिस पर जल सींच दिया गया है या किंचित गर्म अग्नि सामान्य अग्नि है।
2. कोयला राख और भस्म आदि अग्निकाय हैं।
3. जिसमें जल-जीव मौजूद है ऐसी जलती हुई अग्नि अग्निकायिक है। और
4. अग्नि में उत्पन्न होने हेतु विग्रहगति से आने वाला जीव अग्नि-जीव है।
वायु- 1.वायुकायिक जीवों के जीवन धारण करने योग्य वायु सामान्य वायु है।
2. पंखा आदिक बिलोडित की गई वायु; वायु काय है।
3. वायुकायिक जीवों से सहित वायु वायुकायिक हैं। और
4. वायु कायिक की पर्याय धारण हेतु विग्रहगति से आने वाला जीव वायु-जीव है।
वनस्पति- 1. मर्दित की गयी लता आदि यह सामान्य वनस्पति है।
2. सूखी आदि वनस्पति जो जीव रहित है वह वनस्पति काय है।
3. वनस्पतिकाय-सहित वनस्पति-वनस्पति कायिक है।
4. वनस्पति में उत्पत्ति हेतु विग्रह गति से आने वाला जीव वनस्पति-जीव है।

प्र.1709 जीव रक्षा हेतु या हिंसा परिहार हेतु योग्य पृथ्वीकायिक के छत्तीस भेद कौन-से हैं?

उत्तर पृथ्वीकायिक के छत्तीस भेद-1.मिट्टी-काली, पीली आदि रूप चिकने गुण वाली, 2. बालुका-नदी आदि से मिलने वाली रूखी और महीन, 3. शर्करा-कंकरीली रेत कठोर और चौकोन आदि आकार वाली, 4. उपल-गोल-गोल पत्थर के टकड़े, 5.शिला-पत्थर की चट्टानें, 6. लवण-पहाड़ या समुद्र आदि के जल में जमकर होने वाला नमक, 6. अय-लोहा, 8. तंव-तांबा, 9. तउय (त्रपुषं) रांगा, 10.सीसम-सीसा, 11.रूप्य-चांदी, 12.सुवर्ण-सोना, 13.वज्र-हीरा, 14.हरिताल-हरापीला वर्ण का हरताल, 15. हिंगूल-लाल वर्ण का हिंगुल, 16. मेनसिल-मनःशिला यह पत्थर खाँसी के रोग में औषधि के काम आता है, 17. सस्यक-तूतिया यह हरे वर्ण का होता है, 18.अंजन-यह नेत्रों का

उपकार करने वाला द्रव्य है, 19.प्रवाल-इसे मूंगा भी कहते हैं, 20.अभ्रपटल-अभ्रक, इसे भोड भी कहते हैं, 21.अभ्रबालुका- चमकने वाली कोई रेत, 22.गोमेद-कर्केतनमणि, 23.रुचक-राजावर्तमणि जो अलसी के फूल के समान वर्ण वाली होती है, 24.अंक-पुलकमणि जो प्रवालवर्ण की होती है, 25.स्फटिक-यह स्फटिक मणि स्वच्छ विशेष होती है, 26.लोहितांक-पद्मरागमणि, यह लाल होती है, 27.चन्दप्रभ- यह चन्द्रकान्त मणि है, इसमें चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से अमृत झरता है, 28.वैडूर्य- यह नील वर्ण की होती है, 29.जलकान्त- यह मणि जल के समान वर्ण वाली होती है, 30.सूर्यकान्त- इस मणि पर सूर्य की किरणों के पड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है। 31.गैरिक-यह मणि लाल वर्ण की होती है, 32.चन्दन-यह मणि श्रीखण्ड और चन्दन के समान गन्धवाली होती है, 33.वप्पक-यह मरकतमणि है, इसके अनेक भेद हैं, 34.वक- यह मणि बगुले के समान वर्ण वाली है, इसे ही पुष्परागमणि कहते हैं, 35.मोच- यह मणिक कदलीपत्र के समान वर्णवाली है, इसे नीलमणि भी कहते हैं, 36.मसारगल्ल- यह चिकने-चिकने पाषाण रूप मणि है और मूंगे के वर्णवाली है। इन सबको पृथ्वी कायिक जीव जानो और इनकी हिंसा का परिहार करो। (मू.चा.भाग गा.206 से 208)

प्र.1710 वे जलकायिक जीव कौन-से हैं जिनकी हिंसा का हमें परिहार करना चाहिए?

उत्तर जलकायिक जीवों के प्रकार आगे कहे जाते हैं जिनकी हिंसा का परिहार करना चाहिए।

ओस-रात्रि के पश्चिम (अंतिम) प्रहर में मेघ रहित आकाश से जो सूक्ष्म जलकण गिरते हैं उसे ओस कहते हैं।

हिम-जो पानी घन होकर नीचे ओले के रूप में हो जाता है उसे हिम कहते हैं इसे ही बर्फ कहा जाता है।

कुहरा-धूमाकार जल जो कि कुहरा कहलाता है, इसे ही महिका कहते हैं

हरत्-स्थूल-बिन्दु रूप जल हरत् कहलाता है।

अणु-सूक्ष्म बिन्दु रूप जल अणुसंज्ञक है।

शुद्ध-चन्द्रकान्त (मणि) से प्राप्त हुआ जल शुद्ध जल है।

उदक- झरना आदि से उत्पन्न हुआ जल उदक कहलाता है।

घनोदक- समुद्र, सरोवर, घनवात आदि से उत्पन्न हुआ जल जो कि घनाकार है, घनोदक कहलाता है। अथवा

हरदणु- महासरोवर, समुद्र आदि से उत्पन्न हुआ जल हरदणु है, और

घनोदक-मेघ आदि से उत्पन्न हुआ घनाकार जल घनोदक है।

प्र.1711 वे अग्निकायिक जीव कौन-से हैं जिनकी हिंसा परिहार योग्य है?

उत्तर अग्निकायिक जीवों के प्रकार जानें और उनकी हिंसा का परिहार करें-

अँगारे- जलते हुए धुएँ रहित काठ आदि अर्थात् धधकते कोयले अँगारे कहलाते हैं।

ज्वाला- अग्नि की लपटें ज्वाला कहलाती हैं।

अर्चि-दीपक और ज्वाला की अग्रभाग रूपी लौ को अर्चि कहते हैं।

मुर्मुर-कण्डे की अग्नि का नाम मुर्मुर है।

शुद्धअग्नि- वज्र से उत्पन्न, बिजली से उत्पन्न व सूर्यकान्त मणि से उत्पन्न अग्नि ये शुद्ध अग्नि है।

अग्नि-धुएँ आदि सहित सामान्य अग्नि को अग्नि कहा गया है।

प्र.1712 जिनकी हिंसा परिहार योग्य हैं ऐसे वायुकायिक जीव कौन-से हैं?

उत्तर हिंसा परिहार योग्य वायुकायिक जीव-

उद्भ्रम- जो वायु घूमती हुई ऊपर की ओर उठती है व उद्भ्रम वायु है।

उत्कलि- जो लहरों के समान होती है वह उत्कलि रूप वायु है।

मंडलि- पृथ्वी में लगकर घूमती हुई वायु मण्डलि वायु है।

गुंजा- गूँजती हुई वायु गुंजवायु है।

महावायु- वृक्षादि को गिरा देने वाली वायु महावायु है।

घनतनूय- घनोदधिवातवलय, तनुवातवलय की वायु धनतनूय वायु है। पंखे और शरीरादि से सम्बन्ध रखने वाली एवं अन्य वायु इन्हीं वायुओं पर आधारित हैं।

प्र.1713 वे वनस्पतिकायिक वनस्पतियाँ कौन-सी हैं जिनकी हिंसा परिहार्य है?

उत्तर हिंसा परिहार्य वनस्पतियों के प्रकार-

मूल- मूल (जड़) से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ मूलबीज हैं जैसे हल्दी आदि।

अग्र- अग्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ अग्र बीज हैं जैसे कोरंटक, मल्लिका, कुब्जक-एक प्रकार का वृक्ष आदि। इनका अग्रभाग उग जाता है।

पर्वबीज- जिनकी पर्व-पोरभाग से उत्पत्ति होती है वे पर्वबीज है; कदली, पिंडालु आदि।

स्कन्धबीज- स्कन्ध से उत्पन्न होने वाली स्कन्ध बीज वनस्पति है जैसे- सल्लकी, पालिभद्र (मूँगे, देवदारु, सरल और नीम के वृक्ष) आदि।

बीजबीज- कोई वनस्पतियाँ बीज से उत्पन्न होती हैं वे बीज-बीज कहलाती हैं; जैसे जौ, गेहूँ आदि इनकी खेत में मिट्टी, जल आदि सामग्री से उत्पत्ति होती है।

संमूर्च्छिम- मूल, अग्र-बीज आदि के अभाव में भी जिनकी उत्पत्ति या जन्म होता है वे संमूर्च्छिम वनस्पतियाँ हैं। इन्हीं वनस्पतियों के उपभेद अनेक हैं जैसे-

कंद- जमीन के अन्दर उत्पन्न होने वाली वनस्पति जैसे, सूरण, पद्मकंद (शकरकन्द) आदि।

मूल-मूल अर्थात् पिण्ड के नीचे भाग से जो उत्पन्न होती हैं वे मूल काय हैं जैसे- हल्दी, अदरक आदि।

छाल- वृक्ष के बाहर का बलकल छाल कहलाता है।

स्कन्ध- पिण्ड और शाखा का मध्य भाग स्कन्ध है।

पत्र- अंकुर के अनन्तर की अवस्था पत्र (पत्ता) है।

प्रवाल- पत्तों की पूर्व अवस्था प्रवाल है जिसे कोंपल कहते हैं।

फूल- जो फल में कारण है वह पुष्प है।

फल- पुष्पों के कार्य को फल कहते हैं; जैसे सुपारी आदि फल।

गुच्छा- अनेक के समूह का नाम गुच्छा है; जैसे- जाति पुष्पों के गुच्छे, मालती पुष्पों के गुच्छे।

गुल्म- करंज और कंपारिका आदि गुल्म कहलाते हैं।

बल्ली- लता, बेल आदि बल्ली संज्ञक हैं।

तृण- हरित घास आदि तृण नाम वाले हैं।

पर्व- दो गाँठों के मध्य को, जिससे वेत्रादि, इक्षु आदि उत्पन्न होते हैं उसे पर्व कहते हैं।

शैवाल- जल में होने वाली हरी-हरी काई शैवाल है।

पणक- जमीन पर तथा ईंट आदि पर लग जाने वाली काई पणक है।

किण्व- वर्षाकाल में कूड़े-कचरे पर जो छत्राकार वनस्पति हो जाती है, वह किण्व कहलाती है।

कवक- सींग में उत्पन्न होने वाली जटाकार वनस्पति कवक है।

कुहन- भोजन और कांजी आदि पर लग जाने वाली फूली (फफूँदी) कुहन है।

प्र.1714 उपर्युक्त पृथ्वी कायिक से लेकर वनस्पति कायिक पर्यन्त जितने भी प्रकार बतलाए गये हैं वे सभी कौन-से काय हैं?

उत्तर उपर्युक्त सर्व पंच-कायिक बादर स्थावर कायिक हैं।

प्र.1715 बादर और सूक्ष्म कायिक जीव किसके आधार से रहते हैं?

उत्तर जो आठ प्रकार की पृथ्वी और विमान आदि का आश्रय लेकर होते हैं वे बादर काय जीव हैं। और सर्वत्र जल, स्थल, आकाश में बिना आधार से रहने वाले जीव सूक्ष्मकाय कहलाते हैं।

प्र.1716 सर्वत्र लोकाकाश में भरे हुए सूक्ष्मकाय पंचस्थावरों की अवगाहना कितनी है?

उत्तर सर्वत्र लोकाकाश में भरे हुए सूक्ष्मकाय रूप पंचस्थावरों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। (बादर वनस्पति एवं विभिन्न स्थावरों व त्रसों का वर्णन आगम-अनुयोग के प्रथम भाग में किया जा चुका है।)

प्र.1717 पौद्गलिक वर्गणाओं का स्वरूप क्या है और वे कितने प्रकार की हैं?

उत्तर पौद्गलिक परमाणुओं का पिण्ड; वर्गणा रूप होता है उनमें जो ग्राह्य वर्गणायें हैं वे कर्म या औदारिक आदि पंच शरीर, भाषा और मनरूप होने की शक्ति रखती हैं। सर्व वर्गणाओं की संख्या तेईस है।

प्र.1718 पुद्गल वर्गणाओं के तेईस भेद कौन-से हैं?

उत्तर तेईस वर्गणाएँ- अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहार वर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सांतरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकवर्गणा, ध्रुववर्गणा, बादरनिगोद वर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा।

प्र.1719 अजीव रूप पुद्गल द्रव्य तो रूप, रस, गंध और स्पर्शगुण वाला है लेकिन मात्र 'रूपिणः पुद्गलाः' ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर पुद्गल रूप गुण वाला है यह सामान्य कथन है। रूपी शब्द से रूप, रस, गंध और स्पर्श ये रूप के साथ अविनाभाव (पारस्परिक) सम्बन्ध रखने वाले होते हैं।

प्र.1720 रूपी पुद्गल के चार भेद कौन-से हैं?

उत्तर स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु इस तरह पुद्गल के चार भेद हैं। (मू.चा.भाग 1, गा.230)

प्र.1721 स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर परमाणु से लेकर महास्कन्ध (त्रिलोक) पर्यंत सकल पुद्गलों और सामान्य विशेष धर्म सहित समस्त या सर्व पुद्गल द्रव्य को महास्कन्ध कहते हैं।

प्र.1722 स्कन्ध देश किसे कहते हैं?

उत्तर स्कन्ध के आधे को स्कन्ध देश कहते हैं।

प्र.1723 स्कन्ध प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर उस आधे के आधे को अर्थात् समस्त पुद्गल द्रव्य के आधे को आधा करना, पुनः उस आधे को आधा करना, इस प्रकार जब तक द्व्यणुक स्कन्ध न हो जावे तब तक आधा-आधा करते जाना, ये सभी भेद प्रदेश शब्द से कहे जाते हैं।

प्र.1724 परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर निरंश भाग अर्थात् जिसका दूसरा विभाग अब नहीं हो सकता है उस अविभागी पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

प्र.1725 पुद्गल द्रव्य के भेदों को जिनेन्द्र देव ने दूसरी तरह से किस प्रकार बतलाया है?

उत्तर जिनेन्द्र देव ने पुद्गल द्रव्य के दूसरी तरह के भेदों को पृथ्वी, जल, छाया, नेत्रेन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों का विषय, कर्म और परमाणु रूप बतलाया है।

प्र.1726 उपर्युक्त पृथ्वी आदिक की दूसरी संज्ञा (नाम) क्या है?

उत्तर बादर-बादर, बादर, बादर-सूक्ष्म, सूक्ष्म-बादर, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म ये पृथ्वी, जल और छाया आदि छहों के दूसरे नाम हैं। (गो.सा., जी.का.गा.43)

प्र.1727 बादर-बादर आदिक छहों के लक्षण क्या हैं?

उत्तर 1. जिसका छेदन-भेदन और अन्यत्र प्रापण हो सके उस स्कन्ध को बादर-बादर कहते हैं। जैसे-पृथ्वी, काष्ठ, पाषाणादि।

2. जिसका छेदन-भेदन न हो सके किन्तु अन्यत्र ले जाया जा सके वह स्कन्ध बादर है जैसे- जल, तेल आदि।

3.जिसका छेदन-भेदन और अन्यत्र प्रापण भी न हो सके ऐसे नेत्र से देखने योग्य स्कन्ध को बादर-सूक्ष्म कहते हैं। जैसे- छाया, आतप, चाँदनी, (अंधकार) आदि।

4. नेत्र को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गल स्कन्ध को सूक्ष्म स्थूल कहते हैं। जैसे-शब्द, रस, गंध आदि।

5. जिसका किसी इन्द्रिय से ग्रहण न हो सके उस पुद्गल स्कन्ध को सूक्ष्म कहते हैं। जैसे-कर्मवर्गणाएँ।

6. जो स्कन्ध रूप नहीं हैं ऐसे अविभागी परमाणु को सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं।

विशेष- नियमसार ग्रन्थ में स्कन्ध के छह भेद किये हैं और परमाणु के भेद अलग किये हैं। उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म भेद के उदाहरण में कर्म के अयोग्य पुद्गल वर्गणाएँ ली गई हैं।

प्र.1728 ये रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि रूप पुद्गल किसके कारण हैं?

उत्तर ये रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि रूप पुद्गल कर्म-बन्ध में कारण हैं। क्योंकि जीव के स्वरूप से अन्यथाभूत जो रागादि परिणाम हैं उनके निमित्त से जो कर्म-बन्ध होता है, उस कर्म-बन्ध के लिए उपादानकारण रूपादिमान पुद्गल द्रव्य वर्गणाएँ हैं। (मू.चा.,भाग.1, गा.233 टी.)

प्र.1729 अमूर्तिक जीव प्रदेशों का मूर्तिक कर्म पुद्गलों के साथ संबन्ध कैसे होता है?

उत्तर जैसे तेल को मर्दन करने से मर्दित शरीर में धूलि चिपक जाती है उसी प्रकार ये रागद्वेष और मोह या रति-अरति से लिप्त हुए जीव के कर्म पुद्गल चिपक जाते हैं अर्थात् जीव के तैजस और कार्मण वर्गणाएँ सम्बन्धित हो जाती हैं।

प्र.1730 पुण्यास्रव और पापास्रव के कारण क्या हैं?

उत्तर अनुकम्पा अर्थात् दया और शुद्ध उपयोग अर्थात् शुद्ध ज्ञानोपयोग तथा शुद्ध दर्शनोपयोग अर्थात् मन-वचन-काय की सम्यक्-निर्मल प्रवृत्ति इनके द्वारा पुण्य का आस्रव होता है। इनसे विपरीत जीव दया न करना, तथा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञानोपयोग अर्थात् अशुद्ध मन-वचन-काय की क्रिया पापास्रव के लिए कारण है। (मू.चा.,भा.1, गाथा 235 टी.)

प्र.1731 पुण्यबन्ध और पापबन्ध का कारण तथा पुण्य और पाप से सम्बन्धित जीव का स्वरूप क्या है?

उत्तर सम्यक्त्व से, श्रुतज्ञान से, विरति रूप परिणाम अर्थात् पाँच महाव्रतों के परिणति रूप चारित्र से तथा क्रोध, मान, माया और लोभ इन कषायों को निग्रह करने वाले उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव तथा संतोष रूप गुणों से, एवं इन्द्रियों के निरोध से जो जीव परिणत हो रहा है उसके जो कर्मों का संश्लेष होता है वह पुण्य कहलाता है। अथवा सम्यक्त्व आदि गुणों में अभेद पाया जाता है। और उससे विपरीत अर्थात् मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम तथा कषाय रूप गुणों से जो परिणत हुआ पौद्गलिक कार्मण वर्गणाओं का समूह अथवा तद्वान जीव पाप कहलाता है। (मू.चा., भाग.1)

प्र.1732 कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जीव के रागादिक परिणामों का निमित्त पाकर कर्म रूप से बंधने की योग्यता रखने वाले कार्मणवर्गणा के परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

प्र.1733 कर्म बंध क्या है?

उत्तर जब जीव में राग-द्वेषादिक विकारी भाव उत्पन्न होते हैं तब कार्मण वर्गणा के परमाणु कर्म रूप हो जाते हैं और उनमें स्थिति (काल मर्यादा) तथा अनुभाग (फल देने की शक्ति विशेष) उत्पन्न हो जाती है वह कर्म बंध है।

प्र.1734 एक समय में कितने कर्म पुद्गलों का बंध होता है?

उत्तर एक समय में अभव्यों के अनन्त गुणें और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण कर्म-पुद्गलों का बंध होता है।

प्र.1735 आत्मा के साथ कर्म बन्ध कब से है?

उत्तर जैसे खदान में स्थित स्वर्णकणों के साथ किट्ट-कालिमा का सम्बन्ध अनादिकाल से है वैसे ही आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादि काल से है।

प्र.1736 जो चर्म-चक्षुओं से या यंत्रादिक से दिखाई नहीं पड़ते ऐसे कर्मों पर विश्वास कैसे किया जावे?

उत्तर वैसे तो कर्म; पुद्गल द्रव्य रूप होने से रूप, रस, गन्ध और स्पर्श सहित हैं, परन्तु उनका सूक्ष्म परिणमन होने से वे दिखाई नहीं देते। फिर भी जीवों की दरिद्रता-धनीपना, अज्ञानी-ज्ञानीपना, निर्बल-सबलपना और कुरूप-सुरूपता आदि विषम दशाओं को देखकर कर्मों का अनुमान कर विश्वास किया जाता है।

प्र.1737 कर्म बंध के पाँच हेतु कौन-से हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के पाँच हेतु हैं।

प्र.1738 मिथ्यादर्शन के कितने भेद हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन के दो भेद हैं नैसर्गिक और परोपदेशक:-

1. जो परोपदेश के बिना मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से जीवादि (या देव गुरु शास्त्र) रूप पदार्थों का अश्रद्धान रूप भाव होता है वह नैसर्गिक मिथ्यादर्शन है।

2. तथा परोपदेश के निमित्त से होने वाला मिथ्यादर्शन 4 व 5 प्रकार हैं।

प्र.1739 मिथ्यादर्शन के चार प्रकार किसके हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन के चार प्रकार 363 मिथ्यामत वालों के हैं। जिनमें 1.क्रिया वादियों के एक सौ अस्सी, 2.अक्रियावादियों के चौरासी, 3.अज्ञानियों के सड़सठ और 4.वैनयिकों बत्तीस भेद हैं। इस तरह सम्पूर्ण भेद तीन सौ त्रेसठ हैं। (मिथ्यादर्शन के पाँच भेदः- एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान देखें- जैनागम संस्कार पृष्ठ 71)

पंचेन्द्रिय के विषयों से एवं षड्-जीव निकायों की हिंसा से विरति न होना अविरति है। प्रमाद, कषाय और योग का वर्णन प्रथम भाग में कर दिया गया है।

प्र.1740 वे अष्ट शुद्धियाँ कौन-सी हैं जहाँ प्रमाद नहीं करना चाहिए?

उत्तर भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथ-शुद्धि, भिक्षा (आहार)-शुद्धि, प्रतिष्ठापनशुद्धि, शयनासन-शुद्धि और वाक्यशुद्धि इस तरह आठ शुद्धियाँ हैं जहाँ तथा उत्तम क्षमादि के विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

प्र.1741 समय प्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्येक समय में जो कर्म- नोकर्मरूप पुद्गल स्कन्धों या वर्गणाओं का आत्मा के साथ बंध-सम्बंध होता है वह समय प्रबद्ध कहा जाता है।

प्र.1742 अनेक पुद्गल परमाणुओं से निर्मित कार्मण-वर्गणा की विशेषता क्या है?

उत्तर कार्मण-वर्गणा जो पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध तथा स्पर्श के आठ भेदों से चार (स्निग्ध-रूक्ष, शीत-उष्ण, कर्कश-मृदु, गुरु-लघु इन चार युगलों में एक-एक इस प्रकार चार) इन गुणों से परिणत होती है।

प्र.1743 कर्म-बंध होने में मुख्य-निमित्त कौन-से हैं?

उत्तर कर्म-बंध के मूल भेद-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप चार भेद हैं। (निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा कथन है)इन्हीं प्रकृति आदि में मिथ्यात्व आदि प्रत्ययों का समावेश हो जाता है।

प्र.1744 प्रकृति बंध किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म-परमाणु-प्रदेशों में ज्ञान, दर्शन आदि आवृत (ढकने) आदि का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध कहलाता है।

प्र.1745 स्थिति बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म-प्रदेशों में स्थिति (काल) रूप से फल देने की शक्ति का जो हीनाधिक काल है उसे स्थिति बन्ध कहते हैं।

प्र.1746 अनुभाग बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म-प्रदेशों में अनुभाग का अनुभव रूप फल देने की शक्ति की जो हीनाधिकता है उसे अनुभाग बन्ध कहते हैं।

प्र.1747 प्रदेश बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर ज्ञानावरणादिक कर्मों के प्रदेशों की संख्या में जो हीनाधिकता रूप परिणमन है उसे या कर्म रूप हुई पौद्गलिक कार्मण वर्गणाओं के प्रमाण को प्रदेश बन्ध कहते हैं।(क.का.गा.89, टी.)

प्र.1748 योग और कषाय के निमित्त से कौन-कौन से बन्ध होते हैं?

उत्तर योग के निमित्त से प्रकृति और प्रदेश बन्ध तथा कषाय के निमित्त से स्थिति और अनुभाग बन्ध होते हैं। (योग व कषाय का लक्षण भा.1 देखें)

प्र.1749 कर्म के मूल में कितने भेद हैं?

उत्तर कर्म के मूल में द्रव्य-कर्म और भाव-कर्म रूप से दो भेद हैं।

प्र.1750 द्रव्य-कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म रूप से परिणत पुद्गल वर्गणाओं को द्रव्य-कर्म कहते हैं।

प्र.1751 भाव-कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य-कर्म के आस्रव व बन्ध में निमित्त आत्मा की शक्ति विशेष को भाव-कर्म कहते हैं, अथवा द्रव्य-कर्म की उदयावस्था का निमित्त पाकर जीव में होने वाली जो राग-द्वेष रूप परिणति होती है उसे भाव-कर्म कहते हैं।

प्र.1752 द्रव्य-कर्म के मूल प्रकृति रूप भेद कौन-कौन से हैं?

उत्तर द्रव्य-कर्म के मूल प्रकृति रूप भेद इस प्रकार हैं-

1. ज्ञानावरण, 2.दर्शनावरण, 3.वेदनीय, 4.मोहनीय, 5.आयु, 6.नाम, 7.गोत्र और 8.अन्तराय। (उत्तर प्रकृति भेद देखें जैनागम संस्कार पृ.161)

प्र.1753 द्रव्य-कर्मों में घातिया कर्म किन्हें कहते हैं, और वे कौन-कौन से हैं?

उत्तर जो जीव के ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन अनुजीवी गुणों का घात करते हैं उन्हें घातिया कर्म कहते हैं। जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इस तरह मूल में चार भेद हैं। ये कर्म क्रमशः जीव के ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन गुणों का घात करते हैं।

प्र.1754 अनुजीवी गुणों का लक्षण क्या है एवं वे कौन-कौन से हैं?

उत्तर जिनके रहते हुए जीव का जीवत्व सुरक्षित रहे उन्हें अनुजीवी गुण कहते हैं। जैसे-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य।

प्र.1755 अघातिया कर्म किन्हें कहते हैं, और वे कौन-कौन से हैं?

उत्तर जो जीव के प्रतिजीवी गुणों के घात में निमित्त हों वे अघातिया कर्म हैं। जिनके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ऐसे मूल रूप चार भेद हैं। ये कर्म क्रमशः जीव के अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व इन गुणों का घात करते हैं। ये अव्याबाधत्व आदि चार प्रतिजीवी गुण कहलाते हैं।

प्र.1756 प्रकृति बन्ध आदि में उत्कृष्ट आदि चार भेद कौन-से हैं?

उत्तर प्रकृति बन्ध आदि में उत्कृष्टादि चार भेद हैं-

1. उत्कृष्ट- सबसे अधिक बन्ध उत्कृष्ट बन्ध है।
2. अनुत्कृष्ट- उत्कृष्ट से अल्प अनुत्कृष्ट बन्ध है।
3. अजघन्य- जघन्य से कुछ अधिक अजघन्य बन्ध है।
4. जघन्य- सबसे अल्प जघन्य बन्ध है।

प्र.1757 उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट आदि बन्धों में अवान्तर भेद कौन-से हैं?

उत्तर उत्कृष्ट आदि बन्धों के अवान्तर भेद-सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं।

1. जो बन्ध रुककर पुनः प्रारम्भ होता है वह सादि बन्ध है।
2. जो बन्ध व्युच्छित्ति तक अनादि से चला आता है वह अनादिबन्ध है।
3. जो बन्ध निरन्तर होता है उसे ध्रुव बन्ध कहते हैं।
4. जो बन्ध अन्तर सहित होता है उसे अध्रुव बन्ध कहते हैं।

विशेष- अभव्य जीव का ध्रुव बन्ध और भव्य जीव का अध्रुवबन्ध होता है।

प्र.1758 ज्ञानावरणादि मूल कर्म-प्रकृतियों में सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेद किस प्रकार घटित होते हैं?

उत्तर वेदनीय और आयुकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों का सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव रूप चारों प्रकार का बन्ध होता है। वेदनीय कर्म का सादि को छोड़कर शेष तीन प्रकार का बन्ध होता है, तथा आयुकर्म का सादि और अध्रुव ही बन्ध होता है।

प्र.1759 वेदनीय कर्म का सादि बन्ध क्यों नहीं होता है?

उत्तर क्योंकि उपशम श्रेणी चढ़ने पर भी वेदनीय सामान्य के बन्ध का अभाव नहीं होता है। (अर्थात् साता वेदनीय का बन्ध जारी रहता है।)

प्र.1760 नवक बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर तत्कालीन हुए नवीन बन्ध को नवक बन्ध कहते हैं।

प्र.1761 भुजकार बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर पहले अल्प प्रकृतियों का बन्ध होकर पश्चात् अधिक प्रकृतियों का बन्ध होना भुजकार बन्ध है।

प्र.1762 अल्पतर बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर पहले अधिक प्रकृतियों का बन्ध हो और पश्चात् अल्प प्रकृतियों का बन्ध होने लगे तो वह अल्पतर बन्ध कहा जाता है।

प्र.1763 अवस्थित बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर भुजकार एवं अल्पतर बन्ध में पहले जितनी प्रकृतियों का बन्ध होता था बाद में भी उतनी ही कर्म-प्रकृतियों का बन्ध होवे तो वह अवस्थित बन्ध कहा जाता है।

प्र.1764 अवक्तव्य बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्व में जिस कर्म का बंध नहीं था, किन्तु अगले समय में उसका बन्ध हुआ, इसी का नाम अवक्तव्य बन्ध कहा जाता है। (गो.क.,गा.469) जैसे- उपशान्त मोह गुणस्थान में मोहनीयकर्म का बन्ध नहीं था वहीं से गिरने पर मोहनीय कर्म का बन्ध होने लगा वह अवक्तव्य बन्ध है।

प्र.1765 घातिया और अघातिया कर्मों के प्रभेद कितने हैं?

उत्तर ज्ञानावरण कर्म के पाँच, दर्शनावरण कर्म के नौ, मोहनीय कर्म के अट्ठाईस और अन्तरायकर्म के पाँच इस तरह घातिया कर्मों की कुल संख्या सैंतालीस है। तथा वेदनीय कर्म के दो, आयु कर्म के चार, नामकर्म के तेरानवे और गोत्रकर्म के दो, इस तरह अघातियाकर्मों की कुल संख्या एक सौ एक है। (47+101=148)

प्र.1766 देशघाति कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जो कर्म जीव के अनुजीवी गुणों का एक देशघात करें अर्थात् जिनका उदय रहते हुए भी जीव के गुण कुछ अंशों में प्रकट रहें उन्हें देश घाति कर्म कहते हैं।

प्र.1767 सर्वघाति कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जो कर्म आत्मा के अनुजीवी गुणों को बिल्कुल ही प्रकट न होने दें उन्हें सर्वघातिकर्म कहते हैं।

प्र.1768 देशघाति कर्म-प्रकृतियाँ कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर देशघाति कर्म प्रकृतियाँ छब्बीस हैं- 1. मतिज्ञानावरण, 2.श्रुतज्ञानावरण, 3.अवधिज्ञानावरण, 4.मनःपर्ययज्ञानावरण, 5.चक्षुदर्शनावरण, 6.अचक्षुदर्शनावरण, 7.अवधिदर्शनावरण, 8.सम्यक्त्वप्रकृति, 9.संज्वलन क्रोध, 10. संज्वलन मान, 11.संज्वलन माया, 12.संज्वलन लोभ, 13.हास्य, 14.रति, 15.अरति, 16.शोक, 17 भय, 18.जुगुप्सा, 19.स्त्रीवेद, 20.पुरुषवेद, 21.नपुंसकवेद, 22.दानान्तराय, 23.लाभान्तराय, 24.भोगान्तराय, 25.उपभोगान्तराय और 26.वीर्यान्तराय।

प्र.1769 सर्वघातिकर्म-प्रकृतियाँ कितनी हैं, और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर सर्वघाति कर्म प्रकृतियाँ इक्कीस हैं- 1.केवलज्ञानावरण, 2.केवलदर्शनावरण, 3.निद्रा, 4.निद्रा-निद्रा, 5.प्रचला, 6.प्रचलाप्रचला, 7.स्त्यानगृद्धि, 8.मिथ्यात्व, 9.सम्यक्-मिथ्यात्व, 10.अनन्तानुबन्धी क्रोध, 11.अनन्तानुबन्धी मान, 12.अनन्तानुबन्धी माया, 13.अनन्तानुबन्धी लोभ, 14.अप्रत्याख्यान क्रोध, 15.अप्रत्याख्यान मान, 16.अप्रत्याख्यान माया, 17. अप्रत्याख्यान लोभ, 18.प्रत्याख्यान क्रोध, 19.प्रत्याख्यान मान, 20.प्रत्याख्यान माया और 21.प्रत्याख्यान लोभ।

प्र.1770 कर्म-विपाक (फल) की अपेक्षा कर्म-प्रकृतियों के कितने प्रकार हैं?

उत्तर 1.जीव विपाकी, 2.पुद्गल विपाकी, 3.क्षेत्र विपाकी और 4.भव विपाकी ऐसे चार प्रकार हैं।

प्र.1771 जीव विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर मुख्यतः जिन कर्मों का फल जीव पर होता है उन्हें जीव विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1772 पुद्‌गल विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर विशेषकर जिन कर्मों का फल पुद्‌गल पर होता है उन्हें पुद्‌गल विपाकी कर्म कहते हैं?

प्र.1773 क्षेत्र विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिन कर्मों का फल विग्रहगति रूप क्षेत्र में मिले अर्थात् जिन कर्मों के निमित्त से जीव के प्रदेशों का आकार विग्रह गति में पूर्व शरीर के आकार रूप बना रहे उन्हें क्षेत्र विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1774 भव विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिन कर्मों का उदय नरक आदि भवों (गतियों) में होता है उन्हें भव विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1775 जीव विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जीव विपाकी प्रकृतियाँ अठहत्तर हैं- घातिया-कर्म की 47, गोत्र कर्म 2, वेदनीय 2, और नामकर्म कर्म की 27(तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्‌वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयश-कीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, नरकादि चार गतियाँ और एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियाँ) कुल 78 हैं।

प्र.1776 पुद्‌गल विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर पुद्‌गल विपाकी प्रकृतियाँ बासठ हैं- औदारिकादि 5 शरीर, 5 बन्धन, 5 संघात, 3 अङ्‌गोपाङ्ग, 6 संस्थान, 6 संहनन, 8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध, 5 वर्ण, इस तरह पचास तथा निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, अगुरुलघु, उपघात और परघात ऐसी बारह। कुल मिलाकर 62 हैं।

प्र.1777 क्षेत्र विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं- नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग् गत्यानुपूर्वी, मनुष्य गत्यानुपूर्वी और देव गत्यानुपूर्वी।

प्र.1778 भव विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर भव विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं- नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु।

प्र.1779 पाप कर्म-प्रकृतियाँ कितनी हैं और वे कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर पाप कर्म प्रकृतियाँ सौ हैं- घातियाँ कर्म की 47 प्रकृतियाँ, असातावेदनीय, नीच गोत्र, नरकायु और नामकर्म की 50 प्रकृतियाँ (नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, आदि की 4 जातियाँ, अन्त के 5 संस्थान, अन्त के 5 संहनन, 20 स्पर्शादि, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, अनादेय, अयशस्कीर्ति, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर और साधारण शरीर कुल सौ प्रकृतियाँ हैं। (अभेद विवक्षा में 84 प्रकृतियाँ हैं)

प्र.1780 पुण्य कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर पुण्य कर्म प्रकृतियाँ अड़सठ हैं- कर्मों की 148 प्रकृतियों में से 100 घटाने पर 48 शेष रहती हैं, पुनः

48 में स्पर्शादिक 20 प्रकृतियाँ मिलाने पर 68 प्रकृतियाँ हो जाती हैं। स्पर्शादिक 20 प्रकृतियाँ किसी को सुखद और किसी को दुःखद रूप होने से पुण्य और पाप दोनों रूप मानी गयी है। (अभेद विवक्षा से पुण्य प्रकृतियाँ 42 हैं)

प्र.1781 पुण्य और पाप प्रकृतियों में भेद-अभेद विवक्षा से तथा बंध और उदय की विवक्षा (कथन शैली) से संख्या में क्या विशेषता है?

उत्तर जो पुण्य प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से 68 और अभेद विवक्षा से 42 कही हैं, पाप प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से बन्ध रूप 98 और उदय रूप 100 हैं तथा अभेद विवक्षा में बन्ध रूप 82 और उदय रूप 84 कही हैं, उसका कारण है कि दर्शनमोहनीय की सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति का बन्ध नहीं है, मात्र मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध होता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति से मिथ्यात्व के तीन खण्ड हो जाने पर इनकी सत्ता होती है तथा यथा समय में उदय भी होता है, अतः बन्ध की अपेक्षा 98 और सत्त्व तथा उदय की अपेक्षा 100 प्रकृतियाँ हैं। वर्णादिक की बीस प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनों रूप होती हैं, अतः उन वर्णादिक को पुण्य और पाप दोनों में ग्रहण किया जाता है।

प्र.1782 ध्रुवबन्धी प्रकृतियों का लक्षण क्या है वे कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जो बंध व्युच्छित्ति पर्यंत निरन्तर बंधती रहती है वे ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं। वे सैंतालीस हैं- ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 9, और अंतराय कर्म की 5 इस तरह 19, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी 4, अप्रत्याख्यान 4, प्रत्याख्यान 4, और संज्वलन 4 इस तरह 16 कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और वर्णादि 4 इस तरह कुल प्रकृतियाँ 47 हैं।

प्र.1783 अध्रुवबन्धी प्रकृतियों का लक्षण क्या है? वे कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जो निरन्तर नहीं बँधती जिनके बंधने में अन्तर पड़ता है वे अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं। वे ध्रुवबन्धी को छोड़कर शेष बची 73 प्रकृतियाँ हैं।

प्र.1784 अध्रुवबन्धी प्रकृतियों में सप्रतिपक्षी एवं अप्रतिपक्षी का लक्षण क्या है, और वे कितनी हैं तथा कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर तीर्थंकर, आहारक युगल, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और चारों आयु से ग्यारह प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षी (विरोधरहित) हैं अर्थात् जिस समय इनका बन्ध होता है तो होता ही है नहीं तो नहीं होता है बाकी जो बासठ प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी (विरोधी) हैं वे सातावेदनीय और असातावेदनीय आदि हैं उनमें जब एक का बन्ध होता है तब दूसरी का बंध नहीं होता है।

प्र.1785 अध्रुव बन्धी प्रकृतियों के निरन्तर बंधने का काल कितना है?

उत्तर तीर्थंकर, आहारक युगल तथा चार आयु, इन सात प्रकृतियों के निरन्तर बन्ध होने का काल अन्तर्मुहूर्त्त है और शेष का एक समय है।

प्र.1786 परोदयबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं, वे कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जिन प्रकृतियों का पर के उदय में बन्ध होता है अर्थात् जिनके उदयकाल में उन्हीं का बन्ध नहीं होता वे परोदयबन्धी प्रकृतियाँ हैं वे ग्यारह प्रकृतियाँ हैं- देवायु, नरकायु, तीर्थंकर, वैक्रियिक षट्क अर्थात् वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीराङ्गोपाङ्ग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी ये छह, आहारक शरीर और आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग।

प्र.1787 स्वोदयबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं, वे कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जिनका बन्ध अपने उदय के काल में ही होता है वे स्वोदयबन्धी प्रकृतियाँ हैं। वे सत्ताईस हैं- मिथ्यात्व, पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, तैजस, कार्मण, वर्णादिक की चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण।

प्र.1788 उभयोदयबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं, वे कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जो अपने उदय होने पर या न होने पर भी बंधती हैं उन्हें उभयोदय बन्धी प्रकृतियाँ कहते हैं। वे बियासी प्रकृतियाँ हैं। अर्थात् परोदयबन्धी, स्वोदयबन्धी सम्बन्धी प्रकृतियों को छोड़कर वियासी प्रकृतियाँ उभयोदय-बन्धी प्रकृतियाँ कहलाती हैं।

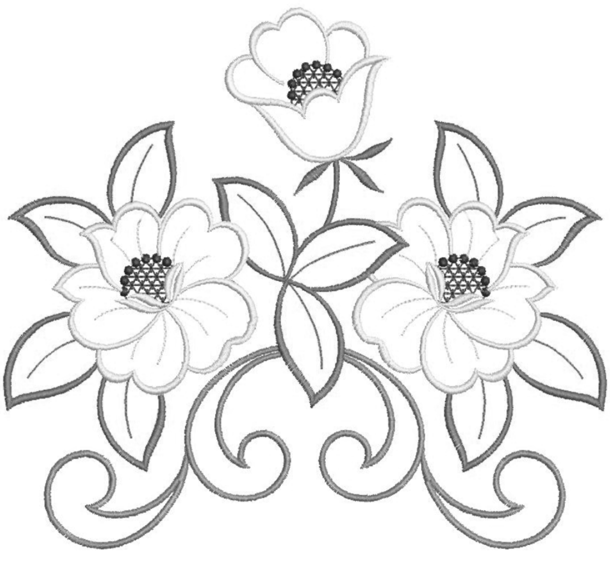

अध्याय-6
बन्ध त्रिभङ्गी, बन्ध उदय सत्व
(गुणस्थानों में बन्धादि, आबाधाकालादि)

प्र.1789 बन्ध-त्रिभङ्गी किसे कहते हैं?

उत्तर बन्ध व्युच्छित्ति, बन्ध और अबन्ध को बन्ध त्रिभङ्गी कहते हैं। इन तीनों का गुणस्थानों और मार्गणाओं में (घटित कर) वर्णन किया जाता है। (क.दी.भा.2) (बन्ध, उदय का लक्षण देखिये जैनागम सं., पृ.180, प्र.191)

प्र.1790 बन्ध, उदय और सत्त्व के योग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उत्तर अभेद विवक्षा में पाँच बन्धन, पाँच संघात तथा वर्णादि की सोलह और सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृति इस तरह अट्ठाईस प्रकृतियों के कम करने से एक सौ बीस प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हैं। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का उदय आता है अतः उदय योग्य एक सौ बाईस प्रकृतियाँ हैं। सम्यग्मिथ्यात्व का उदय तृतीय गुणस्थान में और सम्यक्त्व प्रकृति का उदय चतुर्थ से लेकर सप्तम गुणस्थान तक होता है। सत्त्व आठों कर्मों के भेद-प्रभेद रूप एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों का होता है (5+9+2+28+4+93+2+5= 148)

प्र.1791 आगम में बंध, उदय और सत्त्व का वर्णन किस विवक्षा से किया है?

उत्तर आगम में बन्ध और उदय का वर्णन अभेद विवक्षा से किया है और सत्त्व का वर्णन भेद विवक्षा से किया है।

प्र.1792 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर 1.मिथ्यात्व गुणस्थान में सोलह, 2.सासादन गुणस्थान में पच्चीस, 3.सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थान में शून्य, 4.असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दस, 5.देशसंयत (संयतासंयत) गुणस्थान में चार, 6.प्रमत्त संयत गुणस्थान में छह, 7.अप्रमत्त संयत गुणस्थान में एक, 8.अपूर्वकरण गुणस्थान में छत्तीस, 9.अनिवृत्ति गुणस्थान में पाँच, 10.सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में सोलह, 11.उपशांत मोह गुणस्थान में शून्य, 12.क्षीणमोह गुणस्थान में शून्य, 13.सयोगकेवली गुणस्थान में एक और 14.अयोग केवली गुणस्थान में शून्य प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1793 मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति को प्राप्त 16 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन सोलह प्रकृतियों का बन्ध प्रथम गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं।

प्र.1794 सासादन गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति को प्राप्त 25 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधादिक चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत और तिर्यगायु की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1795 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 10 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1796 देश संयत गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति को प्राप्त 4 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर देश संयत गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चतुष्क की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1797प्रमत्त संयत गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त 6 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर प्रमत्तसंयत गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1798 अप्रमत्त संयत गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 1 प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर अप्रमत्त संयत गुणस्थान में देवायु की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1799 अपूर्वकरण गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 36 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अपूर्वकरण गुणस्थान के सात भागों में से प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन दो की, छठे भाग के अन्त समय में तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय, इन तीस की तथा अन्त के सप्तम भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार की बन्ध व्युच्छित्ति होती है। (2 + 30 + 4 = 36)

प्र.1800 अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 5 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पाँचों भागों में क्रमशः पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1801 सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 16 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में ज्ञानावरण की 5, अन्तराय की 5, दर्शनावरण की 4, उच्च गोत्र और यशस्कीर्ति की बंध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1802 सयोगकेवली गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 1 प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर सयोग केवली गुणस्थान में सातावेदनीय, इस एक प्रकृति की बंध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1803 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 117, दूसरे गुणस्थान में 101, तीसरे गुणस्थान में 74, चौथे गुणस्थान में 77, पाँचवे गुणस्थान में 67, छठे गुणस्थान में 63, सातवे गुणस्थान में 59, आठवे गुणस्थान में 58, नौवे गुणस्थान में 22, दसवे गुणस्थान में 17, ग्यारहवे गुणस्थान में 1, बारहवे गुणस्थान में 1 और तेरहवे गुणस्थान में 1 प्रकृतियों का बन्ध होता है।

प्र.1804 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का अबन्ध होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 3, दूसरे गुणस्थान में 19, तीसरे गुणस्थान में 46, चौथे गुणस्थान में 43, पाँचवें गुणस्थान में 53, छठे गुणस्थान में 57, सातवे गुणस्थान में 61, आठवे गुणस्थान में 62, नौवे गुणस्थान में 98, दसवे गुणस्थान में 103, ग्यारहवे गुणस्थान में 119, बारहवे गुणस्थान में 119, तेरहवे गुणस्थान में 119 और चौदहवे गुणस्थान में 120 प्रकृतियों का अबन्ध होता है।

प्र.1805 व्युच्छित्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर व्युच्छित्ति का अर्थ छूटना या समाप्त होना है। अर्थात् जिस गुणस्थान में जिस कर्म-प्रकृति की बंध उदय व सत्त्व व्युच्छित्ति कही जाती है, उस गुणस्थान के आगे उस कर्म प्रकृति का बन्ध या उदय या सत्त्व नहीं पाया जाता है।

प्र.1806 पूर्व-पूर्व के गुणस्थानों की अपेक्षा आगे-आगे के गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों के बंध, उदय और अबन्ध सम्बन्धी संख्या रूप गणित निकालने की विधि क्या है?

उत्तर पूर्व-पूर्व के गुणस्थानों की कर्मबन्ध प्रकृतियों में से उनकी व्युच्छित्ति कम करने पर आगामी गुणस्थानों का बन्ध निकलता है तथा वर्तमान गुणस्थान की व्युच्छित्ति और वर्तमान गुणस्थान का अबन्ध मिलाने से आगामी गुणस्थान का अबन्ध निकलता है।

जैसे- कुल बन्ध योग्य प्रकृतियाँ 120 हैं, उनमें से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध चतुर्थ से लेकर अष्टम गुणस्थान तक होता है, तथा आहारक युगल का बन्ध सप्तम, अष्टम में होता है, अतः तीन प्रकृतियाँ प्रथम गुणस्थान में अबन्धनीय होने से कम हो गईं। जिस कारण प्रथम गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति 16 की, बन्ध 117 का और अबन्ध 3 का है। प्रथम गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ घट जाने से द्वितीय गुणस्थान में बन्ध योग्य प्रकृतियाँ 101 रह गईं, वहाँ बन्ध व्युच्छित्ति 25 की, बन्ध 101 का और अबन्ध 16 + 3 = 19 का है। द्वितीय गुणस्थान की व्युच्छिन्न 25 प्रकृतियाँ कम हो जाने 76 रहीं पर तृतीय गुणस्थान में आयु का बन्ध नहीं होता अतः 2(मनु.दे.) प्रकृतियाँ और कम हो गई। इस तरह तृतीय गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति शून्य की, बन्ध 74 का और अबन्ध 19 + 25 + 2 = 46 का है। चतुर्थ गुणस्थान में मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होने लगता है अतः बन्ध 74 + 3 = 77 का है। बन्ध व्युच्छित्ति 10 की, बन्ध 77 का और अबन्ध 46-3 = 43 का है। चतुर्थ गुणस्थान की व्युच्छिन्न 10 प्रकृतियाँ घट जाने से पंचम गुणस्थान में बन्ध 67 का, बन्ध व्युच्छित्ति 4 की और अबन्ध

43 + 10 = 53 का है। पञ्चम गुणस्थान से व्युच्छिन्न 4 प्रकृतियाँ घट जाने से छठे गुणस्थान में बन्ध 63 का, बन्ध व्युच्छित्ति 6 की और अबन्ध 53 + 4 = 57 का है। षष्ठ गुणस्थान की व्युच्छिन्न 6 प्रकृतियाँ कम करने से और आहारक युगल मिलाने से सप्तम गुणस्थान में बन्ध 59 का, बन्ध व्युच्छित्ति 1 की और अबन्ध 57 + 6 = 63; 63-2 = 61 (आ., आ.मि.) का है। सप्तम गुणस्थान की व्युच्छिन्न 1 प्रकृति कम हो जाने से अष्टम गुणस्थान में बन्ध 58 का, बन्ध व्युच्छित्ति 36 की और अबन्ध 61 + 1 = 62 का है। अष्टम गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई 36 प्रकृतियाँ कम हो जाने से नवम गुणस्थान में बन्ध 22 का, बन्ध व्युच्छित्ति 5 की और अबन्ध 62 + 36 = 98 का है। नवम गुणस्थान में व्युच्छिन्न 5 प्रकृतियाँ कम हो जाने से दशम गुणस्थान में बन्ध 17 का, बन्ध व्युच्छित्ति 16 की और अबन्ध 98 + 5 = 103 का है। दशम की व्युच्छिन्न 16 प्रकृतियाँ कम हो जाने से ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानों में बन्ध 1 का और अबन्ध 119 का है। ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति शून्य है। तेरहवें गुणस्थान में 1 की बन्ध व्युच्छित्ति हो जाने से चौदहवें गुणस्थान में बन्ध और बन्ध व्युच्छित्ति शून्य तथा अबन्ध 120 प्रकृतियों का है। (क.दी.भा.2)

प्र.1807 मूल प्रकृति रूप ज्ञानावरणादिक कर्मों का स्थिति बन्ध कितना है?

उत्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, नाम और गोत्र का बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, मोहनीय का सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम (जिसमें दर्शनमोहनीय रूप मिथ्यात्व का सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम और चारित्र मोहनीय का चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है), आयु कर्म का तैंतीस सागरोपम, असातावेदनीय का तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम और सातावेदनीय का पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

प्र.1808 मूल प्रकृति रूप ज्ञानावरणादिक कर्मों का जघन्य स्थिति बंध कितना है?

उत्तर वेदनीय कर्म का जघन्य स्थिति बन्ध बारह मुहूर्त, नामकर्म और गोत्र कर्म का आठ मुहूर्त तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म का जघन्य स्थिति बन्ध अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

प्र.1809 कर्म प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध कब होता है?

उत्तर कर्म प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध कर्म व्युच्छित्ति के काल में होता है। अर्थात् जहाँ कर्म व्युच्छित्ति हो वहीं होता है।

प्र.1810 कर्मबंध में उत्कृष्ट और जघन्य रूप होने का कारण क्या है?

उत्तर उत्कृष्ट संक्लेश रूप परिणामों से तीन शुभ (देव, मनुष्य, तिर्यञ्च) आयु के बिना अन्य 117 प्रकृतियों का यथासंभव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और मंद कषाय रूप परिणामों से जघन्य स्थिति बन्ध होता है।

प्र.1811 देवायु, आहारक, आहारक मिश्र और तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध कब किस जीव को होता है?

उत्तर देवायु का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध, सप्तम गुणस्थान में चढ़ने के सन्मुख प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाला करता है। आहारक, आहारक मिश्र का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध, छठे गुणस्थान में उतरने से सन्मुख सप्तम गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त संयत करता है। और तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध नरक जाने के लिए सन्मुख चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि करता है। तीर्थंकर, आहारकाद्विक और देवायु इन चार प्रकृतियों के सिवाय अन्य 116 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है।

प्र.1812 आबाधा का लक्षण क्या है?

उत्तर कर्म रूप होकर आया कार्मण वर्गणा रूपी द्रव्य जब तक उदय या उदीरणा रूप न हो तब तक के काल को आबाधा कहते हैं।

प्र.1813 आबाधा कितने प्रकार की होती है?

उत्तर आबाधा उदय और उदीरणा की अपेक्षा दो प्रकार की होती है।

प्र.1814 उदय की अपेक्षा किस कर्म की कितनी आबाधा होती है?

उत्तर उदय की अपेक्षा, आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की आबाधा, एक कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति पर सौ वर्ष की होती है। इसी अनुपात से सर्व स्थितियों की आबाधा समझना चाहिए। जैसे- जिसकर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर की बँधी है उसकी आबाधा सात हजार वर्ष की होगी अर्थात् इतने समय तक वे कर्म परमाणु उदय में नहीं आवेंगे। जिन कर्मों की स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण बंधी है उनकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। आयु कर्म की आबाधा एक करोड़ पूर्व के तृतीय भाग से लेकर असंक्षेपाद्धा अर्थात् आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण काल तक होती है।

प्र.1815 उदीरणा की अपेक्षा किस कर्म की कितनी आबाधा होती है?

उत्तर उदीरणा की अपेक्षा सब कर्मों की आबाधा एक आवली प्रमाण होती है। (बंधी हुई कर्म प्रकृति की एक अचलावली के बाद उदीरणा हो सकती है।)

प्र.1816 बद्धमान और भुज्यमान आयु में उदीरणा सम्बन्धी क्या व्यवस्था है?

उत्तर बद्धमान अर्थात् परभव सम्बन्धी आयु की उदीरणा नहीं होती है, मात्र भुज्यमान अर्थात् वर्तमान आयु की उदीरणा हो सकती है।

प्र.1817 कर्म बन्ध के काल में ज्ञानावरणादि कर्मों में विभाग किस तरह होता है?

उत्तर आठ कर्मों में सबसे अधिक कर्म-प्रदेश वेदनीय कर्म को, उससे कम मोहनीय को, उससे कम परन्तु परस्पर में समान ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तराय को, उससे कम परन्तु परस्पर में समान नाम और

गोत्र को तथा आयु-कर्म को सबसे कम कर्म प्रदेश प्राप्त होते हैं।

प्र.1818 प्रदेश बन्ध का प्रमुख कारण क्या है और वह कितने भेद रूप है?

उत्तर प्रदेश-बन्ध का प्रमुख कारण योग स्थान है जो कि आत्म-प्रदेशों के परिस्पन्द के भेद से तीन प्रकार का है। जैसे-

1. उपपाद योगस्थान- नवीन पर्याय के प्रथम समय में स्थित जीव के उपपाद योग स्थान होता है।

2. एकान्तानुवृद्धि योगस्थान- पर्याय धारण करने के दूसरे समय से लेकर शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने तक नियम से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ एकान्तानुवृद्धि योग स्थान होता है।

3. परिणाम योगस्थान- शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर जीवन पर्यन्त परिणाम योगस्थान होता है। इसमें आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द कभी कम और कभी बढ़ता रहता है। इसका दूसरा नाम घोटमान-योग भी है।

प्र.1819 उत्कृष्ट और जघन्य-प्रदेश-बन्ध की योग्यता रूप सामग्री क्या है?

उत्तर उत्कृष्ट योगों सहित, संज्ञी, पर्याप्तक और अल्पप्रकृतियों का बन्ध करने वाला उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध को करता है और इससे विपरीत जीव जघन्य प्रदेश बन्ध को करता है।

प्र.1820 ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर आयु कर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध छह गुणस्थानों के अनन्तर सप्तम गुणस्थान में रहने वाला करता है। मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध नवम गुणस्थानवर्ती करता है और शेष छह कर्मों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध उत्कृष्ट योगों को धारण करने वाला सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान वाला जीव करता है।

प्र.1821 अष्टकर्मों का जघन्य प्रदेश बन्ध किस जीव के कब होता है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपनी पर्याय के प्रथम समय में जघन्ययोग के द्वारा आयु के सिवाय शेष सात कर्मों का जघन्य प्रदेश-बन्ध करता है। आगे चलकर आयु का बन्ध होने पर इसी जीव के आयु कर्म का भी जघन्य प्रदेश बन्ध होता है। (क.दी.,भा.2)

गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों संबंधी बंध, अबंध, व्युच्छित्ति

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध व्युच्छिति	व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	117	3	16	मोहनीय कर्म की 2, आयु कर्म की 1, नाम कर्म की 13 = कुल 16
सासादन	101	19	25	दर्शनावरण कर्म की 3, मोहनीय कर्म की 5, आयु कर्म की 1, नाम कर्म की 15, गोत्र कर्म की 1 = कुल 25
मिश्र	74	46	0	
अविरत सम्यग्दृष्टि	77	43	10	मोहनीय कर्म की 4, आयुकर्म की 1, नाम कर्म की 5 = कुल 10
संयमासंयम	67	53	4	मोहनीय कर्म की 4 = कुल 4
प्रमत्त संयत	63	57	6	वेदनीय कर्म की 1, मोहनीय कर्म की 2, नाम कर्म की 3 = कुल 6
अप्रमत्त विरत	59	61	1	आयु कर्म की 1 = कुल 1
अपूर्वकरण	58	62	36	दर्शनावरण कर्म की 2, मोहनीय कर्म की 4, नाम कर्म की 30 = कुल 36
अनिवृत्तिकरण	22	98	5	मोहनीय कर्म की 5 = कुल 5
सूक्ष्म साम्पराय	17	103	16	ज्ञानावरण कर्म की 5, दर्शनावरण कर्म की 4, नाम कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1, अंतराय कर्म की 5 = कुल 16
उपशांत मोह	1	119	0	
क्षीण मोह	1	119	0	
सयोग केवली	1	119	1	वेदनीय कर्म की 1 = कुल 1
अयोग केवली	0	120	0	

प्र.1822 कर्म-उदय किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के अनुसार कर्मों के फल का प्राप्त होना उदय है या स्थिति का क्षय होना या कर्म स्कन्धों का अपना फल देकर झड़ जाना उदय कहलाता है।

प्र.1823 उदय त्रिभङ्गी किसे कहते हैं?

उत्तर उदय व्युच्छित्ति, उदय और अनुदय को उदय त्रिभङ्गी कहते हैं।

प्र.1824 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का अनुदय होता है?

उत्तर पहले गुण स्थान में 5, दूसरे गुण स्थान में 11, तीसरे गुणस्थान में 22, चौथे गुणस्थान में 18, पाँचवें गुणस्थान में 35, छठे गुणस्थान में 41, सातवें गुणस्थान में 46, आठवें गुण स्थान में 50, नौवें गुणस्थान में 56, दसवें गुणस्थान में 62, ग्यारहवें गुणस्थान में 63, बारहवें गुणस्थान में 65, तेरहवें गुणस्थान में 80 और चौदहवें गुणस्थान में 110 प्रकृतियों का अनुदय होता है।

प्र.1825 किस कर्म-प्रकृति का उदय किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग का उदय छठे गुणस्थान में, तीर्थंकर-प्रकृति का केवली के तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में, सम्यङ्मिथ्यात्व का तृतीय गुणस्थान में, सम्यक्त्व प्रकृति का वेदक (क्षयोपशमिक) सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान तक, आनुपूर्वी का उदय प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थान में, अनन्तानुबन्धी का उदय प्रथम, द्वितीय गुणस्थान में, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय प्रथम से पञ्चम गुणस्थान तक, संज्वलन क्रोध, मान, माया का उदय प्रथम से नवम गुणस्थान तक और संज्वलन लोभ का प्रथम से लेकर दसम गुणस्थान तक, नरकायु और देवायु का उदय प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक, तिर्यगायु का उदय प्रथम से लेकर पञ्चम गुणस्थान तक, और मनुष्यायु का उदय प्रारम्भ (प्रथम) से लेकर सभी गुणस्थानों में होता है। सासादन गुणस्थान में मरा हुआ जीव नरक गति में उत्पन्न नहीं होता अतः उस जीव के नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होता। शेष कर्म प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपनी-अपनी उदय व्युच्छित्ति के अन्तिम समय तक होता है।

प्र.1826 किस गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर अभेद विवक्षा से मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में क्रम से पहले गुणस्थान में 10, दूसरे गुणस्थान में 4, तीसरे गुणस्थान में 1, चौथे गुणस्थान में 17, पांचवें गुणस्थान में 8, छठे गुणस्थान में 5, सातवें गुणस्थान में 4, आठवें गुणस्थान में 6, नौवें गुणस्थान में 6, दसवें गुणस्थान में 1, ग्यारहवें गुणस्थान में 2, बारहवें गुणस्थान में (2,14), तेरहवें गुणस्थान में 29 और चौदहवें गुणस्थान में 13 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1827 षट्खण्डागम ग्रन्थानुसार (भूतबली आचार्यानुसार) किस गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर षटखण्डागम ग्रन्थानुसार (भूतबली आचार्यानुसार) मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से पहले गुणस्थान में 5, दूसरे गुणस्थान में 9, तीसरे गुणस्थान में 1, चौथे गुणस्थान में 17, पाँचवें गुणस्थान में 8, छठे गुणस्थान में 5, सातवें गुणस्थान में 4, आठवें गुणस्थान में 6, नौवें गुणस्थान में 6, दसवें गुणस्थान में 1, ग्यारहवें गुणस्थान में 2, बारहवें गुणस्थान में 16, तेरहवें गुणस्थान में 30 और चौदहवें गुणस्थान में 12 कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है (क.दी. भा.2)

प्र.1828 किन्हीं आचार्यों और भूतबली आचार्य इन दोनों पक्षों में कर्मों की उदय व्युच्छित्ति सम्बन्धी विवक्षा भेद क्या है?

उत्तर किन्हीं आचार्यों के मत से एकेन्द्रिय और विकलत्रय में सासादन गुणस्थान नहीं होता, अतः एकेन्द्रिय, स्थावर और द्वीन्द्रियादि तीन जातियाँ, इन 5 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में ही हो जाती है। फलस्वरूप पहले गुणस्थान में 10 और दूसरे गुणस्थान में 4 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। बारहवें गुणस्थान के उपान्त्य समय में 2 की और अन्त्य समय में 14 की, दोनों को मिलाकर 16 की व्युच्छित्ति कही गई है। चौदहवें गुणस्थान में परस्पर विरोधी होने से साता-असाता वेदनीय दोनों का एक साथ उदय नहीं होता अतः 1 की व्युच्छित्ति तेरहवें में और 1 की चौदहवें में मानी गई है परन्तु नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का उदय संभव है, अतः 29, 13 अथवा 30, 12 का विकल्प बन जाता है। यहाँ इस कृति में भूतबली आचार्य के मतानुसार उदय त्रिभंगी का वर्णन किया गया है।

प्र.1829 मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 5 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन पाँच प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। अर्थात् द्वितीयादि गुणस्थानों में इनका उदय नहीं रहता।

प्र.1830 सासादन गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 9 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रिय-जाति और चतुरिन्द्रय जाति, इन नौ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1831 सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली एक प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में सम्यङ्मिथ्यात्व इस एक प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1832 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होनी वाली 17 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति इन 17 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1833 देश-संयत गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 8 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर देश-संयत गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, तिर्यगायु, उद्योत, नीच गोत्र और

तिर्यग्गति इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1834 प्रमत्त-विरत गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 5 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर प्रमत्त-विरत गुणस्थान में आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा और प्रचलाप्रचला इन पाँच प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1835 अप्रमत्त-विरत गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 4 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अप्रमत्त-विरत गुणस्थान में सम्यक्त्व-प्रकृति, अर्धनाराच-संहनन, कीलक-संहनन और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, इन चार प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1836 अपूर्वकरण गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 6 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अपूर्वकरण गुणस्थान में हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1837 अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 6 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध-मान-माया इन छह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1838 सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली एक प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में संज्वलन लोभ, इस एक प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1839 उपशांत मोह गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 2 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर उपशांत मोह गुणस्थान में वज्रनाराच और नाराच संहनन, इन दो प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1840 क्षीण मोह गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 16 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर क्षीण मोह गुणस्थान में निद्रा और प्रचला इन दो की उपान्त्य समय में तथा पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण इन 14 की अन्तिम समय में इस तरह दोनों मिलाकर 16 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1841 सयोग केवली गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 30 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सयोग केवली गुणस्थान में वेदनीयकर्म की साता-असाता वेदनीय में से कोई एक, वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रादि 6 संस्थान (समचतुरस्र, न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, वामन, कुब्जक और हुण्डक), वर्णादिचार (वर्ण, रस, गंध और स्पर्श), अगुरुलघु, उपघात, परघात, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर इन तीस प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती हैं।

प्र.1842 अयोग केवली गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 12 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अयोग केवली गुणस्थान में साता-असाता वेदनीय में से कोई एक प्रकृति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति,

सुभग, त्रस, बादर, श्वासोच्छ्वास, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और मनुष्यायु इन बारह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1843 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 117, दूसरे गुणस्थान में 111, तीसरे गुणस्थान में 100, चौथे गुणस्थान में 104, पाँचवें गुणस्थान में 87, छठे गुणस्थान में 81, सातवें गुणस्थान में 76, आठवें गुणस्थान में 72, नौवें गुणस्थान में 66, दसवें गुणस्थान में 60, ग्यारहवें गुणस्थान में 59, बारहवें गुणस्थान में 57, तेरहवें गुणस्थान में 42 और चौदहवें गुणस्थान में 12 प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र.1844 पूर्व-पूर्व के गुणस्थानों की अपेक्षा आगे-आगे के गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों के उदय, उदय व्युच्छित्ति और अनुदय सम्बन्धी संख्या रूप गणित निकालने की विधि क्या है?

उत्तर उदय योग्य प्रकृतियाँ कुल 122 हैं। उनमें से प्रथम गुणस्थान में सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग और तीर्थंकर इन पाँच प्रकृतियों का उदय न होने से 117 का उदय है। उपर्युक्त 5 का अनुदय है और 5 की उदय व्युच्छित्ति है। प्रथम गुणस्थान के उदय 117 में उदय व्युच्छित्ति की 5 तथा नरकगत्यानुपूर्वी को घटाने से द्वितीय गुणस्थान में उदय 111 का है। उदय व्युच्छित्ति की 5 और अनुदय की पाँच ऐसे 10 प्रकृतियों में नरकगत्यानुपूर्वी के मिल जाने से अनुदय 11 का और उदय व्युच्छित्ति 9 की है। सासादन की उदय योग्य 111 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 9 प्रकृतियाँ घटाने से 102 रहीं, परन्तु तृतीय गुणस्थान में मृत्यु न होने से किसी भी आनुपूर्वी का उदय नहीं रहता। नरक गत्यानुपूर्वी पहले से घटी हुई है अतः 3 आनुपूर्वियों के घटाने से 99 रहीं उनमें सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति के मिल जाने से तृतीय गुणस्थान में उदय 100 का है। पिछले अनुदय की 11 और उदय व्युच्छित्ति की 9 प्रकृतियाँ मिलाने से 20 हुईं उसमें 3 आनुपूर्वी मिलाने और 1 सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति के घटाने से तृतीय गुणस्थान में अनुदय 22 का है तथा उदय व्युच्छित्ति 1 की है। तृतीय गुणस्थान की उदय योग्य 100 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति घटाने से 99 रहीं। इनमें आनुपूर्वी की 4 तथा सम्यक्त्व प्रकृति के मिलाने से चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियाँ है। पिछले अनुदय की 22 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति मिलाने से 23 हुईं, उनमें से 4 आनुपूर्वी और 1 सम्यक्त्व प्रकृति के घटाने से चतुर्थ गुणस्थान में अनुदय 18 का है और उदय व्युच्छित्ति 17 की है। चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 17 प्रकृतियाँ घटा देने से पञ्चम गुणस्थान में उदय योग्य 87 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 18 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 17 प्रकृतियाँ मिल जाने से पञ्चम गुणस्थान में अनुदय 35 का और उदय व्युच्छित्ति 8 की है। पंचम गुणस्थान की उदय योग्य 87 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 8 प्रकृतियाँ घटाने तथा आहारक युगल के मिलाने से छठे गुणस्थान में उदय योग्य 81 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 35 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 8 प्रकृतियाँ मिलाने और आहारक युगल के घटाने से छठे

गुणस्थान में अनुदययोग्य 41 प्रकृतियाँ हैं तथा उदय व्युच्छित्ति 5 की है। छठे गुणस्थान के उदय योग्य 81 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 5 प्रकृतियाँ कम होने से सप्तम गुणस्थान में उदय योग्य 76 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 41 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 5 प्रकृतियाँ मिलाने से सप्तम गुणस्थान में अनुदय योग्य 46 प्रकृतियाँ हैं तथा व्युच्छित्ति 4 की है। सप्तम गुणस्थान की उदय योग्य 76 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 4 प्रकृतियाँ कम कर देने से अष्टम गुणस्थान में 72 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। पिछले अनुदय की 46 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 4 प्रकृतियाँ मिल जाने से अष्टम गुणस्थान में अनुदय योग्य 50 प्रकृतियाँ हैं और 6 की उदय व्युच्छित्ति है। अष्टम गुणस्थान की उदय योग्य 72 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 6 प्रकृतियाँ कम कर देने से नवम गुणस्थान में उदय योग्य 66 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 50 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 6 मिला देने से नवम गुणस्थान में अनुदय योग्य 56 प्रकृतियाँ होती हैं और 6 की उदय व्युच्छित्ति है। नवम गुणस्थान की उदय योग्य प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 6 प्रकृतियाँ कम हो जाने से दशम गुणस्थान में उदय योग्य 60 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 56 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 6 प्रकृतियाँ मिलाने से दशम गुणस्थान में 62 प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और 1 की उदय व्युच्छित्ति। दशम गुणस्थान की उदय योग्य 60 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति कम हो जाने से ग्यारहवें गुणस्थान में उदय योग्य 59 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 62 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति मिल जाने से ग्यारहवें गुणस्थान में 63 प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और 2 की उदय व्युच्छित्ति है। ग्यारहवें गुणस्थान की उदय योग्य 59 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 2 प्रकृतियाँ कम कर देने से बारहवें गुणस्थान में उदय योग्य 57 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 63 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 2 प्रकृतियाँ मिल जाने से बारहवें गुणस्थान में 65 प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और 16 की उदय व्युच्छित्ति है। बारहवें गुणस्थान की उदय योग्य 57 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 16 प्रकृतियाँ कम हो जाने और 1 तीर्थंकर प्रकृति के मिल जाने से तेरहवें गुणस्थान में 42 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। पिछले अनुदय की 65 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 16 प्रकृतियों के मिलाने और 1 तीर्थंकर प्रकृति के घटाने से तेरहवें गुणस्थान में 80 प्रकृतियों का अनुदय है तथा 30 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति है। तेरहवें गुणस्थान की उदय योग्य 42 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 30 प्रकृतियाँ कम करने से चौदहवें गुणस्थान में उदय योग्य 12 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 80 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 30 प्रकृतियाँ मिलाने से चौदहवें गुणस्थान में अनुदय योग्य 110 प्रकृतियाँ हैं और 12 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति है। इस तरह उदय त्रिभंगी निकालने की विधि समझना चाहिए।

गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों सम्बन्धी उदय, अनुदय, उदय व्युच्छित्ति

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय व्युच्छित्ति	व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	117	5	5	मोहनीय कर्म की 1, नामकर्म की 4 = कुल 5
सासादन	111	11	9	मोहनीय कर्म की 4, नामकर्म की 5 = कुल 9
मिश्र	100	22	1	मोहनीय कर्म 1 = कुल 1
अविरत सम्यग्दृष्टि	104	18	17	मोहनीय कर्म की 4, आयुकर्म की 2, नाम कर्म की 11 = कुल 17
संयमासंयम	87	35	8	मोहनीय कर्म की 4, नामकर्म की 2, आयु कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1 = कुल 8
प्रमत्त संयत	81	41	5	दर्शनावरण कर्म की 3, नामकर्म की 2 = कुल 5
अप्रमत्त विरत	76	46	4	मोहनीय कर्म की 1, नामकर्म की 3 = कुल 4
अपूर्वकरण	72	50	6	मोहनीय कर्म की 6 = कुल 6
अनिवृत्तिकरण	66	56	6	मोहनीय कर्म की 6 = कुल 6
सूक्ष्मसाम्पराय	60	62	1	मोहनीय कर्म की 1 = कुल 1
उपशांतमोह	59	63	2	नामकर्म की 2 = कुल 2
क्षीणमोह	57	65	16	ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 6, अंतराय की 5 = कुल 16
सयोग केवली	42	80	30	वेदनीय की 1, नाम कर्म की 29 = कुल30
अयोग केवली	12	110	12	वेदनीय कर्म की 1, नाम कर्म की 9, आयु कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1 = कुल 12

प्र.1845 कर्मों के उदय और उदीरणा में क्या अन्तर है ?

उत्तर आबाधा काल (निरन्तरता का काल) पूर्ण होने पर क्रमशः कर्मों का फल प्राप्त होना उदय कहलाता है और विशिष्ट कारणों से आबाधा काल के पूर्व ही कर्मों का उदय में आ जाना अर्थात् फल मिलने लग जाना उदीरणा कहलाती है।

प्र.1846 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 5, दूसरे गुणस्थान में 9, तीसरे गुणस्थान में 1, चौथे गुणस्थान में 17, पाँचवें गुणस्थान में 8, छठे गुणस्थान में 8, सातवें गुणस्थान में 4, आठवें गुणस्थान में 6, नौवें गुणस्थान में 6,

दसवें गुणस्थान में 1, ग्यारहवें गुणस्थान में 2, बारहवें गुणस्थान में 16 और तेरहवें गुणस्थान में 39 प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1847 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों की उदीरणा होती है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 117, दूसरे गुणस्थान में 111, तीसरे गुणस्थान में 100, चौथे गुणस्थान में 104, पाँचवें गुणस्थान में 87, छठे गुणस्थान में 81, सातवें गुणस्थान में 73, आठवें गुणस्थान 69, नौवें गुणस्थान में 63, दसवें गुणस्थान में 57, ग्यारहवें गुणस्थान में 56, बारहवें गुणस्थान में 54, और तेरहवें गुणस्थान में 39 प्रकृतियों की उदीरणा होती है।

प्र.1848 मूल कर्म प्रकृतियों का बंध कौन-कौन-से गुणस्थानों तक होता है?

उत्तर ज्ञानवरणीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक, दर्शनावरणीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक, वेदनीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक, मोहनीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक, आयुकर्म का बंध पहले गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक, नामकर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक, गोत्रकर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक और अन्तराय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.1849 मूल कर्म प्रकृतियों का उदय कौन-कौन-से गुणस्थानों तक होता है?

उत्तर ज्ञानावरणीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। दर्शनावरणीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। वेदनीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। मोहनीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है। आयुकर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। नाम कर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। गोत्र कर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। अंतराय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है।

गुणस्थानों में उदीरणा व्युछित्ति, उदीरणा और अनुदीरणा का कोष्टक

उदीरणा योग्य प्रकृतियाँ 122

क्र.	गुणस्थान	अनुदीरणा	उदीरणा	उदीरणा व्युछित्ति	विवरण
1.	मिथ्यात्व	5	117	5	सामान्य उदयकोष्टक के समान
2.	सासादन	11	111	9	सामान्य उदयकोष्टक के समान
3.	मिश्र	22	100	1	सामान्य उदयकोष्टक के समान
4.	असंयत	18	104	17	सामान्य उदयकोष्टक के समान
5.	देशसयंत	35	87	8	सामान्य उदयकोष्टक के समान

6.	प्रमत्तसंयत	41 (35+8-2)	81	8	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि त्रिक साता-असातावेदनीय, मनुष्यायु
7.	अप्रमत्तसंयत	49	73	4	सामान्य उदयकोष्टक के समान
8.	अपूर्वकरण	53	69	6	सामान्य उदयकोष्टक के समान
9.	अनिवृत्तिकरण	59	63	6	सामान्य उदयकोष्टक के समान
10.	सूक्ष्मसांपराय	65	57	1	सामान्य उदयकोष्टक के समान
11.	उपशांतमोह	66	56	2	सामान्य उदयकोष्टक के समान
12.	क्षीणमोह	68	54	16	सामान्य उदयकोष्टक के समान
13.	सयोगकेवली	83 (68+16-1)	39	39	सयोग और अयोगकेवली की 30+12=42, 42 में से सात-असातावेदनीय मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को कम करना
14.	अयोग केवली	122	0	0	

प्र.1850 कर्म-सत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म बन्ध होने पर अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार कर्म-प्रदेशों का आत्म प्रदेशों के साथ संलग्न रहने को कर्म सत्व कहते हैं।

प्र.1851 कर्म-सत्व की गुणस्थानों की अपेक्षा क्या व्यवस्था है?

उत्तर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर और आहारक युगल की सत्ता एक साथ नहीं होती। द्वितीय सासादन गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति और आहारक युगल की सत्ता क्रम से भी नहीं होती और तथा तृतीय मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त प्रकृति की सत्ता वाले जीवों के उपर्युक्त गुणस्थान नहीं होंगे अर्थात् तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला एवं आहारकद्विक की सत्ता वाला क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव सासादन या मिश्र गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है।

प्र.1852 आगम में आयुबन्ध हो चुकने पर सम्यक्त्व, देशव्रत और महाव्रत प्राप्त होने की क्या व्यवस्था है?

उत्तर संसारी जीवों को चारों गतियों सम्बन्धी आयु का बन्ध होने पर सम्यग्दर्शन तो हो सकता है, परन्तु देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बन्ध होने पर उस पर्याय में अणुव्रत और महाव्रत नहीं मिल सकते। तात्पर्य यह है कि अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा भुज्यमान आयु के साथ चारों आयु की सत्ता हो सकती है। विशेष यह है कि देव और नरकगति में मनुष्य और तिर्यंच आयु का ही बन्ध होगा तथा मनुष्य और तिर्यंचों के चारों आयु सम्बन्धी बन्ध हो सकता है। नवीन आयु का बन्ध हो जाने पर एक जीव के बध्यमान और भुज्यमान के भेद से दो आयु की सत्ता हो जाती है। नवीन आयु

के बन्ध के पहले एक भुज्यमान आयु की ही सत्ता रहती है। क्षपक श्रेणी वाला जीव तद्भव मोक्षगामी होता है, अतः उसके नवीन आयु का बन्ध नहीं होता। मात्र एक भुज्यमान मनुष्यायु का और बध्यमान देवायु इन दो आयु की सत्ता होगी और अबद्धायुष्क है तो मात्र एक भुज्यमान मनुष्यायु की ही सत्ता होगी। क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर्म भूमिज मनुष्य को चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान तक होती है और उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों का क्षय हो जाता है अतः इनकी सत्ता नहीं होती।

प्र.1853 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी कर्म प्रकृतियों की सत्ता होती है?

उत्तर नाना (अनेक) जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में 148 प्रकृतियों की सत्ता है। सासादन गुणस्थान में तीर्थंकर और आहाद्वय की सत्ता न होने से 145 की सत्ता है। मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति न होने से एवं अनन्तानुबन्धी आदि सात प्रकृतियों की उपशम रूप सत्ता होने से 147 की सत्ता है। चतुर्थ असंत सम्यग्दृष्टि पञ्चम देशव्रत गुणस्थान में नरकायु की सत्ता न होने से 147 की सत्ता है। प्रमत्तविरत नामक छठे गुणस्थान में नरक और तिर्यञ्च आयु की सत्ता न होने से 146 की सत्ता है। इसी प्रकार अप्रमत्त विरत नामक सप्तम गुणस्थान में भी 146 की सत्ता है। इसी प्रकार अप्रमत्त विरत नामक सप्तम गुणस्थान तक सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धी आदि सप्त प्रकृतियों का अभाव होने से 141 की सत्ता है। अष्टम गुणस्थान में क्षपक श्रेणी वाले के उपर्युक्त सात प्रकृतियों के साथ नरक, तिर्यंच और देवायु का भी अभाव होता है अतः 138 की सत्ता है। अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान के आरम्भ में भी 138 की सत्ता रहती है। पश्चात् क्षपक श्रेणी वाले मनुष्य के नौ भागों में क्रम से 16, 8, 1, 1, 6, 1, 1, 1 और 1 प्रकृति का क्षय होने से 36 प्रकृतियों का क्षय हो जाता है अतः दसवें गुणस्थान में 102 की सत्ता होती है। दसवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म लोभ का भी क्षय हो जाने से बारहवें गुणस्थान में 101 की सत्ता रहती है। बारहवें गुणस्थान में 16 की सत्त्व व्युच्छित्ति होने से तेरहवें गुणस्थान में 85 की सत्ता होती है। तेरहवें गुणस्थान में किसी प्रकृति का क्षय नहीं होता इसलिए चौदहवें गुणस्थान में भी 85 की ही सत्ता रहती है। पश्चात् उपान्त समय में 72 और अन्त समय में 13 प्रकृतियों का क्षय हो जाने से आत्मा सर्व कर्म विप्रमुक्त हो जाती है। उपशम श्रेणी वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और नवीन आयु बन्ध कर चुका है तो उसके 138 + 1 = 139 की सत्ता उपशान्तमोह गुणस्थान तक रहेगी। यदि अबद्धायुष्क है तो 138 की सत्ता होगी यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि है तो अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना होने से 142 की सत्ता रहती है।

प्र.1854 कौन-कौन-से गुणस्थानों में किन-किन कर्म-प्रकृतियों का संवर किस तरह से होता है?

उत्तर आगम में कथित चौदह गुणस्थानों में कर्मास्रव में कारण रूप मिथ्यादर्शन, असंयम (अविरति), प्रमाद, कषाय और योग इनका क्रमशः जैसे-जैसे अभाव होता है, तज्जन्य आस्रव के अभाव में (उस-उस गुणस्थान में आस्रवित होने वाले उतने-उतने कर्मों के रुकने रूप) संवर होता है।

प्र.1855 मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यादर्शन के सद्भाव में जिन प्रकृतियों का आस्रव होता है और सासादन गुणस्थान में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान में मिथ्यादर्शन के अभाव में मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, असम्प्रातासृपाटिका संहनन, नरक गति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक और साधारण शरीर इन सोलह प्रकृतियों का संवर होता है।

गुणस्थानों में कर्म प्रकृति संबंधी सत्व, असत्व, सत्व व्युच्छित्ति

गुणस्थान	**सत्व**	**असत्व**	**सत्व व्युच्छित्ति**	**व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ**
मिथ्यात्व	148	0	0	
सासादन	145	3	0	
मिश्र	147	1	0	
अविरत सम्यग्दृष्टि				
उपशम व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	148	0	1	आयु कर्म की 1 नरकायु = 1
क्षायिक सम्यक्त्वी	141	7	1	आयुकर्म की 1 नरकायु = 1
संयमासंयम				
व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	147	9	1	आयुकर्म की 1 तिर्यंचायु = 1
क्षायिक सम्यक्त्वी	140	8	1	आयुकर्म की 1 तिर्यंचायु = 1
प्रमत्तविरत				
उपशम				
व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	146	2	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	1	0	
अप्रमत्त विरत				
उपशम व क्षयोपशम				

सम्यक्त्वी	146	2	4	मोहनीय कर्म की 4 = 4
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	1	आयुकर्म की 1, देवायु =1
अपूर्वकरण				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षपक श्रेणी				
क्षायिक सम्यक्त्वी	138	10	0	
अनिवृत्तिकरण				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षपक श्रेणी	–	–	–	
क्षायिक सम्यक्त्वी	138	10	36	दर्शनावरण की 3, मोहनीय कर्म की 20, नामकर्म की 13 = कुल 36
सूक्ष्मसाम्पराय				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षपक श्रेणी				
क्षायिक सम्यक्त्वी	102	46	1	मोहनीय कर्म की 1

उपशांतमोह				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षीणमोह	101	47	16	दर्शनावरण की 6, ज्ञानावरण की 5, अंतराय कर्म की 5 = कुल 16
सयोग केवली	85	63	0	
अयोग केवली	85	63	72	नामकर्म की 70
द्विचरम समय में	85	63	72	नामकर्म की 70, वेदनीय कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1 = कुल 72
चरम समय में	13	135	13	वेदनीय कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1, आयुकर्म की 1, नामकर्म की 10 = कुल 13

अध्याय-7
गुणस्थानों में प्रकृतियों का संवर, गुणश्रेणी निर्जरादि
(गुणस्थानों में प्रकृतियों का क्षय व निर्जरा, स्थान के भेद, मोक्ष और सिद्धों के प्रकार)

प्र.1856 सासादन गुणस्थान से आगे अनन्तानुबन्धी कषाय रूप असंयम के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान से आगे अनन्तानुबन्धी कषाय रूप असंयम के अभाव में निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबंधी माया, अनन्तानुबंधी लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, तिर्यंचगति, मध्य के चार संस्थान(न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान), मध्य के चार संहनन (वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलिक संहनन), तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन पच्चीस प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1857 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से आगे अप्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया, अप्रत्याख्यानावरण लोभ; मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीर अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी इन दस प्रकृतियों का संवर होता है।

विशेष- सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान के होने पर आयुकर्म का बंध नहीं होता है।

प्र.1858 संयतासंयत गुणस्थान से आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर संयतासंयत गुणस्थान के आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1859 प्रमत्तसंयत गुणस्थान के आगे प्रमाद के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन सी हैं?

उत्तर प्रमत्तसंयत गुणस्थान से आगे प्रमाद के अभाव में असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन छः प्रकृतियों का संवर होता है।

विशेष- देवायु के बंध का आरंभ प्रमाद हेतुक भी होता है और उसके नजदीक का अप्रमाद हेतुक भी होता है। अतः इसका अभाव होने पर (सप्तम गुणस्थान से ऊपर) इसका संवर जानना चाहिए।

प्र.1860 अपूर्वकरण गुणस्थान के आगे तीव्र संज्वलन कषाय के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर

होता है, वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर तीव्र संज्वलन कषाय के अभाव में अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रारंभिक संख्येय भाग के आगे निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों का, इसके संख्येय भाग के आगे देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरससंस्थान, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, आहारक शरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगति- प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर इन तीस प्रकृतियों का तथा इसी गुणस्थान के अंतिम समय से आगे हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों का इस तरह कुल 36 प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1861 अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के आगे मध्यम संज्वलन कषाय के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर मध्यम संज्वलन कषाय के अभाव में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर संख्यात भाग से आगे पुरुष वेद और क्रोध संज्वलन इन दो प्रकृतियों का और उसके संख्यात भाग से आगे मान संज्वलन और माया संज्वलन इन दो प्रकृतियों का और अन्तिम समय में लोभ संज्वलन इस एक प्रकृति का संवर होता है।

प्र.1862 सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के आगे मन्द संज्वलन कषाय के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियों कौन-सी हैं?

उत्तर मन्द संज्वलन कषाय के अभाव में सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के आगे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इन 16 (सोलह) प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1863 योग के अभाव में उपशांतमोह (कषाय), क्षीणमोह (कषाय) और सयोग केवली इन तीन गुणस्थान के आगे कौन-सी प्रकृति का संवर होता है?

उत्तर योग के अभाव में उपशांत कषाय, क्षीण कषाय, और सयोग केवली इन तीन गुणस्थान के आगे सातावेदनीय का संवर होता है।

प्र.1864 गुणश्रेणी निर्जरा क्या है, एवं गुणश्रेणी निर्जरा में कितना कर्म-द्रव्य प्राप्त होता है?

उत्तर असंख्यात गुणित क्रम श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा होना गुणश्रेणी निर्जरा है ऐसी निर्जरा में उत्तरोत्तर गुणश्रेणी निर्जरा के लिये असंख्यात गुणा कर्म द्रव्य प्राप्त होता है।

प्र.1865 असंख्यात गुणी निर्जरा में उत्तरोत्तर काल कितना लगता है?

उत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा में आगे-आगे गुणश्रेणी का काल संख्यात गुणा हीन-हीन। अर्थात् सम्यग्दृष्टि को गुणश्रेणी निर्जरा में जो अंतर्मुहूर्त्त, काल लगता है उससे श्रावक को संख्यात गुणा हीन काल लगता है। परंतु सम्यग्दृष्टि गुणश्रेणी निर्जरा द्वारा जितने कर्मप्रदेशों की निर्जरा करता है उसकी अपेक्षा श्रावक असंख्यात गुणे कर्म परमाणुओं की निर्जरा कर लेता है।

प्र.1866 असंख्यात गुणी निर्जरा करने वाले भव्य जीवों के दस स्थान कौन-से हैं?

उत्तर परिणामों की विशुद्धि द्वारा वृद्धि को प्राप्त भव्य पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक जीव प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति के निमित्त के मिलने पर सम्यग्दृष्टि होता हुआ असंख्येयगुण कर्म निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही चारित्र मोहनीय कर्म के एक भेद अप्रत्याख्यानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्तक परिणामों की प्राप्ति के समय विशुद्धि का प्रकर्ष होने से श्रावक होता हुआ उससे असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही प्रत्याख्यानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्तक परिणामों की विशुद्धिवश विरत संज्ञा को प्राप्त होता हुआ उससे असंख्येयगुण निर्जरावाला होता है। पुनः वह ही जब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ की विसंयोजना करता है। तब परिणामों की विशुद्धि के प्रकर्षवश उससे असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही दर्शनमोहनीयत्रिक रूप तृणसमूह को भस्मसात् करता हुआ परिणामों की विशुद्धि के अतिशयवश दर्शनमोह क्षपक संज्ञा को प्राप्त होता हुआ पहले से असंख्येय-गुण निर्जरा वाला होता है। इस प्रकार वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणी पर आरोहण करने के सम्मुख होता हुआ तथा चारित्र मोहनीय के उपशम करने के लिए प्रयत्न करता हुआ विशुद्धि के प्रकर्षवश उपशमक संज्ञा का अनुभव करता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरावाला होता है। पुनः वह ही समस्त चारित्र मोहनीय के उपशमक निमित्त मिलने पर उपशान्त कषाय संज्ञा को प्राप्त होता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही चारित्र मोहनीय की क्षपणा के लिए सम्मुख होता हुआ तथा परिणामों की विशुद्धि से वृद्धि को प्राप्त होकर क्षपक संज्ञा का अनुभव करता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही समस्त चारित्र मोहनीय की क्षपणा के कारणों से प्राप्त हुये परिणामों के अभिमुख होकर क्षीणकषाय संज्ञा को प्राप्त करता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला हाता है। पुनः वह ही द्वितीय शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा घातिकर्म समूह का नाश करके जिन संज्ञा को प्राप्त होता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है।

प्र.1867 भव्य जीव के कौन से गुणस्थान में कौन-सी, कितनी प्रकृतियाँ क्षय या निर्जरा को प्राप्त होती है?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में सात प्रकृतियों का क्षय करता है। पुनः निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम वाली सोलह कर्म प्रकृतियों का अनिवृत्ति बादर साम्पराय गुणस्थान में एक साथ क्षय करता है। इसके बाद उसी गुणस्थान में आठ कषायों का क्षय करता है। पुनः वहीं पर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्रम से क्षय करता है तथा छह नोकषायों को एक ही प्रहार द्वारा गिरा देता है। तदनन्तर पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान और संज्वलन माया का वहाँ पर क्रम से अत्यन्त क्षय करता है। तथा लोभ संज्वलन, सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के अन्त में विनाश को प्राप्त होता है।

निद्रा और प्रचला क्षीणकषाय वीतराग छद्‌मस्थ गुणस्थान के उपान्त्य समय में प्रलय को प्राप्त होते हैं। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय कर्मों का उसी गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय होता है। कोई एक वेदनीय, देवगति, औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, आहारक शरीर अंगोपांग, छह संहनन, पाँच प्रशस्तवर्ण, पाँच अप्रशस्तवर्ण, दो गन्ध, पाँच प्रशस्त रस, पाँच अप्रशस्त रस, आठ स्पर्श, देवगति प्रायोग्यानूपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्‌वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र नाम वाली बहत्तर प्रकृतियों का अयोगकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय में विनाश होता है तथा कोई एक वेदनीय, मनुष्य आयु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र नाम वाली तेरह प्रकृतियों का अयोग केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में वियोग होता है।

प्र.1868 कर्म क्षय के हेतु रूप ध्यान का स्वरूप क्या है?

उत्तर ‘ध्येय-चिंतायाम्’ यह धातु ध्यान करने के अर्थ में आती है इससे ध्यान शब्द बनता है। उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्त वृत्ति का रोकना है; वह ध्यान कहलाता है, जो अंतर्मुहूर्त्त काल तक होता है।

प्र.1869 उत्तम संहनन कौन-से हैं?

उत्तर छः संहननों में से आदि के वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्र-नाराच संहनन, नाराच संहनन ये तीन उत्तम संहनन हैं।

प्र.1870 एकाग्र चिन्ता निरोध का अर्थ क्या है?

उत्तर ‘अग्र’ पद का अर्थ मुख है। जिसका एक अग्र (प्रमुख) होता है। वह एकाग्र कहलाता है। अनेक पदार्थों का अवलम्बन होने से चिन्ता परिस्पन्दप्रती अर्थात् चलायमान होती है। उसे अन्य अशेष (सभी) मुखों (विषयों) से लौटाकर (हटाकर) एक अग्र अर्थात् एक विषय में नियमित करना (लगाना या लीन करना) एकाग्र चिन्तानिरोध कहलाता है।

प्र.1871 अन्तर्मुहूर्त्त इस पद से ध्यान के विषय में क्या तात्पर्य है?

उत्तर दो घटिका प्रमाण एक मुहूर्त्त यह काल का विवक्षित परिमाण है। जो मुहूर्त्त के भीतर होता है वह अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है। ध्यान के विषय में ‘अन्तर्मुहूर्त्त काल तक’ इस पद द्वारा काल की अवधि की गयी है। इतने काल के बाद एकाग्र चिन्ता दुर्धर होती है। यही ध्यान के विषय में अन्तर्मुहूर्त्त काल का तात्पर्य है।

प्र.1872 निश्चल ध्यान हेतु सटीक उदाहरण क्या है?

उत्तर जैसे सूर्य की प्रखर किरणें धूप में पड़े कागज को जलाने में समर्थ नहीं हो पातीं, क्योंकि वे सूर्य की किरणें सब ओर बिखरी रहती हैं, वैसे ही जग-विषयों की ओर भटकता हुआ ध्यान कर्म रूपी कागज को जलाने में समर्थ नहीं हो पाता और जब प्रखर सूर्य की बिखरी किरणों को किसी दूरबीन (लेंस) द्वारा एकत्रित (कन्वर्ट) करके एक ही बिन्दु (प्वाइंट) पर थोड़ी देर तक स्थिर करके डाला जाता है तब कागज जल उठता है। उसी तरह सुयोग्य योगी (मुनि) द्वारा सारे संसार के विषयों की तरफ से अपने मन को या ध्यान को हटाकर अपने आत्म तत्त्व के विषय में अन्तर्मुहूर्त्त तक केन्द्रित किया जाता है तब ध्यान रूपी किरणों के प्रभाव से कर्म रूपी कागज जल जाता है और आत्मा केवलज्ञान या मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त कर लेती है।

प्र.1873 ध्यान से आस्रव, बंध भी होता है क्या? कारण बतलाइये?

उत्तर हाँ, क्योंकि ध्यान शुभाशुभ रूप होते हैं, जिस कारण वे शुभाशुभ रूप पुण्य-पाप कर्म के आस्रव बंध में कारण होते हैं।

प्र.1874 अशुभ और शुभ रूप ध्यान कौन-से हैं?

उत्तर आगम में 'आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान रूप चार भेद बतलाये गये हैं। जिनमें आर्त्त और रौद्र ध्यान अशुभ ध्यान हैं तथा धर्म और शुक्लध्यान शुभ ध्यान हैं।

प्र.1875 ध्यानों के भेदों में कौन-से ध्यान मोक्ष एवं कौन-से ध्यान संसार के कारण हैं?

उत्तर आगम में 'परे मोक्ष हेतू' (त.सू.9/29) द्वारा अंत के दो ध्यान अर्थात् धर्म और शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं ऐसा कहा गया है। जिससे यह अर्थ निकलता है कि प्रारम्भ के दो ध्यान आर्त्त, रौद्र ध्यान संसार के कारण हैं।

प्र.1876 आगम में 'पूर्वे संसार हेतू' अर्थात् पूर्व के आर्त्त और रौद्र रूप दो ध्यान संसार के कारण हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर पारिशेष न्याय से जो शेष रहे उनकी विधि अवशिष्ट अर्थात् शेष रहे स्थान के लिए स्वयमेव लागू हो जाया करती है अर्थात् अंत के दो शुभ ध्यानों के अलावा शेष रहे पूर्व के दो अशुभ ध्यान संसार के कारण हैं क्योंकि मोक्ष और संसार से अतिरिक्त अन्य कोई अवस्था शेष नहीं है जहाँ के लिए कारण वे अशुभ ध्यान हो सकें। तथा संक्षेप रुचि शिष्यों का ध्यान रखते हुए और शास्त्र-भार से बचने हेतु आचार्यवर्य के लिए इतना ही कथन अर्थात् परेमोक्ष हेतु कहना पर्याप्त था।

प्र.1877 आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन चारों ध्यानों का यह क्रम रखा जाना किस विशेष उद्देश्य को बतलाता है?

उत्तर आर्त्तध्यान अल्प अशुभास्रव को कराने वाला होने से मुख्यतः तिर्यञ्चायु के आस्रव का कारण है जबकि रौद्रध्यान अधिक अशुभआस्रव का कारण होने से मुख्यतः नरकायु के आस्रव का कारण है। इसी तरह धर्मध्यान अल्प कर्म निर्जरा का कारण होने मुख्यतः स्वर्ग के देवों की आयु के आस्रव का

कारण है जबकि शुक्लध्यान सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा का कारण होने से कर्मों से मुक्ति रूप निर्वाण (मोक्ष) का कारण है। इस तरह कम-ज्यादा, कम-ज्यादा कर्मों के आस्रव या मुक्ति (निर्जरा) का कारण होने से यह ध्यान के क्रम को रखे जाने का विशेष उद्देश्य जानना चाहिए।

प्र.1878 आर्त्तध्यान किसे कहते हैं और आर्त्तध्यान कितने प्रकार का है?

उत्तर दुःख रूप या मन-वचन और काय के कष्ट रूप ध्यान को आर्त्तध्यान कहते हैं। वह आर्त्तध्यान इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन और निदान रूप चार प्रकार का है।

प्र.1879 इष्ट-वियोग आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसंद पदार्थों या व्यक्तियों के दूर हो जाने पर, चोरी हो जाने पर या उन पदार्थों के समाप्त आदि हो जाने के सम्बन्ध में उनके कहाँ, कब मिलने रूप संयोग के लिए त्रिकाल संबंधी खेद, चिंता या विकलता होना इष्ट-वियोग आर्त्तध्यान कहलाता है।

प्र.1880 अनिष्ट-संयोग आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर अपसंद पदार्थों या व्यक्तियों के मिलने पर उनके या उनसे दूर हो जाने के संबंध में जो चिंतवन उत्पन्न होता है, उसे अपने वास्तविक स्वभाव से दूर रखने वाला अनिष्ट-संयोग आर्त्तध्यान कहलाता है।

प्र.1881 पीड़ा चिन्तवन आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर संसारी जीवों के मन में रोगादिक से शारीरिक कष्टों के संबंध में तथा भूख-प्यास आदि की वेदना को शमन करने के संबंध में विचार चलते हैं, उसे पीड़ा चिन्तवन ध्यान कहते हैं।

प्र.1882 निदान नामक आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर आगामी कालिक पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की मुझे प्राप्ति हो ऐसा विचार करना निदान नामक आर्त्तध्यान कहलाता है।

प्र.1883 आर्त्त-ध्यान कौन-कौन से गुणस्थानवर्ती जीवों के यथा संभव पाये जाते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत ऐसे पाँच गुणस्थानों तक वाले जीवों के सभी चारों आर्त्तध्यान यथासंभव होते रहते हैं लेकिन प्रमत्त-संयत नामक मुनियों के छठे गुणस्थान में निदान को छोड़कर इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग और पीड़ा चिंतन ये तीन आर्त्तध्यान होना संभव हैं।

प्र.1884 रौद्र-ध्यान का लक्षण क्या है और उसके कितने भेद होते हैं?

उत्तर रौद्र अर्थात् क्रूर-आशय रूप जो ध्यान होता है उसे रौद्र-ध्यान कहते हैं। जिसके हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और परिग्रहानन्द रूप चार भेद होते हैं।

प्र.1885 हिंसानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ त्रस और स्थावर जीवों का घात होता है ऐसे कार्यों में हर्षित होना या अच्छा मानना हिंसानंद नामक रौद्रध्यान कहलाता है।

प्र.1886 मृषानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जो असत्य वचन पापरूप या हिंसा के कारण होते हैं। उन्हें बोलना, बुलवाना आदि मृषानंद-ध्यान कहलाता है।

प्र.1887 चौर्यानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर दूसरों के धनादिक-हरण करने रूप मन छल व कपट वाला हो जाना चौर्यानन्द-ध्यान कहलाता है।

प्र.1888 परिग्रहानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्मा सांसारिक-भोगों की इच्छाओं का जाल फैलाकर परिग्रह का भार बढ़ाकर उसमें हर्ष मनाता है, उस मोही के ध्यान को परिग्रहानन्द रौद्र-ध्यान कहते हैं।

प्र.1889 रौद्र ध्यान कौन-कौन-से गुणस्थानों तक पाये जाते हैं?

उत्तर प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान तक सभी रौद्र ध्यान यथा संभव होते हैं।

प्र.1890 सम्यग्दृष्टि या अणुव्रतियों के जीवन में धर्मध्यान के काल से अन्य काल में यथा सम्भव होने वाले आर्त्त और रौद्र ध्यान क्या दुर्गतिकारक तीव्र या भयानक अन्याय कारक हो सकते हैं?

उत्तर नहीं! ऐसा कदापि नहीं होता अन्यथा गुणस्थान ही गिर जावेगा। लेकिन सम्यग्दर्शन और अणुव्रतों के साथ प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य रूप चार गुणों की सम्पन्नता तथा स्थूल रूप से पाँच पापों अथवा अन्याय, अनीति का त्याग होने से वे रौद्र-ध्यान तीव्र रूप में नहीं होते बल्कि अन्याय, अनीति को पराजित करने हेतु किये जाते हैं (जैसे- राम ने रावण की अन्याय, अनीति का खंडन करने युद्ध किया था)।

प्र.1891 धर्म ध्यान किसे कहते हैं? तथा धर्मध्यान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर आर्त्त और रौद्र ध्यानों से रहित समीचीन कर्त्तव्य रूप अवस्था धर्म ध्यान कहलाती है। आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय रूप से धर्म ध्यान चार प्रकार के हैं।

प्र.1892 आज्ञा विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर वीतराग (तीर्थंकर या अरिहंत भगवान) की वाणी से प्राप्त छह द्रव्य, सप्त तत्त्व और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग जो उपादेय है उसे हम आदेश मानकर श्रद्धा से आत्म-कल्याण हेतु स्वीकार करें, यही चिंतवन की विचारधारा आज्ञाविचय धर्मध्यान कहलाती है।

प्र.1893 अपाय विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रोग, भूख, प्यास, ठण्डी, गर्मी आदिक रूप शारीरिक दुःख, कटु व तिरस्कार आदि वचन रूप वाचनिक दुःख और चिंता एवं भोगाकांक्षादि रूप मानसिक दुःख से परिपूर्ण इस संसार को तथा ऐसे दुःखदायी संसार के कारण स्वरूप एकान्त, विपरीत, वैनयिक, संशय और अज्ञान रूप पंच-मिथ्यात्वों को तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पंच-पापों से यह संसारी आत्मा कब मुक्त होगी,

ऐसा चिंतवन करना अपाय विचय धर्मध्यान कहलाता है।

प्र.1894 विपाक विचय धर्मध्यान क्या कहलाता है?

उत्तर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन अष्ट-कर्मों का क्रमशः ज्ञान में बाधक बनना, दर्शन न होने देना, संसार से मोहित (आकृष्ट) करना, सुख-दुःख का अनुभव कराना, एक गति में रोके रहना, सुंदर-असुन्दर शरीर प्राप्त कराना, उच्च-नीच कुल में पैदा कराना और दान, लाभ, भोग, उपभोग में तथा शक्ति में बाधा उत्पन्न कराने रूप फल इस चतुर्गति रूप संसार में यह अज्ञानी आत्मा भोगता हुआ चौरासी लाख योनि रूप चतुर्गति-संसार में अनंतकाल तक परिभ्रमण करता रहता है इत्यादि रूप-चिंतवन करना विपाक विचय धर्म-ध्यान कहलाता है।

प्र.1895 संस्थान विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं?

उत्तर तीनों लोकों की रचना का संपूर्ण-गणित या राजू एवं योजन आदि के रूप में लोक के प्रमाण तथा द्रव्यों के स्वरूप और आत्मा के शुद्धोपयोग की प्राप्ति में निमित्त पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यानों का मुनियों के द्वारा चिंतवन किया जाना संस्थान विचय धर्मध्यान कहलाता है। पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत रूप से संस्थान विचय धर्मध्यान के चार भेद हैं।

प्र.1896 पदस्थ ध्यान क्या कहलाता है?

उत्तर वीतराग शुभ रूप णमोकार मंत्र आदि वाक्यों या पदों का ध्यान पदस्थ-ध्यान कहलाता है।

प्र.1897 पिण्डस्थ ध्यान किसे कहते हैं इसमें क्या चिंतवन करना चाहिए?

उत्तर अपनी आत्मा में लीन होकर अपने ही गुणों का ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान कहलाता है। इसमें दर्शन, सुख, चारित्रमयी अपनी-आत्मा; उत्तम क्षमा आदिक दश धर्मों से परिपूर्ण है तथा अनंत शक्तियों का खजाना है और अनन्त गुणों का धाम है, ऐसा चिंतवन किया जाता है।

प्र.1898 सम्यक् ध्यान के लिये (पिण्डस्थ ध्यान के अंतर्गत) सुयोग्य पंच धारणाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर सम्यक् ध्यान को सुयोग्य बनाने वाली (पिण्डस्थ ध्यान के अंतर्गत) पृथ्वी धारणा, अग्नि धारणा, वायु धारणा, जल धारणा और तत्त्व धारणा रूप ये पाँच धारणायें हैं।

प्र.1899 पंच धारणाओं में प्रथम पृथ्वीधारणा क्या है?

उत्तर मध्यलोक में अत्यन्त शान्त स्वरूप क्षीरसागर समान एक लाख योजन वाले जम्बूद्वीप सदृश एक हजार पँखुड़ी वाला कमल स्थित है; जिसके बीचों बीच निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊँची कर्णिका के मध्य में शुभ रूप धवल आसन पर अपनी आत्मा निग्रन्थ रूप में विराजमान है ऐसा चिंतवन करना पृथ्वीधारणा कहलाती है।

प्र.1900 अग्निधारणा का स्वरूप क्या है?

उत्तर अपनी नाभि के ऊर्ध्वमुखी स्वर्णमयी एक कमल उत्पन्न हुआ है; जिसकी सोलह पाँखुड़ियों पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे सोलह स्वर विराजित हैं और कर्णिका के ऊपर बीचों

बीच 'र्हं' अक्षर स्थित है और अपने हृदय के मध्य में अधोमुखी एक कमल शोभित है; जिसकी आठ पाँखुड़ियों पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे ये अष्टकर्म क्रमशः चिपके हुये हैं तथा बीचों-बीच कर्णिका पर स्थित 'र्हं' अक्षर अपने अंदर स्थित 'र्' अक्षर से और नाभि-कमल के मध्यवर्ती 'र्हं' के अंदर स्थित 'र्' अक्षर का संयोग एवं उन दोनों 'र्' का पारस्परिक घर्षण शुक्ल-ध्यानाग्नि को प्रकट कर देता है और हम जैसे-जैसे एक-आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय की गहराई के चिंतन में डूबते चले जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा ध्यान उत्तम से उत्तमता की ओर बढ़ता चला जाता है और ध्यान अग्नि कर्मों को शीघ्र ही अन्तमुहूर्त्त मात्र में जलाकर नष्ट कर देती है। इस तरह विचार करना 'अग्निधारणा' कहलाती है।

प्र.1901 वायुधारणा और जलधारणा क्या है?

उत्तर ध्यानाग्नि से नष्ट (भष्म) हुये अष्ट कर्मों की राख को तीव्र तूफानी गतिमान वायु उड़ाकर दूर कर देती है और मूसलाधार वर्षात् के द्वारा मेघों का जल राख के बने दाग को धोकर साफ कर डालता है; ऐसा शुभ चिन्तवन करना क्रमशः 'वायुधारणा' और 'जलधारणा' है।

प्र.1902 तत्त्वधारणा का स्वरूप क्या है?

उत्तर यह शुद्धात्मा शरीर, वस्त्र, अलंकार आदिक से भिन्न दर्शन तथा ज्ञान सहित परमतत्त्व स्वरूप है; ऐसा चिन्तवन करना 'तत्त्वधारणा' कहलाती है।

प्र.1903 रूपस्थ ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्त ज्ञानादिक का खजाना रूप आत्मा चैतन्य-गुणों के उदय और कर्म रूपी मेघ-पटलों के हटने पर, कैवल्य-अवस्था का स्वामी बन जगत् में भासित-शोभित होता है; ऐसा विचार करना 'रूपस्थ ध्यान' है।

प्र.1904 रूपातीत ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म कलंक से रहित त्रिकालों में अपनी आत्मा शुद्ध-निरंजन अकेली होती है; जो कि आनंदमयी गुणों की खान है, अमूर्त शाश्वत-परमात्मा सिद्धों के समान है; ऐसा चिंतवन करना 'रूपातीत ध्यान' कहलाता है।

प्र.1905 धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं? एवं संस्थान विचय धर्मध्यान संबंधी विशेष कथन क्या है?

उत्तर असंयत-सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ-गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त संयत नामक सातवें-गुणस्थान तक धर्मध्यान की योग्यता मानी गयी है। लेकिन संस्थान विचय धर्मध्यान हेतु विशेष कथन यह है कि यह धर्मध्यान मात्र निर्ग्रंथ दिगम्बर-आत्मध्यानी मुनियों के ही होता है।

प्र.1906 शुक्लध्यान किसे कहते हैं? इसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर रागादि विकल्प नष्ट हो जाने पर आत्मा में जो निर्विकल्प-ध्यान की प्राप्ति होती है, उसे शुक्ल-ध्यान कहते हैं। इसके चार प्रकार हैं- पृथक्त्व वितर्कवीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति

एवं व्युपरतक्रिया निवर्ति।

प्र.1907 पृथक्त्व वितर्क वीचार ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर पृथक्त्व अर्थात् भेद रूप द्रव्य, वितर्क अर्थात् श्रुत(ज्ञान) के साथ रहना और वीचार अर्थात् अर्थ (पदार्थ) व्यंजन (पर्याय) एवं योग (मन-वचन-काय) ऐसा इस प्रथम शुक्लध्यान का शाब्दिक अर्थ होता है। जब मुनिवर जीवाजीवादिक अनेक भेदों सहित द्रव्यों को मन, वचन और काय इन तीनों के द्वारा ध्याते हैं तब पृथक्त्व होता है। मुनिवर का श्रुत-ज्ञान (अंग सहित नवम पूर्व आदिक ज्ञान) जब-तक चिंतवन-मंथन वाला है तब-तक वितर्क कहलाता है। इसी तरह एक अर्थ (पदार्थ) को छोड़कर भिन्न अर्थ का ध्यान करना और एक व्यंजन (पर्याय) या द्रव्य की अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था का ध्यान करना तथाहि मन से चिन्तवन करके वचन से चिन्तवन करना; पुनः काययोग से चिन्तवन करना; इस तरह का परिवर्तन (संक्रमण) यह वीचार कहलाता है। इन अर्थ, व्यंजन और योगों के परिवर्तन से यह ध्यान तीन प्रकार रूप होता है। ऐसे ज्ञान (श्रुत) के विषय में चिंतवन-मंथन करते-करते योगी एक स्वात्मा का ध्येय बनाकर मन की एकाग्रता से पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल-ध्यान को ध्याते हैं।

प्र.1908 एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मन, वचन और काय में से किसी एक योग के द्वारा मुनिवर जब षड् द्रव्यों में से किसी एक-द्रव्य का, नव-पदार्थों में से एक पदार्थ का और व्यंजन का अर्थ-पर्यायों में से किसी एक-पर्याय का श्रुतज्ञान के चिंतन-मंथन के साथ जो वितर्क व वीचार के संक्रमण से रहित ध्यान करते हैं उसे एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान कहा जाता है।

प्र.1909 इस एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान का फल क्या है?

उत्तर इस एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान में अर्थ, व्यंजन और योगों का परिवर्तन नहीं होता अर्थात् बड़ी स्थिरता रहती है। इस ध्यान की यह विशेषता है कि इस ध्यान के अन्तर्मुहूर्त्त काल में मुनिवर अपनी आत्मा में अनादिकाल से बंधे कर्म जो कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों का क्षय (नाश) करके केवलज्ञान की प्राप्ति करके अरिहंत भगवान के पद को प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.1910 सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान का स्वरूप क्या है?

उत्तर केवली-भगवान के जीवन के अंत में होने वाला परमात्मा की उत्कृष्ट-समता देने वाला ध्यान जिसमें श्वासोच्छवास की क्रिया को छोड़कर काययोग की क्रिया भी सूक्ष्म हो जाती है वह सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति (अप्रतिपाति अर्थात् निचली अवस्था में लौटकर नहीं आने देने वाला) ध्यान कहलाता है।

विशेष- यह अवितर्क और अवीचार है अर्थात् श्रुत के अवलम्बन से रहित है अतः अवितर्क है और इसमें अर्थ, व्यंजन तथा योगों का संक्रमण नहीं है अतः अवीचार है।

प्र.1911 व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर संपूर्ण योगों या काययोग की श्वासोच्छवास सम्बन्धी क्रिया का भी निरोध हो जाने से जो अयोग-केवली-परमात्मा का ध्यान है वह व्युपरतक्रियानिवर्ति या अनिवृत्ति-निरुद्ध योग अथवा समुच्छिन्न क्रिया नामक शुक्लध्यान कहलाता है।

प्र.1912 व्युपरतक्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यान की विशेषता एवं विशिष्ट फल को दर्शाइये?

उत्तर व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्लध्यान सभी ध्यानों में अन्तिम और उत्कृष्ट होने से अनुत्तर है, परिपूर्णतया स्वच्छ-उज्ज्वल होने से शुक्ल है, यह मणि के दीप की शिखा के समान होने से पूर्णतया अविचल है। तथाहि तृतीयशुक्ल ध्यान की भाँति अवितर्क, अवीचार भी है। ऐसे उत्कृष्ट-ध्यान के द्वारा संपूर्ण कर्मों का क्षय कर आत्मा क्षणमात्र में मोक्ष-सुख को प्राप्त कर लेती है।

प्र.1913 चौदहवें गुणस्थान का काल कितना है?

उत्तर गणधर-परमेष्ठी के लिए 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', लृ' इन पंच ह्रस्व-स्वरों के उच्चारण में जितना अल्पकाल (जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त) लगता है, उतना ही इस चौदहवें-गुणस्थान का काल होता है। जिसमें अयोग केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.1914 कौन से गुणस्थान में कौन-सा शुक्ल ध्यान होता है?

उत्तर अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है। क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थान में एकत्ववितर्क-अवीचार नामक दूसरा शुक्लध्यान प्राप्त होता है। सयोग-केवली नामक तेरहवें-गुणस्थान के अंत में सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति नामक तृतीय शुक्ल-ध्यान कहा जाता है और अयोग केवली नामक चौदहवें-गुणस्थान में व्युपरतक्रिया निवर्ति नामक चतुर्थ शुक्ल-ध्यान कहा जाता है; इस अन्तिम शुक्लध्यान के उपरान्त आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्र.1915 शुक्ल ध्यानों से अष्ट कर्मों के नष्ट होने के उपरान्त सिद्धात्मा की क्या अवस्था होती है?

उत्तर अष्ट-कर्म नष्ट होते ही आत्मा केवलज्ञानी, शुद्ध, बुद्ध परमवीतरागी सिद्ध-परमात्मा बन जग में शोभा पाता है और उनकी आत्मा में अनंतज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति आदि अनंत शुभ गुण प्रकट हो जाते हैं तथा वे सिद्ध परमेष्ठी सदा के लिए कृतकृत्य हो जाते हैं।

प्र.1916 सिद्ध अवस्था प्राप्त होने के उपरान्त आत्मा पुनः संसार में अवतार (जन्म) ले सकती है क्या?

उत्तर दुग्ध से प्रकट हुआ घृत जैसे पुनः दुग्ध रूप अवस्था में लौटकर नहीं जाता हुआ अपनी सुगन्ध को चहुँ ओर फैलाता है वैसे ही संसार-समुद्र से पार हुए सिद्ध-परमात्मा अनंतकाल में कभी मोक्षपद या सिद्ध-लोक से लौटकर संसार में पुनर्जन्म नहीं धारण करते, बल्कि सदा वे लोक-शिखर पर ही सुशोभित होते हैं।

प्र.1917 सिद्ध परमात्मा सर्वज्ञ और आत्मज्ञ किस नय से कहलाते हैं?

उत्तर व्यवहार दृष्टि से विश्व के सभी पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ तथा निश्चय-दृष्टि से दर्पणवत् जिनकी आत्मा में विश्व के सभी पदार्थ युगपत् झलकने लग जाते हैं और वे आत्मज्ञ-सिद्ध-परमात्मा अपने अनन्त गुणों के आनंद में लीन रहते हैं।

प्र.1918 निर्वाण को प्राप्त हुये सिद्ध जीव किन अनुयोगों द्वारा साध्य या विभाग करने योग्य हैं?

उत्तर निर्वाण को प्राप्त हुये सिद्ध जीव क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन तेरह अनुयोगों द्वारा साध्य या विभाग करने योग्य हैं। (विशेष- यह विभाग वर्तमान और भूत का अनुग्रह करने वाले दो नयों की विवक्षा से है)

प्र.1919 क्षेत्र अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर क्षेत्र अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव की; वर्तमान को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा सिद्धि क्षेत्र में, अपने प्रदेश में या आकाश प्रदेश में सिद्धि होती है। अतीत को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा जन्म की अपेक्षा पन्द्रह कर्म भूमियों में और अपहरण की अपेक्षा मानुष क्षेत्र में सिद्धि होती है।

प्र.1920 काल अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर वर्तमान ग्राही नय की अपेक्षा एक समय में सिद्ध होता हुआ समान्य रूप से उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है। (स.सि., पृ. 446)

प्र.1921 गति अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर सिद्धगति में या मनुष्यगति में सिद्धि होती है।

प्र.1922 लिंग अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर अवेद भाव से या तीनों वेदों से सिद्धि होती है। यह कथन भाव की अपेक्षा है द्रव्य की अपेक्षा नहीं। द्रव्य की अपेक्षा पुंलिंग से ही सिद्धि होती है अथवा निर्ग्रंथ लिंग से सिद्धि होती है। भूतपूर्व नय की अपेक्षा सग्रन्थ लिंग से सिद्धि होती है।

प्र.1923 तीर्थ अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर तीर्थ सिद्धि दो प्रकार की है- तीर्थंकर सिद्ध और इतर सिद्ध। इतर दो प्रकार के हैं, कितने ही जीव तीर्थंकर के रहते हुये सिद्ध होते हैं और कितने ही जीव तीर्थंकर के अभाव में सिद्ध होते हैं।

प्र.1924 चारित्र अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य है?

उत्तर नाम रहित चारित्र से सिद्धि होती है या एक, चार और पाँच प्रकार के चारित्र से सिद्धि होती है।

प्र.1925 प्रत्येक बुद्ध अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर अपनी शक्तिरूप निमित्त से होने वाले ज्ञान के भेद से या ज्ञान स्वयं की अपेक्षा प्रत्येक बुद्ध होते हैं और जीवों की सिद्धि प्रत्येक बुद्ध सिद्धि है।

प्र.1926 बोधित बुद्ध अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर परोपदेश रूप निमित्त से होने वाले ज्ञान के भेद से बोधित बुद्ध होते हैं। ऐसे जीवों सिद्धि बोधित बुद्ध

सिद्धि है।

प्र.1927 ज्ञान अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर एक, दो, तीन और चार प्रकार के ज्ञान विशेषों से सिद्धि होती है।

प्र.1928 अवगाहना अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर आत्मप्रदेशों में व्याप्त करके रहना इसका नाम अवगाहना है। वह दो प्रकार की है- जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष है और जघन्य अवगाहना कुछ कम साढ़े तीन अरत्नि है। बीच के भेद अनेक हैं। किसी एक अवगाहना में सिद्धि होती है।

प्र.1929 अन्तर अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर सिद्धि को प्राप्त होने वाले सिद्धों का जघन्य अन्तर का अभाव दो समय है और प्रकृष्ट अन्तर का अभाव आठ समय। जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर छह माह है।

प्र.1930 संख्या अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर जघन्य रूप से एक समय में एक जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्ट रूप से एक समय में एक सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं।

प्र.1931 अल्पबहुत्व अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर क्षेत्रादि की अपेक्षा भेदों को प्राप्त जीवों की परस्पर संख्या का विशेष प्राप्त करना अल्पबहुत्व है। जैसे- वर्तमान नय की अपेक्षा सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध होने वाले जीवों का अल्पबहुत्व नहीं है। भूतपूर्व नय की अपेक्षा विचार करते हैं- क्षेत्रसिद्ध जीव दो प्रकार के हैं- जन्मसिद्ध और संहरण सिद्ध। इनमें से संहरण सिद्ध जीव सबसे अल्प हैं, इनसे जन्मसिद्ध जीव संख्यातगुणे हैं। क्षेत्रों का विभाग सात तरह का है जैसे-कर्मभूमि, अकर्मभूमि, समुद्र, द्वीप, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक। इनमें से ऊर्ध्वलोक सिद्ध सबसे कम हैं, इनसे अधोलोक सिद्ध संख्यातगुणे हैं, इनसे तिर्यग्लोक सिद्ध संख्यात गुणे हैं। समुद्र सिद्ध सबसे कम हैं, इनसे द्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं। यह सामान्य रूप से कहा है। विशेष रूप से विचार करने पर लवण समुद्र सिद्ध सबसे कम हैं, इनसे कालोदधि सिद्ध संख्यातगुणे हैं, इनसे जम्बूद्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं, इनसे धातकी खण्ड सिद्ध संख्यातगुणे हैं और इनसे पुष्करार्द्ध द्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार कालादि का विभाग करने पर भी आगम के अनुसार अल्प बहुत्व जानने योग्य है। [यहाँ जो अकर्म भूमि (भोगभूमि) सिद्ध, समुद्र सिद्ध, अधोलोक सिद्ध और ऊर्ध्वलोक सिद्ध बतलाये हैं वे संहरण और विक्रिया ऋद्धि से सम्भव मानना चाहिए।]

प्र.1932 संहरण से सिद्ध होने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर संहरण का अर्थ एक स्थल से दूसरे स्थल पर ले जाना, रख देना है। जैसे कि किसी क्षेत्र पर ध्यानस्थ मुनिराज को कोई देव या विद्याधर आदि उठाकर अन्य क्षेत्र रूप अकर्म भूमि या समुद्र आदि में रख दे या फेंक दे तो भी ध्यान लीन मुनिराज अपने कर्मों का क्षय कर वहाँ से सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं। इसी

का नाम संहरण सिद्ध या अपहरण सिद्ध भी है।

प्र.1933 विक्रिया ऋद्धि से सिद्ध किस तरह से घटित होते हैं?

उत्तर विक्रिया ऋद्धि से मुनिराज द्वारा अपना शरीर छोटा, बड़ा रूप बनाया जा सकता है। जैसे किसी मुनिराज द्वारा जब अपने शरीर का लघु रूप बनाकर मेरु पर्वत की जड़ तक नीचे तक गमन कर, मेरु की जड़ से सटकर अधोलोक में उस लघु रूप शरीर से ध्यान कर अपने सर्व कर्मों का क्षय कर दिया जाता है, तब वे अधोलोक सिद्ध कहलाते हैं और कोई मुनिराज विक्रिया ऋद्धि से लघु रूप बनाकर मेरु पर्वत की चूलिका से जो स्वर्ग विमान के बीच एक बाल का अन्तर है ऐसे ऊर्ध्व लोक में विराजित होकर अपने शुक्ल ध्यान द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेते हैं वे ऊर्ध्व लोक सिद्ध कहलाते हैं। इस तरह विक्रिया ऋद्धि से लघु रूप बनाकर सिद्ध होना घटित हो जाता है।

प्र.1934 सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान घटित क्यों नहीं होता है?

उत्तर कर्म रूपी ईंधन जिनके भष्म हो चुका है उन्हें ध्यान रूपी अग्नि की आवश्यकता ही नहीं है अतः सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान घटित नहीं होता है।

पृथ्वीधारणा

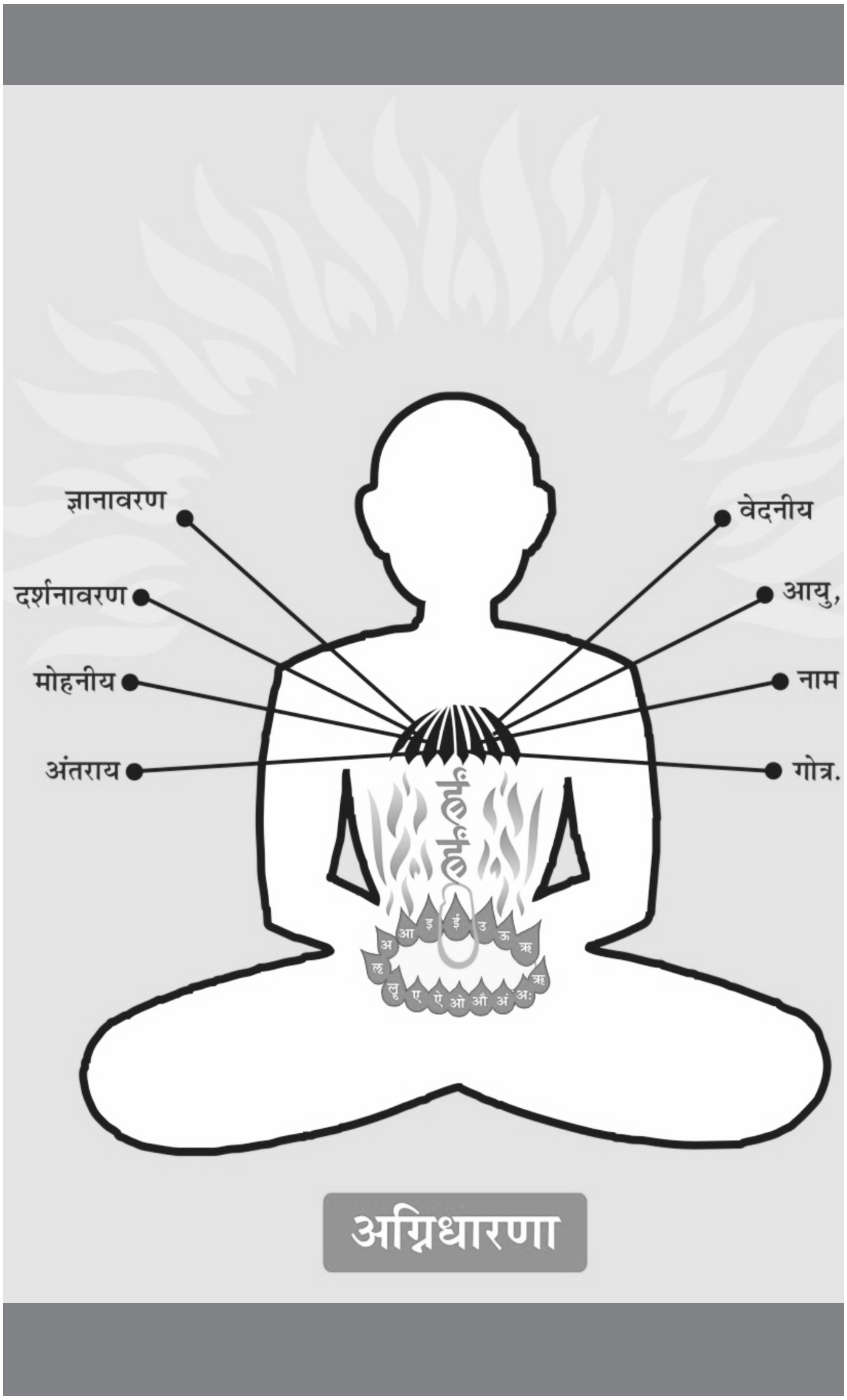
ज्ञानावरण
दर्शनावरण
मोहनीय
अंतराय
वेदनीय
आयु,
नाम
गोत्र.
अग्निधारणा

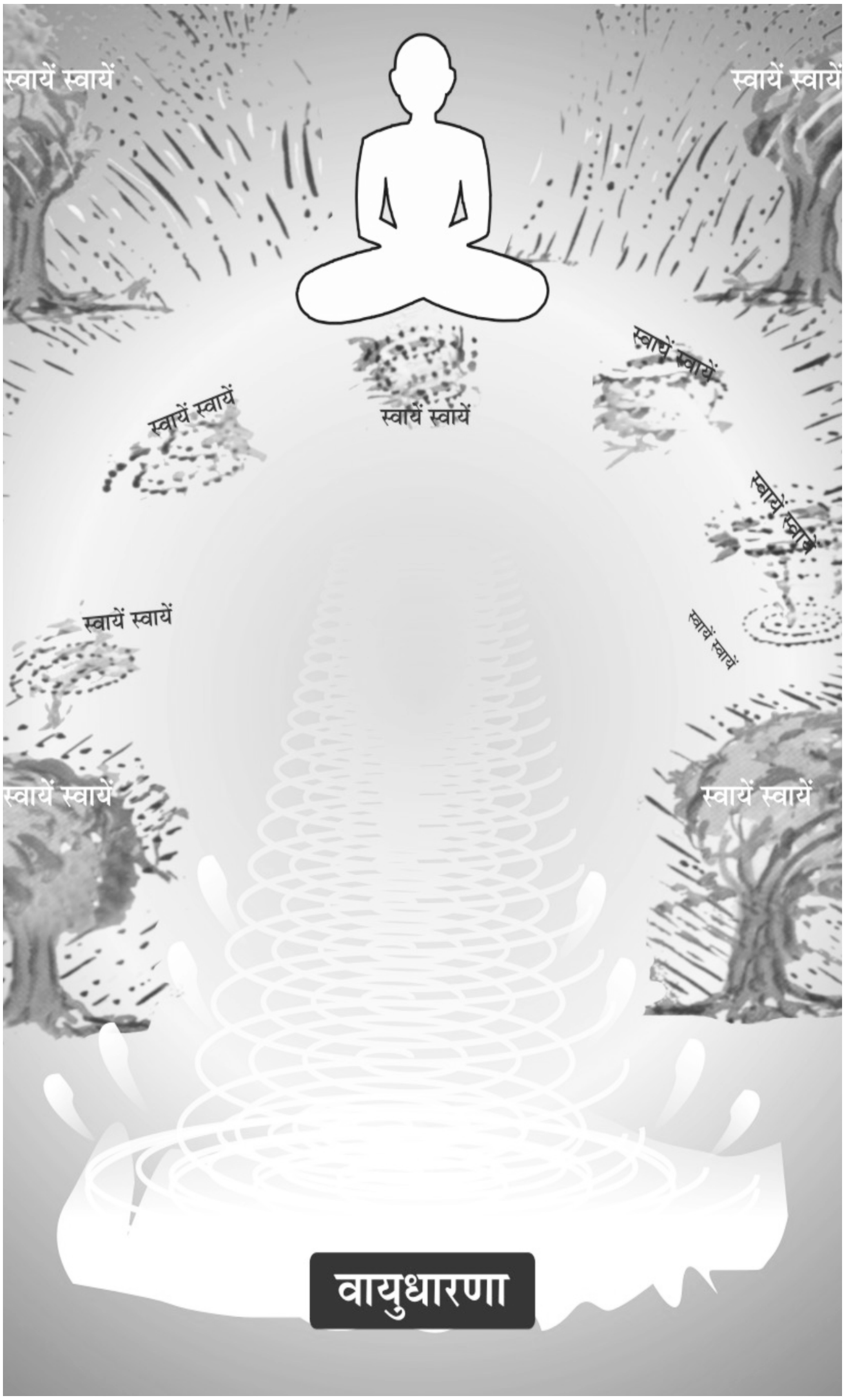
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
वायुधारणा

जलधारणा

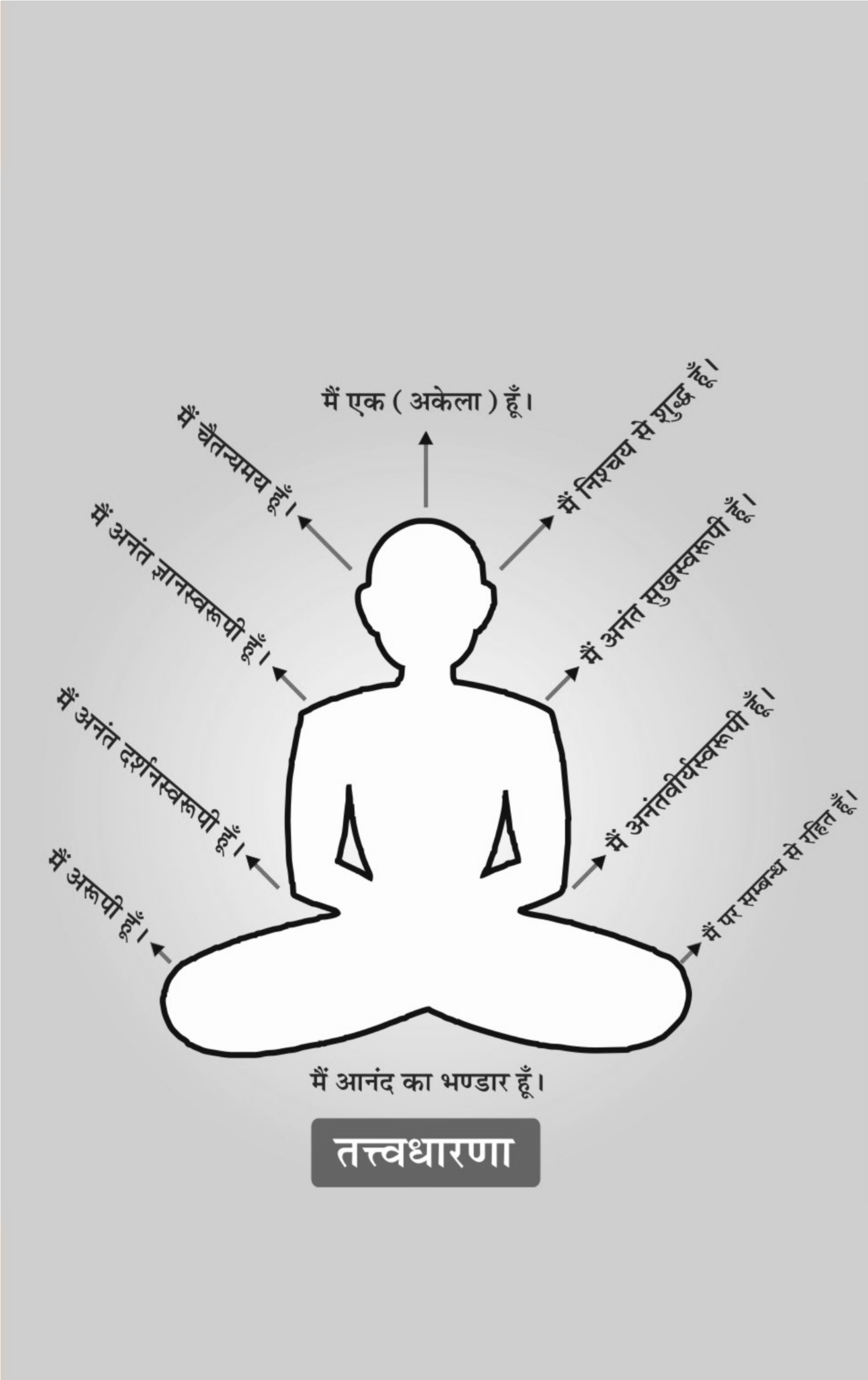
मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं अनंतवीर्यस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर सम्बन्ध से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।
तत्त्वधारणा

अध्याय-8

आगम में नय, प्रमाण, नयों के प्रकार, द्रव्य,-गुण-पर्याय

(द्रव्यादिक के भेद, उपनय और उनके भेद, अध्यात्म पद्धति में नय व उनके भेद और तीन तरह के संबन्धादि)

प्र.1935 आगम में नय किसे कहते हैं ?

उत्तर प्रमाण के द्वारा ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म अर्थात् अंश को ग्रहण कराने वाले ज्ञान को आगम में नय कहते हैं।

प्र.1936 प्रमाण किसे कहते हैं? और उसके भेद कौन-से हैं?

उत्तर सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दो भेद हैं।

प्र.1937 प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रियातीत ज्ञान को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियज ज्ञान को परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

प्र.1938 प्रत्यक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद हैं-

1. सकल प्रत्यक्ष प्रमाण और 2.विकल प्रत्यक्ष प्रमाण।

प्र.1939 सकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। (केवलज्ञान के लक्षण को देखें- आ.अनु.भाग -1, पृ.162 प्र.1183, 1185)

प्र.1940 विकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान को विकल प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। (अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का लक्षण देखिये आ.अनु. भाग-1 पृ. 162 प्र.1185)

प्र.1941 परोक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं? और उनका लक्षण क्या है?

उत्तर परोक्ष प्रमाण के दो भेद हैं- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान।

इन्द्रियों और मन की सहायता से जानने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं और मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थों को विशेष रूप से जानने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र.1942 जैनागम में आगम पद्धति से नयों के कितने भेद हैं?

उत्तर जैनागम में आगम पद्धति से नयों के मूलभूत दो भेद हैं- द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय।

द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं- नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं- ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवंभूतनय। इस प्रकार सात नय हैं।

प्र.1943 द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य ही जिस नय का प्रयोजन होता है अर्थात् जो नय द्रव्य को ही ग्रहण करना है उसे द्रव्यार्थिक नय

कहते हैं।

प्र.1944 आगम में द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुण और पर्यायों से युक्त होता है उसे आगम में द्रव्य कहते हैं।

प्र.1945 आगम में गुण किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य के साथ जो हमेशा रहते हैं; कभी भी द्रव्य से पृथक् नहीं किये जाते उन्हें आगम में गुण कहते हैं।

प्र.1946 गुणों के कितने भेद हैं?

उत्तर गुणों के दो भेद हैं- सामान्य गुण और विशेष गुण।

प्र.1947 सामान्य गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुण द्रव्यों में समान रूप से पाये जाते हैं उन्हें सामान्य गुण कहते हैं।

प्र.1948 सामान्य गुण कितने होते हैं?

उत्तर सामान्य गुण दस होते हैं- अस्तित्त्व, वस्तुत्त्व, प्रमेयत्त्व, अगुरुलघुत्त्व, प्रदेशत्त्व, चेतनत्त्व, मूर्त्तत्त्व और अमूर्त्तत्त्व।

प्र.1949 अस्तित्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर 'अस्ति' अर्थात् 'है' और ऐसे भाव को अस्तित्त्व कहते हैं। जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उस स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता और द्रव्य किसी से उत्पन्न भी नहीं होता ऐसी उस शक्ति को अस्तित्त्व गुण कहते हैं। जैसे- जीव का ज्ञान, दर्शन स्वभाव है।

प्र.1950 वस्तुत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर वस्तु का अपना जो भाव है वह वस्तुत्त्व गुण कहलाता है। अथवा जिस शक्ति के निमित्त से वस्तु में कोई न कोई अर्थ क्रिया होती है, उसे वस्तुत्त्व गुण कहते हैं। जैसे- घड़े की अर्थक्रिया जलधारण करना है।

प्र.1951 द्रव्यत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य अपने स्वभाव व विभाव रूप पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा और हो चुका है वह द्रव्यत्त्व गुण कहलाता है। अथवा जिस शक्ति के कारण द्रव्यता कायम रहकर पर्याय निरंतर बदलती रहती है उसे द्रव्यत्त्व गुण कहते हैं।

प्र.1952 प्रमेयत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी प्रमाण (ज्ञान) का विषय होता है उसे प्रमेयत्त्व गुण कहते हैं। अथवा प्रत्येक द्रव्य में ऐसी शक्ति है जिसके कारण वह किसी न किसी ज्ञान में झलकता है।

प्र.1953 अगुरुलघुत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर अगुरुलघु के भाव को अगुरुलघुत्त्व गुण कहते हैं। इस गुण के कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप, एक गुण दूसरे गुणरूप ना ही परिणमन करता और ना ही एक द्रव्य के गुण बिखर कर पृथक्-पृथक् होते हैं।

प्र.1954 प्रदेशत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य अपने कोई न कोई क्षेत्र को प्राप्त होता है उसे प्रदेशत्त्व गुण कहते हैं। अविभागी (विभाग रहित) पुद्गल, परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं।

प्र.1955 चेतनत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में स्व और पर पदार्थ का अनुभव (ज्ञान) होता है वह चेतनत्त्व गुण कहलाता है।

प्र.1956 मूर्त्तत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाता है, उसे मूर्त्तत्त्व गुण कहते हैं।

प्र.1957 अमूर्त्तत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर मूर्त्तत्त्व गुण के अभाव को अमूर्त्तत्त्व गुण कहते हैं।

प्र.1958 प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण कितने-कितने होते हैं?

उत्तर प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण आठ-आठ होते हैं जीव द्रव्य में अचेतनत्त्व और मूर्त्तत्त्व के बिना, पुद्गल द्रव्य में चेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व के बिना और धर्म आदि चार द्रव्यों के चेतनत्त्व और मूर्त्तत्त्व के बिना आठ-आठ सामान्य गुण होते हैं।

प्र.1959 विशेष गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुण सभी द्रव्यों में न पाये जाकर किसी विशेष द्रव्य में पाये जाते हैं वे विशेष गुण कहलाते हैं।

प्र.1960 विशेषगुण कितने होते हैं?

उत्तर विशेषगुण 16 होते हैं- ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, गतिहेतुत्त्व, स्थितिहेतुत्त्व, अवगाहनहेतुत्त्व, वर्तनाहेतुत्त्व, चेतनत्त्व, अचेतनत्त्व, मूर्त्तत्त्व और अमूर्त्तत्त्व।

प्र.1961 प्रत्येक द्रव्य में विशेषगुण कितने-कितने होते हैं?

उत्तर जीव द्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये छह गुण पाये जाते हैं। पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अचेतनत्त्व और मूर्त्तत्त्व ये छह गुण पाये जाते हैं। धर्म द्रव्य में गति हेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन गुण पाये जाते हैं। अधर्म द्रव्य में स्थितिहेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन गुण पाये जाते हैं। आकाश द्रव्य में अवगाहनहेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन गुण पाये जाते हैं। काल द्रव्य में वर्तनाहेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

प्र.1962 चेतनत्त्व, अचेतनत्त्व, मूर्त्तत्त्व एवं अमूर्त्तत्त्व इन चार गुणों को सामान्य एवं विशेष गुणों में क्यों लिया है?

उत्तर स्वजाति की अपेक्षा से ये सामान्य गुणों में लिये गये हैं किन्तु विजाति की अपेक्षा से ये ही चार गुण विशेष गुणों में लिये जाते हैं। जैसे- चेतनत्त्व सभी जीवों में पाया जाता है इसलिए सामान्य गुण कहलाता है किन्तु यही चेतनत्त्व पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों में नहीं पाया जाता है इसलिए विशेष गुण

कहलाता है।

प्र.1963 जैनागम में पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य और गुणों के विकार को अर्थात् परिणमन को जैनागम में पर्याय कहते हैं।

प्र.1964 पर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर पर्यायें दो प्रकार की होती हैं-

1. अर्थ पर्याय और 2. व्यंजन पर्याय।

प्र.1965 अर्थ पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर जो पर्याय अतिसूक्ष्म होती है, क्षण-क्षण में नाश को प्राप्त होती है और वचनों के द्वारा जो कही नहीं जाती है उसे अर्थ पर्याय कहते हैं।

प्र.1966 अर्थ पर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर अर्थ पर्यायें दो प्रकार की होती हैं-

1. स्वभाव अर्थपर्याय और 2. विभाव अर्थपर्याय।

प्र.1967 स्वभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर अगुरुलघु गुणों के परिणमन को स्वभाव अर्थ पर्याय कहते हैं।

प्र.1968 स्वभाव अर्थपर्याय किन-किन द्रव्यों में होती हैं?

उत्तर स्वभाव अर्थपर्यायें सभी द्रव्यों में पायी जाती हैं।

प्र.1969 स्वभाव अर्थपर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर स्वभाव अर्थपर्यायें षट्वृद्धिरूप और षट्हानिरूप से बारह प्रकार की होती हैं-

जैसे-अनंतभागवृद्धि, असंख्यातभाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुण-वृद्धि, अनंतगुणवृद्धि, अनंतभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि और अनंतगुणहानि।

प्र.1970 विभाव अर्थपर्यायें किन्हें कहते हैं?

उत्तर पर पदार्थ के निमित्त से जो पर्यायें होती हैं उन्हें विभाव अर्थपर्यायें कहते हैं।

प्र.1971 विभाव अर्थपर्यायें किन-किन द्रव्यों में होती हैं?

उत्तर विभाव अर्थपर्यायें जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में ही होती हैं।

प्र.1972 जीव द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें कौन-कौन सी हैं?

उत्तर जीव द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें छ: प्रकार की होती हैं-

मिथ्यात्त्व, कषाय, राग, द्वेष, पुण्य और पाप।

प्र.1973 पुद्गल द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर द्विअणुक आदि स्कंधों में एक वर्ण आदि से अन्य वर्ण आदि रूप परिणमन की शक्ति ही पुद्गल द्रव्य

की विभाव अर्थपर्यायें हैं।

प्र.1974 व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर प्रदेशत्त्वगुणों के परिणमन को व्यंजनपर्याय कहते हैं। यह स्थूल, वचनगोचर एवं अनेक समयवर्ती हुआ करती है।

प्र.1975 व्यंजनपर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर स्वभाव व्यंजनपर्याय और विभाव व्यंजनपर्याय के भेद से व्यंजनपर्यायें दो प्रकार की होती हैं। स्वभाव व्यंजनपर्याय भी द्रव्यस्वभाव-व्यंजनपर्याय और गुणस्वभाव व्यंजनपर्याय के भेद से दो प्रकार की होती हैं। विभाव व्यंजनपर्याय भी द्रव्यविभाव व्यंजनपर्याय और गुणविभाव व्यंजनपर्याय के भेद से दो प्रकार की होती हैं।

प्र.1976 व्यंजनपर्याय किन-किन द्रव्यों में होती हैं?

उत्तर जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में व्यंजनपर्याय हुआ करती हैं।

प्र.1977 जीव द्रव्य की द्रव्य स्वभाव व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर बिना दूसरों के निमित्त से जो व्यंजनपर्याय होती है उसे द्रव्य स्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे- जीव की सिद्धपर्याय।

प्र.1978 जीव की गुणस्वभावद्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर कर्मोपाधि से रहित गुणों की स्वभाविकपर्याय को गुणस्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे- जीव का अनंतचतुष्टय।

प्र.1979 जीव की विभावगुण व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर कर्मोपाधि से सहित ज्ञान दर्शन के परिणमन को विभाव गुण व्यंजनपर्याय कहते हैं जैसे- मतिज्ञान आदि सात ज्ञान और चक्षुदर्शन आदि तीन दर्शन।

प्र.1980 जीव की विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर कर्मोपाधि से सहित द्रव्य की पर्याय को विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे- नर-नारक आदि पर्यायें अथवा चौरासी लाख योनिरूप पर्यायें।

प्र.1981 पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय द्विअणुक आदि स्कंध रूप अवस्था है।

प्र.1982 पुद्गल द्रव्य की विभाव गुण व्यंजन पर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल द्रव्य की विभाव गुण व्यंजनपर्याय एक रस से दूसरे रस रूप, एक गन्ध से दूसरे गन्ध रूप अवस्था है।

प्र.1983 पुद्गल द्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल द्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय अविभागी पुद्गल परमाणु रूप शुद्ध अवस्था है।

प्र.1984 पुद्गल द्रव्य की स्वभाव गुण व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल परमाणुओं में एक वर्ण, एक रस, एक गंध और अविरोधी दो स्पर्श का (यथा- स्निग्ध, रुक्ष में से एक और शीत उष्ण में से एक का) रहना स्वभाव गुण व्यंजनपर्याय है।

प्र.1985 द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर द्रव्यार्थिक नय के दस भेद हैं-

1. कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
2. उत्पादव्यय गौणसत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
3. भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
4. कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
5. उत्पादव्ययसापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
6. भेद कल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
7. अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिकनय।
8. स्वद्रव्यादिकग्राहक द्रव्यार्थिक नय।
9. परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय। और
10. परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय।

प.1986 कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म की उपाधि की अपेक्षा न करने वाला नय कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है, जैसे- संसारी जीव को सिद्ध के समान शुद्ध बतलाना।

प्र.1987 उत्पादव्ययगौणसत्ता ग्राहक द्रव्यार्थिकनय किसे कहते हैं?

उत्ता उत्पाद व्यय (पर्याय) को गौण करके सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाला नय शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहलाता है। जैसे- द्रव्य नित्य है ऐसा कहना।

प्र.1988 भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर भेदकल्पना की अपेक्षा से रहित द्रव्य को विषय करने वाला नय भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है, जैसे- द्रव्य अपने गुण, पर्याय और स्वभाव से अभिन्न है।

प्र.1989 कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मोपाधि की अपेक्षा सहित अशुद्ध द्रव्य को विषय करने वाला नय कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- कर्म जनित क्रोधादि भावों को आत्मा के बतलाना।

प्र.1990 उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर उत्पाद, व्यय की अपेक्षा सहित द्रव्य को विषय करने वाला नय उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- एक ही समय में द्रव्य, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है।

विशेष- शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय मात्र ध्रौव्य होता है। उत्पादव्यय पर्यायार्थिकनय के विषय हैं। अतः यह नय उत्पाद व्यय (पर्याय) सापेक्ष ध्रौव्य (द्रव्य) को विषय बनाने के कारण अशुद्धद्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

प्र.1991 भेद कल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर भेद कल्पनासापेक्ष द्रव्य को विषय करने वाला नय भेद कल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं।

विशेष- यह नय एक अखण्ड द्रव्य को उसके गुणों को भेदपूर्वक ग्रहण करता है, इसलिए अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

प्र.1992 अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर मनुष्य, देव, नारकी आदि पर्यायों में यह जीव है, इस प्रकार का कथन करने वाला नय अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- मनुष्य, देव, नारकी आदि पर्यायों में यह जीव है, यह जीव है ऐसा कथन अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

प्र.1993 स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य को विषय करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- स्व चतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) की अपेक्षा द्रव्य सत् रूप है।

प्र.1994 परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य का कथन करने वाला नय, परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- पर चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य असत् रूप है।

प्र.1995 परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञान नामक परमभाव को ही ग्रहण करता है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- आत्मा ज्ञानस्वरूपी है।

प्र.1996 शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन होता है, वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

प्र.1997 शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय क्या है?

उत्तर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सिद्धजीवद्रव्य और शुद्धपुद्गल-परमाणु शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं।

प्र.1998 अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर अशुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, उसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

प्र.1999 अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय क्या है?

उत्तर द्विअणुक आदि स्कंधरूप अशुद्ध पुद्गल-द्रव्य और नर-नारक आदि संसारी जीवरूप अशुद्ध जीव

द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं।

प्र.2000 शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के पाँच भेद हैं-

1.कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

2.उत्पाद व्यय गौणसत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

3. भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

4. स्वद्रव्यादि ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

5. परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

प्र.2001 कर्मोपाधि-निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कर्मोपाधि की अपेक्षा रहित जीव द्रव्य है, जैसे संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा है। यद्यपि संसारी जीव कर्मोपाधि सहित है तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उस जीव को कर्मोपाधि से रहित सिद्ध जीव समान शुद्ध बतलाता है। यदि जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा हो तो वह संसारी नहीं हो सकता और संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा नहीं हो सकता, क्योंकि संसारी अवस्था जीव की अशुद्ध पर्याय है। सिद्ध अवस्था जीव की शुद्ध पर्याय है। एक समय में जीव की एक ही अवस्था रह सकती है। कर्मोपाधि अर्थात् कर्म बंध जीव की अशुद्धता का कारण है, क्योंकि अन्य द्रव्य के बंध बिना द्रव्य अशुद्ध नहीं हो सकता। कर्म-बंध के कारण ही जीव संसारी हो रहा है। फिर भी कर्म बंध की अपेक्षा न करके उस संसारी जीव को (अशुद्धात्मा को) शुद्धात्मा बतलाना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रथम भेद है। संसारी अवस्था की अपेक्षा से इस नय का विषय सत्य नहीं है तथापि शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से इस नय का विषय सत्य है। अर्थात् कर्मों के बीच में पड़े हुए जीव को सिद्ध समान ग्रहण करने वाला नय कर्मोपाधि-निरपेक्ष -शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2002 उत्पाद व्यय गौण सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर उत्पाद-व्यय को गौण करके (अप्रधान करके) सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे- द्रव्य नित्य है। द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है तथा द्रव्य अनेकान्तात्मक अर्थात् नित्य-अनित्य-आत्मक है। किन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उत्पाद व्यय को अप्रधान करके मात्र ध्रौव्य को ग्रहण करके (नित्य-अनित्य-आत्मक) द्रव्य को नित्य बतलाना है। अनेकान्त दृष्टि में इस शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय यथार्थ नहीं है तथापि एक धर्म को (अनित्य धर्म को) गौण करके नित्य धर्म को मुख्य करने से इस नय के विषय को सर्वथा अयथार्थ नहीं कहा जा सकता। अर्थात् उत्पाद-व्यय को गौण करके मात्र ध्रुव को ग्रहण करने वाला नय आगम में सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2003 भेद कल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध द्रव्यार्थिक नय भेदकल्पना की अपेक्षा से रहित है, जैसे- निज गुण से, निज पर्याय और निज

स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

यद्यपि संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा गुण और द्रव्य में, पर्याय और द्रव्य में तथा स्वभाव और द्रव्य में भेद है किन्तु प्रदेश की अपेक्षा गुण-द्रव्य में, पर्याय द्रव्य में, स्वभाव-द्रव्य में भेद नहीं है अर्थात् अनेकान्त रूप से द्रव्य भेद-अभेद-आत्मक है। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय भेद नहीं है, मात्र अभेद है। भेद विवक्षा को गौण करके शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण-पर्याय-स्वभाव का द्रव्य से अभेद है, क्योंकि प्रदेश भेद नहीं है। अर्थात् गुण , गुणी आदि चार अर्थों में (गुण, पर्याय, स्वभाव, द्रव्य) में भेद नहीं करने वाले नय को भेद कल्पना (विकल्प) - निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा गया है।

प्र.2004 स्वद्रव्यादिग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। पर द्रव्यादि की विवक्षा न कर, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से द्रव्य अस्तित्व को अस्तिरूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादि ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। अथवा स्वद्रव्यादि चतुष्टय से वस्तु स्वरूप का अस्तित्व बतलाना जिस नय का अभिप्राय है वह स्व-द्रव्यादिग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2005 परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित जो नय द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। ज्ञान स्वरूप आत्मा ऐसा कहना परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योंकि इसमें जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञान नामक परम भाव को ही ग्रहण किया गया है। यद्यपि आत्मद्रव्य संसार और मुक्त पर्यायों का आधार है तथापि आत्मद्रव्य कर्मों के बंध और मोक्ष का कारण नहीं होता है। यह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अथवा आत्मा कर्म से उत्पन्न नहीं होता और न कर्मक्षय से उत्पन्न होता है- द्रव्य के ऐसे भाव को बतलाने वाला परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2006 अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के पाँच भेद हैं।

1. कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
2. उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
3. भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
4. परद्रव्यादिग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
5. अन्वयग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक नय।

प्र.2007 कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर सब जीवों में रागादि भावों को कहने वाला जो नय है वह कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध नय है। कर्मोपाधि सापेक्ष (अपेक्षा सहित) अशुद्ध जीव द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे- कर्मजनित

क्रोधादि भावरूप आत्मा है।

अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय अशुद्ध द्रव्य है। संसारी जीव अनादिकाल से पौद्गलिक कर्मों से बँधा हुआ है इसलिए अशुद्ध है। संसारी जीव में कर्मजनित औदयिक भाव निरंतर होते रहते हैं। वे औदयिक भाव जीव के स्वतत्त्व हैं। क्रोधादि कर्मजनित औदयिकभावमयी आत्मा अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

प्र.2008 उत्पादव्यय सापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर उत्पाद-व्यय मिश्रित ध्रुव अर्थात् एक समय में इन तीन मयी द्रव्य को ग्रहण करने वाला अशुद्ध नय है। उत्पाद-व्यय की अपेक्षा सहित द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे- एक ही समय में उत्पाद व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य है। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय मात्र ध्रौव्य है। क्योंकि उत्पाद व्यय पर्यायार्थिक नय का विषय है। द्रव्य का लक्षण सत् है और सत् का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी है। इस प्रकार द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप है, किन्तु उत्पाद व्यय पर्यायार्थिक नय का विषय होने के कारण उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक अशुद्ध द्रव्य को -अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कहा है।

प्र.2009 भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर गुण गुणी में भेद होने पर भी जो नय द्रव्य में गुण गुणी का सम्बन्ध करता है वह भेद कल्पना सहित अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए। भेदकल्पना सापेक्ष द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है जैसे- आत्मा के ज्ञान दर्शनादि गुण हैं। आत्मा में न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है वह तो ज्ञायक शुद्ध है। आत्मा में ज्ञान दर्शनादि गुणों की कल्पना करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात् एक अखण्ड द्रव्य में गुणों का भेद करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

प्र.2010 परद्रव्यादिग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परस्वभाव की अपेक्षा द्रव्य नास्ति रूप है ऐसा पर द्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। स्वद्रव्य आदि की विवक्षा न कर परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परस्वभाव की अपेक्षा से द्रव्य के नास्तित्त्व को कथन करने वाला नय परद्रव्यादिग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। अर्थात् परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से जो नय विवक्षित पदार्थ में वस्तु के नास्तित्व को बतलाता है वह परद्रव्यादि सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है। जैसे- रजतद्रव्य, रजतक्षेत्र, रजतकाल, रजतपर्याय अर्थात् रजतादि रूप से स्वर्ण नास्ति है।

प्र.2011 अन्वय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय का स्वरूप क्या है?

उत्तर संपूर्ण गुण पर्याय और स्वभावों में द्रव्य को अन्वय रूप से ग्रहण करने वाला नय अन्वय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे- नय संपूर्ण स्वभावों को यह द्रव्य है, यह द्रव्य है ऐसे अन्वय रूप से द्रव्य की स्थापना करता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है। जैसे कि कड़े आदि पर्यायों में तथा पीतत्व आदि गुणों में अन्वय रूप से रहने वाला स्वर्ण।

प्र.2012 पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन होता है, उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

प्र.2013 पर्यायार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर पर्यायार्थिक नय के छः भेद हैं-

1.अनादि नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

2. सादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

3. स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

4. स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।

5. विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

6. विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।

प्र.2014 अनादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर अनादि नित्य पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह अनादिनित्य शुद्धपर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- चन्द्रमा, सूर्य, सुमेरु पर्वत, अकृत्रिम चैत्यालय आदि पुद्गल की पर्यायें अनादि से हैं और अनंतकाल तक रहेंगी, इसलिए अनादि नित्य हैं, ध्रुव हैं इसलिए शुद्ध कही जाती हैं और पर्याय को विषय करने के कारण यह अनादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है।

प्र.2015 सादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर सादिनित्य पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन है वह सादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- सिद्ध पर्याय। कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुई है इसलिए सादि शुद्ध है, कभी नष्ट नहीं होगी इसलिए नित्य है।

प्र.2016 स्वभावअनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद व्यय को ग्रहण करता है उसे स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- प्रति समय अर्थ पर्यायें विनाश को प्राप्त होती हैं। प्रत्येक क्षण सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्रकट करते रहना वस्तु का स्वभाव है, क्योंकि यह अन्य की अपेक्षा न करके स्वतः ही होता है। इसलिए इस नय के साथ स्वभाव लगाना ठीक है। केवल अनित्य अंश को ग्रहण करता है, इसलिए अनित्य कहा है। स्वभाव को ग्रहण करने वाला होने से शुद्ध है। इसलिए इस नय का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2017 स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो जब एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त सत्ता को विषय बनाता है, उसे स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- पर्याय एक ही समय में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य रूप है। ध्रौव्य को ग्रहण करने के कारण अशुद्ध है। पर्याय रूप होने के कारण पर्यायार्थिक नय का विषय है। अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं रखता इसलिए स्वभाव है। अतः इस नय का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2018 विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर यह नय कर्म जनित वैभाविक भावों की विवक्षा न कर उसके स्वभाविक भावों को अपना विषय बनाता है, उसे विभावअनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- संसारी जीवों की पर्याय सिद्ध के समान शुद्ध है। संसारी जीवों को लक्ष्य में रखकर विशेषण बनाया है इसलिए विभाव विशेषण लगाया है। पर्यायग्राही होने के कारण अनित्य तथा पर्यायार्थिक नय है। कर्मों की विवक्षा न होने के कारण शुद्ध कहा जा रहा है। अतएव उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2019 विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय कर्मजनित वैभाविक भावों को ग्रहण करता है, उसे विभावअनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- संसारी जीवों की जन्म, मरण से होने वाली चतुर्गति रूप पर्यायें तथा पुद्गल की स्कंध रूप पर्यायें। यह नय स्वभाव से विपरीत होने के कारण विभाव है, सादि सांत होने के कारण अथवा विनश्वर होने के कारण अनित्य है, कर्मोपाधिसापेक्ष होने के कारण अशुद्ध है, इसलिए इस नय का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2020 शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सिद्धजीवद्रव्य और परमाणुरूप पुद्गलद्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं अतः इनकी पर्यायें भी शुद्ध हैं और ये पर्यायें शुद्ध पर्यायार्थिकनय की विषय हैं।

प्र.2021 अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर अशुद्धपर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- पुद्गल की द्विअणुक आदि स्कंधरूप पर्यायें और कर्मोपाधि सहित जीव की नर नारक आदि पर्यायें अशुद्ध पर्यायार्थिक नय की विषय हैं।

प्र.2022 नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो एक को ही प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनेक को प्राप्त होता है वह नैगमनय है। नैगम का अर्थ विकल्प है जो विकल्प को ग्रहण करे, वह नैगमनय है अथवा नैगमनय द्रव्य, गुण, पर्याय सभी को विषय करता है अथवा अनिष्पन्न अर्थ में संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नैगमनय है। जैसे- ईंधन और जल आदि के लाने में लगे हुए किसी पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं? वह कहता है कि मैं भात पका रहा हूँ, केवल भात के लिए किये गये व्यापार (उद्यम) में भात का प्रयोग किया गया है।

प्र.2023 नैगमनय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर नैगमनय का विषय बहुत व्यापक है। फिर भी संक्षिप्त में नैगमनय को दो भेदों में बाँटा जा सकता है।

1. सामान्य नैगमनय। 2. विशेष नैगमनय।

सामान्य नैगमनय के तीन भेद हैं- भूत-नैगमनय, भावी-नैगमनय, वर्तमान-नैगमनय। विशेष नैगमनय

के भी तीन भेद हैं- द्रव्य नैगमनय, पर्याय नैगमनय और द्रव्य-पर्याय नैगमनय।

प्र.2024 भूत-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ पर अतीत काल की पर्याय का वर्तमान की पर्याय में कथन किया जाता है, वह भूत-नैगमनय है। जैसे- आज दीपावली के दिन श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये हैं।

प्र.2025 भावी-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ भविष्यत पर्याय को हो चुकी के समान कथन किया जाता है वह भावी-नैगमनय है। जैसे- अरहन्त; सिद्ध ही हैं। अथवा यह पुरुष; नारकी है ऐसा कहना।

प्र.2026 वर्तमान-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर करने के लिए प्रारंभ की गई ऐसी ईषत् निष्पन्न (थोड़ी बनी हुई) अथवा अनिष्पन्न (बिल्कुल नहीं बनी हुई) को निष्पन्नवत् कहना, वर्तमान-नैगमनय है। जैसे- मैं भात पका रहा हूँ।

प्र.2027 द्रव्य-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर दो धर्मों के कथंचित् एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य-नैगमनय है। जैसे- सत् द्रव्य लक्षणम्। गुणपर्ययवद् द्रव्यम्।

प्र.2028 पर्याय-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर दो धर्मियों के कथंचित् एकता के संकल्प का नाम ही पर्याय-नैगमनय है। जैसे- सत् और चैतन्य स्वरूपी आत्मा है।

प्र.2029 द्रव्य-पर्याय नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म-धर्मी में एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य-पर्याय नैगमनय है। जैसे कि संसारी जीव क्षण मात्र के लिये सुखी है।

प्र.2030 संग्रहनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय अभेद रूप से सम्पूर्ण वस्तु समूह को विषय करता है, वह संग्रहनय है। अथवा भेद सहित सब पर्यायों को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सबको ग्रहण करने वाला नय संग्रहनय है। जैसे- सत् कहने से सभी द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है। संग्रहनय समूह को विषय करता है एक को नहीं।

प्र.2031 संग्रहनय के कितने भेद हैं?-

उत्तर संग्रहनय के दो भेद हैं-

1.सामान्य संग्रहनय। 2.विशेष संग्रहनय।

प्र.2032 सामान्य संग्रह नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय समस्त द्रव्यों को एकत्व रूप से ग्रहण कर लेता है, उसे सामान्य संग्रहनय कहते हैं। जैसे- सभी द्रव्य सत् स्वरूपी हैं। अर्थात् सत् कहने से सभी द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है।

प्र.2033 विशेष संग्रहनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय एक जाति विशेष की अपेक्षा से अनेक पदार्थों को एक रूप से ग्रहण करता है वह विशेष संग्रहनय है। जैसे- चैतन्यपने की अपेक्षा से सम्पूर्ण जीव राशि एक है।

प्र.2034 व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संग्रहनय से ग्रहण किये हुए पदार्थों को जो भेद रूप से व्यवहार अर्थात् स्वीकार करता है, वह व्यवहार नय है।

प्र.2035 व्यवहार नय के कितने भेद हैं?

उत्तर व्यवहार नय के दो भेद हैं-

1. सामान्य व्यवहार नय। 2. विशेष व्यवहार नय।

प्र.2036 सामान्य व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर सामान्य संग्रह नय के विषयभूत पदार्थ में भेद करने वाला नय सामान्य संग्रह भेदक व्यवहारनय कहलाता है। जैसे- द्रव्य के दो भेद हैं- जीव और अजीव।

प्र.2037 विशेष व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर विशेष संग्रहनय के विषयभूत पदार्थ को भेद रूप से ग्रहण करने वाला नय विशेष संग्रहभेदक व्यवहारनय कहलाता है, जैसे- जीव के संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद करना।

प्र.2038 ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय ऋजु अर्थात् अवक्र, सरल को सूत्रित अर्थात् ग्रहण करता है, वह ऋजुसूत्र नय है। अर्थात् यह नय अतीत और अनागत कालों के विषयों को ग्रहण ना करके वर्तमान काल के विषयभूत पदार्थों को ग्रहण करता है।

प्र.2039 ऋजुसूत्र नय के कितने भेद हैं?

उत्तर ऋजुसुत्र नय के दो भेद हैं-

1.सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय। 2.स्थूल ऋजुसूत्र नय।

प्र.2040 सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय एक समयवर्ती पर्याय को विषय करता है, वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय है। जैसे- शब्द क्षणिक है। अथवा इन्द्रियजन्य सुख क्षणिक है।

प्र.2041 स्थूल ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय अनेक समयवर्ती स्थूल पर्याय को विषय करता है, वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है। जैसे- मनुष्य आदि पर्यायें अपनी-अपनी आयु प्रमाण काल तक रहती हैं।

प्र.2042 शब्दनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय शब्द अर्थात् व्याकरण से प्रकृति और प्रत्यय के द्वारा सिद्ध अर्थात् निष्पन्न शब्द को मुख्यकर

विषय करता है, वह शब्दनय है अथवा लिंग, संख्या, काल आदि के व्यभिचार (दोष) को दूर कर अर्थ का प्रतिपादन करता है, शब्द प्रधान होने के कारण उसे शब्दनय कहा जाता है। जैसे- पुल्लिंग के स्थान में स्त्रीलिंग का और स्त्रीलिंग के स्थान में पुल्लिंग का कथन करना आदि लिंग-व्यभिचार है। जैसे- 'तारका स्वातिः' स्वाति नक्षत्र तारका है। यहाँ पर तारका शब्द स्त्रीलिंग और स्वाति शब्द पुल्लिंग है, अतः स्त्रीलिंग शब्द के स्थान पर पुल्लिंग शब्द का कथन करने से लिंग व्यभिचार है अर्थात् तारका शब्द स्त्रीलिंग है उसके साथ पुल्लिंग स्वाति शब्द का प्रयोग किया गया है जो व्याकरण अनुसार ठीक नहीं है। एकवचन आदि के स्थान पर द्विवचन आदि का कथन करना संख्या-व्यभिचार है। जैसे- 'नक्षत्रं पुनर्वसू' पुनर्वसू नक्षत्र है। यहाँ पर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है, इसलिए एकवचन के साथ में द्विवचन का कथन करने से संख्या व्यभिचार है। भूत आदि काल के स्थान में भविष्यत् आदि काल का कथन करना काल-व्यभिचार है। जैसे- 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा इसको पुत्र होगा। यहाँ पर 'विश्वदृश्वा' शब्द भूत-कालीन है और 'जनिता' यह भविष्यत् कालीन है। अतः भविष्य अर्थ के विषय में भूतकालीन प्रयोग करना काल-व्यभिचार है। इस प्रकार जितने भी लिङ्ग आदि व्यभिचार हैं वे सभी अयुक्त हैं।

प्र.2043 समभिरूढ़ नय किसे कहते हैं?

उत्तर शब्द नय के द्वारा ग्रहण किये गये समान स्वभावी अर्थात् समान लिंग आदि वाले एकार्थवाची शब्दों में व्युत्पत्ति अर्थ से अर्थ भेद की स्थापना करने वाला समभिरूढ़ नय है। जैसे- इन्द्र (ऐश्वर्यवान) शक्र (सामर्थ्यवान) पुरन्दर (पुरों का विभाजन करने वाला) इस प्रकार तीनों शब्द देवराज के वाची होते हुये भी भिन्नार्थ वाची हैं अथवा एक शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्द को छोड़कर एक प्रसिद्ध अर्थ को ग्रहण करने वाला समभिरूढ़ नय है। जैसे- गौ शब्द के गाय, वाणी, पृथ्वी आदि अर्थ होते हुये भी प्रसिद्ध अर्थ गाय को ही ग्रहण करता है।

प्र.2044 एवंभूत नय किसे कहते हैं?

उत्तर जिस नय में वर्तमान क्रिया की प्रधानता होती है, वह एवंभूत नय है। जिस शब्द का जिस क्रिया रूप अर्थ है उस क्रिया रूप से परिणत समय में ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है। अन्य समय में नहीं, ऐसा जिस नय का अभिप्राय है वह एवं भूत नय है। जैसे- पूजा करते समय ही उस व्यक्ति को पुजारी कहना, अन्य समय में नहीं।

प्र.2045 उपनय किये कहते हैं?

उत्तर जो नयों के समीप में रहें उन्हें उपनय कहते हैं। उपनय भी वस्तु के यथार्थ धर्म का कथन करता है, अयथार्थ धर्म का कथन नहीं करता, इसलिए इसके द्वारा भी वस्तु का यथार्थ बोध होता है।

प्र.2046 उपनयों के मुख्य रूप से कितने भेद हैं?

उत्तर उपनयों के मुख्य रूप से तीन भेद हैं-

1.सद्भूतव्यवहार नय।

2. असद्भूतव्यवहार नय।

3.उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2047 सद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से जो नय गुण-गुणी में भेद करता है, वह सद्भूतव्यवहार नय है। इसी प्रकार पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभावी में, कारक-कारकी में भी भेद करना, सद्भूतव्यवहार नय का कार्य है। जैसे- उष्ण स्वभाव और अग्नि स्वभावी में भेद करना। जीव और मनुष्य पर्याय में भेद करना।

प्र.2048 सद्भूतव्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर सद्भूतव्यवहार नय दो प्रकार का है- 1.शुद्ध सद्भूतव्यवहार नय 2.अशुद्ध सद्भूतव्यवहार नय।

प्र.2049 शुद्ध सद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध गुण और शुद्ध गुणी में तथा शुद्ध पर्याय और शुद्धपर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार नय है। कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धजीव और क्षायिक शुद्धज्ञान में तथा सिद्धजीव व सिद्ध पर्याय में भेद करना शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय का विषय है जैसे- जीव का केवलज्ञान अथवा जीव की सिद्ध पर्याय।

प्र.2050 अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणी में तथा अशुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है वह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है। कर्मोपाधि सहित अशुद्ध जीव गुणी में तथा क्षायोपशमिक ज्ञान में और संसारी जीव में व नर-नारक आदि में भेद का कथन करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय का विषय है। जैसे-जीव के मति आदि ज्ञान अथवा जीव की मनुष्य आदि पर्यायें।

प्र.2051 असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म (स्वभाव) का अन्यत्र समारोप करने वाला असद्भूतव्यवहार नय है।

प्र.2052 असद्भूत व्यवहार नय के विषय भेद कितने हैं?

उत्तर असद्भूत व्यवहार नय के विषय भेद नौ हैं-

1. द्रव्य में द्रव्य का उपचार- जैसे- पुद्गल में जीव का उपचार अर्थात् पृथ्वी आदि पुद्गल में एकेन्द्रिय जीव का उपचार।

2. पर्याय में पर्याय का उपचार- जैसे- दर्पण रूप पर्याय में अन्य पर्याय रूप प्रतिबिंब का उपचार। किसी के प्रतिबिंब को देखकर वह जिसका प्रतिबिंब है इसको उस प्रतिबिंब रूप बतलाना।

3. गुण में गुण का उपचार- जैसे-मतिज्ञान मूर्त है- यहाँ विजाति ज्ञानगुण में विजाति मूर्तगुण का आरोपण है।

4. द्रव्य में गुण का उपचार- जैसे- जीव अजीव ज्ञेय हैं अर्थात् ज्ञान के विषयक हैं। यहाँ जीव-अजीव द्रव्य में ज्ञान गुण का उपचार है।

5. द्रव्य में पर्याय का उपचार- जैसे- परमाणु बहुप्रदेशी है अर्थात् परमाणु पुद्गल द्रव्य में बहुप्रदेशी पर्याय का उपचार।

6. गुण में द्रव्य का उपचार- जैसे- श्वेत प्रासाद (गृह)। यहाँ पर श्वेत गुण में प्रासाद द्रव्य का आरोपण किया गया है।

7. गुण में पर्याय का उपचार- जैसे-ज्ञानगुण के परिणमन में ज्ञान-पर्याय का ग्रहण, गुण में पर्याय का आरोपण है।

8. पर्याय में द्रव्य का उपचार- जैसे- स्कंध को पुद्गल द्रव्य कहना, पर्याय में द्रव्य का उपचार है।

9 पर्याय में गुण का उपचार- जैसे इसका शरीर रूपवान है, यहाँ पर शरीर रूप पर्याय में 'रूपवान' गुण का उपचार किया गया है।

प्र.2053 असद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर असद्भूत व्यवहार नय तीन प्रकार का है-

1. स्वजातिअसद्भूत व्यवहार नय।
2. विजातिअसद्भूत व्यवहार नय।
3. स्वजातिविजाति असद्भूतव्यवहार नय।

प्र.2054 स्वजाति असद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय स्वजातीय द्रव्य आदि में स्वजातीय द्रव्य के संबंध से होने वाले धर्म का आरोपण करता है वह स्वजाति-असद्भूतव्यवहार नय है जैसे- परमाणु को बहुप्रदेशी कहना।

विशेष- परमाणु अन्य परमाणुओं के संबंध से बहुप्रदेशी हो सकता है। यहाँ पर स्वजातीय द्रव्य में स्वजातीय द्रव्य के संबंध से होने वाली विभावपर्याय का आरोपण किया गया है।

प्र.2055 विजातिअसद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय विजाति द्रव्य आदि में विजातीय द्रव्य का आरोपण करता है वह उपर्युक्त नय है। जैसे- मतिज्ञान मूर्त है। यहाँ पर मतिज्ञान नामक आत्मगुण में पौद्गलिक मूर्तपने का आरोपण किया है।

प्र.2056 स्वजाति-विजाति असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर स्वजातीय और विजातीय द्रव्य आदि में जो स्वजातीय द्रव्य आदि का आरोपण करता है उसे उपर्युक्त नय कहते हैं। जैसे- जीव-अजीव रूपी ज्ञेय को ज्ञान कहना।

प्र.2057 उपचरित असद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय उपचार में भी उपचार करता है वह उपर्युक्त नय है। अर्थात् जो नय किसी प्रयोजन या निमित्त से बिल्कुल भिन्न स्वजातीय, विजातीय तथा स्वजातीय विजातीय पदार्थ को अभेद रूप से ग्रहण करता है

वह उपचरित असद्भूतव्यवहार नय कहलाता है।

प्र.2058 उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का है?

उत्तर तीन प्रकार का है-

1. स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।
2. विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।
3. स्वजातीयविजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2059 स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्त्र जो नय उपचार से स्वजातीय द्रव्य में अपना स्वामी पन बतलाता है वह उपर्युक्त नय है। जैसे-पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि मेरे हैं।

प्र.2060 विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय उपचार से विजातीय द्रव्य को स्वजातीय द्रव्य का स्वामी बतलाता है वह उपर्युक्त नय है। जैसे-वस्त्र-आभूषण, स्वर्ण इत्यादि मेरे हैं। अपने जाति के न होने से विजातीय हैं और आतमरूप न होने से असद्भूत हैं।

प्र.2061 स्वजाति विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय चेतन-अचेतन रूप मिश्र पदार्थ को अपना स्वामी बतलाता है वह स्वजाति-विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- देश, दुर्ग, राज्य आदि मेरे हैं।

प्र.2062 अध्यात्म पद्धति से नयों के मूलभूत कितने भेद हैं?

उत्तर अध्यात्म पद्धति से नयों के मूलभूत दो भेद हैं-

1. निश्चय नय और 2. व्यवहार नय।

प्र.2063 निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर गुण-गुणी में पर्याय-पर्यायी आदि में भेद न करके अभेद रूप से वस्तु को ग्रहण करने वाला नय निश्चय नय कहलाता है।

प्र.2064 निश्चय नय कितने प्रकार का है?

उत्तर निश्चय नय दो प्रकार का है-

1. शुद्ध निश्चय नय और 2.अशुद्ध निश्चय नय।

प्र.2065 शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मजनित विकार से रहित गुण-गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करने वाला नय शुद्ध निश्चय नय कहलाता है जैसे- जीव केवलज्ञानमयी है।

प्र.2066 शुद्ध निश्चय नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर तीन प्रकार का होता है-

1.परम शुद्ध निश्चय नय।

2. साक्षात् शुद्ध निश्चय नय।

3.एकदेश शुद्ध निश्चय नय।

प्र.2067 परम शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय आत्मा के त्रिकाल शुद्ध परम पारिणामिक भावों को ग्रहण करता है उसे परम शुद्ध निश्चय नय कहते हैं। जैसे- जीव; सत्ता, चैतन्य व ज्ञानादि शुद्ध प्राणों से जीता है।

प्र.2068 साक्षात् शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर निरुपाधिक गुण-गुणी को अभेद रूप से विषय करने वाला नय शुद्ध निश्चय नय या साक्षात् शुद्ध निश्चय नय कहलाता है। यह नय आत्मा को क्षायिक भावों से अभिन्न बतलाता है। जैसे- जीव को केवलज्ञान रूपी कहना।

प्र.2069 एकदेश शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर क्षायोपशमिक भावों की एकदेश शुद्धता के साथ तन्मय वस्तु को ग्रहण करने वाला नय एकदेश शुद्ध निश्चय नय कहलाता है। जैसे- रागद्वेष आदि भाव कर्मजनित हैं।

प्र.2070 शुद्ध निश्चय और एकदेश शुद्ध निश्चय नय में अंतर क्या है?

उत्तर शुद्ध निश्चय नय तो पूर्ण शुद्धक्षायिक भावों के साथ जीव की तन्मयता या अभेदपने को ग्रहण करता है और एक देश शुद्ध निश्चय नय क्षायोपशमिक भाव में रहने वाले केवल शुद्ध अंश के साथ जीव की तन्मयता अर्थात् अभेद को ग्रहण करता है।

प्र.2071 अशुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मजनित विकार सहित गुण-गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करने वाला नय अशुद्ध निश्चय नय कहलाता है। जैसे- आत्मा संपूर्ण मोह रागद्वेष रूप भाव कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है।

प्र.2072 व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी में भेद करके वस्तु को ग्रहण करने वाला नय व्यवहार नय कहलता है।

प्र.2073 व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर व्यवहार नय दो प्रकार का होता है-

1.सद्भूत व्यवहार नय और 2. असद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2074 सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर एक ही वस्तु में गुण-गुणी का संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेदपूर्वक कथन करने वाला नय सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- जीव के ज्ञानदर्शन आदि गुण।

प्र.2075 सद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार होता है-

1.उपचरित सद्भूत व्यवहार नय 2.अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2076 उपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मजनित विकार सहित गुण-गुणी के भेद को ग्रहण करने वाला नय उपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- जीव के मतिज्ञान आदि गुण।

प्र.2077 अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म से उत्पन्न होने वाले विकार से रहित जीव में गुण-गुणी के भेद को ग्रहण करने वाला नय अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- जीव के केवलज्ञान आदि गुण।

प्र.2078 असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर दो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले पदार्थों के संबंध को विषय करने वाला नय उपर्युक्त नय है। जैसे- ज्ञान; ज्ञेय पदार्थों को जानता है। अर्थात् ज्ञेय-ज्ञायक संबंध, वाच्य-वाचक आदि संबंध असद्भूत व्यवहार नय के विषय हैं।

प्र.2079 असद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर असद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का होता है-

1. उपचरित असद्भूत व्यवहार नय 2.अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2080 उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संयोग संबंध से सहित ऐसी भिन्न वस्तुओं के परस्पर में संबंध को ग्रहण करने वाला नय उपर्युक्त नय है। जैसे देवदत्त का धन।

प्र.2081 संयोग संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर दो पृथक् भूत पदार्थों में (प्रदेश भेद वाले पदार्थों में) एकत्व का संबंध संयोग संबंध कहलाता है। जैसे- शरीर का वस्त्र के साथ संबंध।

प्र.2082 अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संश्लेष संबंध से सहित वस्तुओं को ग्रहण करने वाला नय उपर्युक्त नय है। जैसे- जीव का शरीर।

प्र.2083 संश्लेष संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर प्रदेशों के साथ एकमेक संबंध को संश्लेष संबंध कहते हैं। जैसे- दूध-पानी का संबंध अथवा जीव का शरीर या कर्मों के साथ संबंध।

प्र.2084 तादात्म संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मभूत (गुण-गुणी के) संबंध को तादात्म संबंध कहते हैं। जैसे- आत्मा और ज्ञान, दर्शन आदि गुणों का संबंध रहना।

अध्याय-9

छह अधिकारों द्वारा शास्त्र व्याख्यानादि

(मंगल का व्युत्पत्ति अर्थ, पर्यायवाची नाम आदि, चौबीस अनुयोग द्वार, निर्देशादि का लक्षण, सत् संख्यादि का लक्षण, काल-अन्तर्मुहुर्तों का स्पष्टीकरण, गुणस्थानों में भाव, अल्पबहुत्व, चार अभाव और मोक्ष की भावना आदि।)

सैद्धान्तिक-प्रकरण

प्र.2085 आचार्य कौन-से अधिकारों के व्याख्यान द्वारा शास्त्र का व्याख्यान करते हैं?

उत्तर आचार्य; मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता इन छह अधिकारों के व्याख्यान द्वारा शास्त्र का व्याख्यान करते हैं। (धवल पु.1, पृ.7)

प्र.2086 मंगल शब्द कैसे बना है या मंगल का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है?

उत्तर 1.मंग-पुण्यं या सुखं, ल-लातीति ददातीति मंगलं। अर्थात् जो पुण्य या सुख को लाता है या देता है उसे मंगल कहते हैं।

2.मं-पापं, गल-गालयतीति मंगलं। अर्थात् जो पापों को गलाये वह मंगल है। (ध.पु.1,पृ. 33)

प्र.2087 मंगल शब्द के पर्यायवाची नाम कौन-कौन-से हैं?

उत्तर मंगल, पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, शुभ, कल्याण, भद्र और सौख्य इत्यादि मंगल शब्द के पर्यायवाची नाम हैं। (ध.पु.1,पृ.31)

प्र.2088 ज्ञानीजनों ने कार्य करने के कौन-कौन से स्थानों पर मंगल करने का विधान किया है?

उत्तर ज्ञानी पुरुषों ने प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करने का विधान किया है।(ध.पु.1,पृ.41)

प्र.2089 मंगल या मंगलाचरण क्या है?

उत्तर कार्य की निर्विघ्न सिद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान (वीतराग नवदेव- अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनश्रुत, जिनचैत्य और चैत्यालय) के गुणों का कीर्तन करना ही मंगल या मंगलाचरण कहलाता है। (ध.पु.1,पृ.41)

प्र.2090 यदि कोई कहे कि जिनेन्द्र भगवान के गुणों का कीर्तन (गायन, बखान) तथा नमस्कार व्यवहार नय का विषय है और शुभ-परिणाम रूप होने से मात्र पुण्य-बन्ध का ही कारण है, अतः मंगल नहीं करना चाहिए।

उत्तर ऐसा कहना अनुचित है, क्योंकि गौतम स्वामी ने व्यवहार नय का आश्रय लेकर 'कृति' आदि चौबीस अनुयोग द्वारों के आदि में 'णमो जिणाणं' इत्यादि रूप से मंगल किया है।

प्र.2092 यदि कोई व्यवहार नय को असत्य माने तो उसका उत्तर क्या है?

उत्तर उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसमें (मार्ग में) व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहार नय बहुत जीवों का अनुग्रह (उपकार) करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिए ऐसा अपने मन में निश्चय करके गौतम स्वामी ने चौबीस अनुयोग द्वारों के प्रारम्भ में मंगल किया है।(जयधवल पु.1,पृ.8)

प्र.2092 चौबीस अनुयोग द्वार कौन-से हैं?

उत्तर 1.कृति, 2.वेदना, 3.स्पर्शन, 4.कर्म, 5.प्रकृति, 6.बन्ध, 7.निबन्धन, 8.प्रक्रम, 9.अनुपक्रम, 10.अभ्युदय, 11.मोक्ष, 12.संक्रम, 13.लेश्या, 14.लेश्याकर्म, 15.लेश्या-परिणाम, 16.सातासात, 17.दीर्घह्रस्व, 18.भवधारणीय, 19.पुद्‌गलात्म, 20.निधत्तानिधत्त, 21.निकाचितानिकाचित, 22.कर्मस्थिति, 23.पश्चिमस्कन्ध और 24.अल्पबहुत्व। विशेष देखें (षट्खण्डागम भाग-4, धवल पु.9, पृ.822)

प्र.2093 अरहंत भगवान को किया गया नमस्कार क्या केवल पुण्यबन्ध का ही कारण है या निर्जरा का भी कारण है?

उत्तर अरहंत भगवन्तों का नमस्कार तत्कालीन पुण्य बन्ध की अपेक्षा असंख्यात-गुणी कर्म निर्जरा का कारण है। अतः सराग-संयम के समान अरहंत-गुण-कीर्तन व नमस्कार में मुनियों की सत्प्रवृत्ति देखी जाती है। क्योंकि कहा भी है कि- जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत (परमेष्ठी) को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है। (ज.ध., पु. 1, पृ.9)

प्र.2094 कोई कहता है कि शुभोपयोग से कर्मों की निर्जरा कैसे हो सकती है? उससे मात्र पुण्य बन्ध ही होता है।

उत्तर ऐसा नहीं; क्योंकि यदि शुभ और शुद्ध इन दोनों परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता।(जयधवल पु.1,पृ.6)

प्र.2095 आचार्य देव; शास्त्र व्याख्यान के पूर्व निमित्त का कथन किस तरह से किया करते हैं?

उत्तर आचार्य देव; शास्त्र व्याख्यान से पूर्व निमित्त का कथन करते हुए कहते हैं कि- भव्य जीव श्रुतज्ञान रूपी सूर्य के दीप्त तेज से छह द्रव्य और नव-पदार्थों को भली भांति जानें, इस निमित्त से श्रुतज्ञान रूपी सूर्य का उदय हुआ है अर्थात् यह ग्रन्थ प्रभु की वाणी से गणधरों ने रचा है। (ध.पु.1, पृ.55)

प्र.2096 आचार्य परमेष्ठी; शास्त्र कथन से पूर्व हेतु-फल का महत्त्व किस तरह बतलाते हैं?

उत्तर आचार्य परमेष्ठी; शास्त्र कथन से पूर्व हेतु अर्थात् फल का महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं कि- अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, देव-मनुष्यादि के द्वारा निरन्तर पूजा का होना और प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा का होना (स्वाध्याय, शास्त्राभ्यास या ग्रन्थ रचना का) साक्षात्-प्रत्यक्ष फल है।

यह जिनागम जीव के मोह रूपी ईंधन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान है, अज्ञान

रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है, कर्म-मल अर्थात् द्रव्य-कर्म (ज्ञानावरणादि) और कर्म-कलुष अर्थात् भाव-कर्म (रागद्वेषादि) को मार्जन करने वाला समुद्र के समान है और परम सुभग (प्रिय) है। (ध.पु.1,पृ.59)

प्र.2097 शास्त्र या शब्दों से ज्ञान कैसे हो सकता है क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का गुण है? अतः शास्त्र ज्ञान से क्या लाभ है?

उत्तर सिद्धान्त ग्रन्थों में आचार्यों ने कहा है कि शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है। अर्थ के निर्णय से तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है और तत्त्वज्ञान से परमकल्याण होता है।(धवल पु.1,पृ.10)

प्र.2098 आचार्य भगवन्; शास्त्र व्याख्यान के पूर्व शास्त्र परिमाण की व्याख्या किस तरह से करते हैं?

उत्तर आचार्य भगवन्; कहते हैं कि- अक्षर, पद और समास आदि की अपेक्षा या गाथा, सूत्र और श्लोक की अपेक्षा शास्त्र का परिमाण संख्यात है तद्वाच्य विषय की अपेक्षा शास्त्र का परिमाण अनंत है।

प्र.2099 आचार्य परमेष्ठी द्वारा शास्त्र नाम की व्याख्या किस तरह से की जाती है?

उत्तर आचार्य परमेष्ठी द्वारा व्याख्यान योग्य किसी शास्त्र का नाम रखा जाना या उसके नाम का कथन किया जाना नाम अधिकार कहलाता है। जैसे- इस शास्त्र का नाम 'आगम-अनुयोग' है।

प्र.2100 आचार्य देव; शास्त्र-व्याख्यान से पूर्व शास्त्र-कर्त्ता का व्याख्यान किस तरह से करते हैं?

उत्तर आचार्य देव; शास्त्र व्याख्यान से पूर्व कहते हैं कि- अर्थ कर्त्ता और ग्रन्थकर्त्ता के भेद से कर्त्ता दो प्रकार के होते हैं। तीर्थंकर श्री 1008 महावीर भगवान अर्थकर्त्ता हैं। श्री 108 गौतमस्वामी गणधर देव द्रव्य श्रुत के कर्त्ता हैं। इस तरह केवली, श्रुतकेवली और अंगादि श्रुत के धारियों की परम्परा से आता हुआ श्रुत क्षीण-क्षीण होता गया और वह ज्ञान आचार्यश्री विद्यासागरजी से आचार्यश्री आर्जवसागर को मिला। इस 'आगम-अनुयोग' कृति के कर्त्ता का नाम है- आचार्य आर्जवसागर।

प्र.2101 प्रमाण के भेद रूप स्वार्थ और परार्थ से क्या तात्पर्य है?

उत्तर श्रुतज्ञान को छोड़कर शेष मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान स्वार्थ प्रमाण है तथा श्रुतज्ञान स्वार्थ प्रमाण भी है और परार्थ प्रमाण भी है। ज्ञानात्मक श्रुत स्वार्थ प्रमाण है और वचनात्मक श्रुत परार्थ प्रमाण है।

प्र.2102 वचनात्मक श्रुत के विकल्पों (भेदों) को क्या कहते हैं?

उत्तर वचनात्मक श्रुत के विकल्पों को नय कहते हैं। नयों का वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है।

प्र.2103 नयों की दृष्टि में प्रमाण को प्रधानता क्यों है?

उत्तर क्योंकि नयों की उत्पत्ति में प्रमाण कारण होने से वह प्रधान है। प्रमाण के द्वारा पदार्थों को जानकर उसके विशेष अर्थ की अवधारणा करना नय कहलाता है। (स.सि.अ.1,सू.6)

प्र.2104 प्रमाण और नयों द्वारा जाने गये जीवादि पदार्थों के ज्ञान के उपरान्त जीवादि या सम्यग्दर्शनादि

को जानने के दूसरे भी कोई उपाय हैं क्या? अगर आगम में हैं तो बतलाइये।

उत्तर हाँ! हैं; निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान के द्वारा भी सम्यग्दर्शनादि विषयों का ज्ञान होता है।

प्र.2105 निर्देशादि का लक्षण क्या है संक्षिप्त में समझाइये?

उत्तर 1.किसी वस्तु के स्वरूप या नाम का कथन करना **निर्देश** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन है।

2. किसी वस्तु के स्वामी का कथन करना **स्वामित्व** कहलाता है। जैसे- सम्यग्दर्शन का स्वामी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भव्य जीव है।

3. किसी वस्तु की उत्पत्ति के कारण या निमित्त बतलाना **साधन** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण जिन बिम्ब दर्शन, धर्मोपदेश व जातिस्मरण आदि हैं।

4. किसी वस्तु का आधार बतलाना **अधिकरण** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन; संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भव्य के आधार से रहता है और सम्यग्दृष्टि आत्मा लोक के आधार से रहती है।

5. किसी वस्तु के रहने के काल की मर्यादा (सीमा) बतलाना **स्थिति** कहलाती है। जैसे-सम्यग्दर्शन के भेद उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक की अपेक्षा क्रमशः अन्तर्मुहूर्त्त, अन्तर्मुहूर्त्त से लेकर छ्यासठ सागरोपम, संसार में रहने की अपेक्षा एक, दो, तीन व चार भव या मोक्ष की अपेक्षा अनन्तकाल की स्थिति होती है।

6. किसी वस्तु के भेद-प्रभेद बतलाना **विधान** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन के उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक रूप तीन भेद। निसर्गज और अधिगमज रूप से दो भेद। सराग-वीतराग रूप से भी दो भेद और आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ और परमावगाढ़ रूप दस भेद हैं। (विशेष-गति आदि के भेद से देखें-सर्वार्थसिद्धि अ.1,सू.7)

प्र.2106 नरकगति में प्रथम भूमि में अपर्याप्त अवस्था में वेदक सम्यग्दर्शन या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन किस तरह घटित होता है?

उत्तर जिस जीव ने मिथ्यात्व अवस्था में नरकायु का बंध किया था, तदुपरांत केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में दर्शन मोह का क्षपण प्रारम्भ किया और चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करके कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त हुआ परन्तु सम्यक्प्रकृति का वेदन कर रहा है, अतः वेदक सम्यग्दृष्टि है, ऐसा कर्मभूमिया मानव वेदक सम्यग्दर्शन से युक्त मरणकर प्रथम नरक में गया तथा अन्तर्मुहूर्त्त के बाद पर्याप्ति पूर्ण कर सम्यक्प्रकृति का क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन जाता है, अतः कृतकृत्य वेदक की अपेक्षा प्रथम नरक में अपर्याप्त अवस्था में वेदक सम्यग्दर्शन क्षायोशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है। वास्तव में अपर्याप्त अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है।

प्र.2107 सम्यक्प्रकृति के क्षय करने में कितना काल आपेक्षित है? और कृतकृत्य वेदक कब तक कहलाता है?

उत्तर सम्यक्प्रकृति के क्षय करने में छह आवली काल लगता है और बीच में ही मरण हो जाये तो मरण से पूर्व मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय कर कृतकृत्य संज्ञा को प्राप्त जीव और सम्यक् प्रकृति का वेदन करता हुआ छह आवली के अन्दर ही अपर्याप्त अवस्था में कृतकृत्य वेदक कहलाता हुआ पुनः पर्याप्त होकर सम्यक् प्रकृति का क्षय कर देता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन जाता है।

प्र.2108 स्त्री पर्याय में क्षायिक सम्यग्दर्शन घटित होता है क्या?

उत्तर सम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति स्त्री पर्याय में नहीं होती। मनुष्यिनी के क्षायिक सम्यग्दर्शन का जो कथन है वह भाव स्त्री की अपेक्षा से है। अर्थात् नाम कर्म के उत्पन्न पुरुषाकार चिह्न से युक्त द्रव्य से जो पुरुष लिंगी है परन्तु चारित्र मोहनीय कर्म से उत्पन्न भाववेद की अपेक्षा स्त्रीवेदी है, उसके क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है अतः स्त्रीवेदी के (भाववेद की अपेक्षा) तीनों सम्यग्दर्शनों का कथन किया है।

प्र.2109 जब उपशम सम्यग्दर्शन सहित प्राणी का मरण नहीं होता तब देवों को अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन कैसे घटित हो सकता है?

उत्तर जो भव्य मनुष्य चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम करके या करते हुए उपशम श्रेणी में मरण कर देव होते हैं, उन देवों को अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् यद्यपि मिथ्यात्व पूर्वक उपशम (प्रथमोपशम) सम्यग्दर्शन सहित प्राणी का मरण नहीं होता किन्तु वेदक सम्यक्त्व पूर्वक उपशम सम्यग्दर्शन (द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन) सहित प्राणी का तो मरण हो सकता है। क्योंकि द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन युक्त मुनिराज उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होते हैं तथा श्रेण्यारोहण के समय चारित्रमोह के उपशम के साथ मरण होने पर विग्रह गति में अपर्याप्त देवों के भी उपशम सम्यग्दर्शन हो सकता है।

प्र.2110 कौन-से देव और देवांगनाओं में क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता? तथा भवनत्रिक देव एवं सभी तरह की देवांगनाओं की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दर्शन सम्बन्धी क्या नियम है?

उत्तर भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों एवं उनकी देवांगनाओं के तथा सौधर्म, ऐशान कल्पवासी देवांगनाओं के क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता। उनके पर्याप्त अवस्था में औपशमिक और क्षायोपशमिक ये दो सम्यग्दर्शन हो सकते हैं- अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यादर्शन रहता है। अतः इनके अपर्याप्त अवस्था में कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं होता क्योंकि व्यन्तर, भवनवासी, ज्योतिषी इन तीन प्रकार के देवों में तथा सर्व चारों प्रकार के देवों की देवांगनाओं में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते हैं। (स.सि.अ. 1, सूत्र 7)

प्र.2111 क्षयोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल 66 सागरोपम किस तरह घटित होता है?

उत्तर जैसे कोई एक जीव उपशम सम्यग्दर्शन से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर शेष भुज्यमान आयु से कम बीस सागरोपम आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ। पुनः मनुष्यों में उत्पन्न होकर मनुष्य भव के सुखों का

अनुभव कर मनुष्यभव की आयु से कम बाईस सागरोपम की आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ फिर मनुष्य गति में जाकर भुज्यमान मनुष्यायु से तथा दर्शनमोह की क्षपणा पर्यन्त आगे भोगी जानी वाली मनुष्य आयु से कम चौबीस सागरोपम-प्रमाण आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से फिर मनुष्य गति में आकर वहाँ वेदक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त्त रह जाने पर दर्शनमोह की क्षपणा प्रारम्भ करके कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होकर कृतकृत्य वेदक के अन्तिम समय तक स्थिर रहता है तब क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागरोपम घटित होता है।

प्र.2112 पदार्थों के जानने के उपायों में आपने जिस तरह संक्षेप में निर्देश आदि का स्वरूप बतलाया है वैसे ही अब अन्य तरह से वर्णित सत्, संख्या आदि का स्वरूप भी बतलाइये?

उत्तर सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व रूप आठ अनुयोग-द्वारों से भी जीवादि पदार्थों या सम्यग्दर्शनादि का ज्ञान होता है।

प्र.2113 सत्, संख्यादि आठ अनुयोग-द्वारों का लक्षण क्या है? उदाहरण सह इनका स्वरूप भी संक्षेप में अवश्य समझाइये?

उत्तर **1. अस्तित्व का निर्देशक शब्द सत् कहलाता है।** जैसे- जीव सामान्य (ओघ) रूप गुणस्थानों की अपेक्षा से चौदह गुणस्थानों में स्थित है, या कौन-कौन-से जीव कौन-कौन-से गुणस्थानों में स्थित हैं और विशेष रूप मार्गणाओं की अपेक्षा किन-किन गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव पाये जाते हैं इत्यादि। (विशेष देखें- सर्वार्थसिद्धि अ.1, सू.8), (धवलग्रंथ)

2. भेद-गणना को संख्या कहा जाता है। जैसे- कौन-कौन-से गुणस्थान में कितनी संख्या में जीव पाये जाते हैं और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले कितनी-कितनी संख्या में जीव पाये जाते हैं इत्यादि।

3. वर्तमान कालीन विषय निवास क्षेत्र कहलाता है। जैसे- कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीवों के रहने का क्षेत्र कितना है और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं इत्यादि।

4. त्रिकाल गोचर (संबन्धित) निवास क्षेत्र को स्पर्श या स्पर्शन कहते हैं। जैसे- कौन-कौन से गुणस्थान वाले जीवों ने किस-किस अपेक्षा से लोक के कितने-कितने स्थान का स्पर्श किया और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव लोक के कितने भाग का स्पर्श करते हैं इत्यादि।

5. समय की मर्यादा पूर्वक जीवों की गणना करने को काल (या व्यवहार काल) कहा जाता है। जैसे- कौन-कौन-से गुणस्थानों में जीवों के रहने का काल कितना-कितना है और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव कितनी-कितनी काल मर्यादा तक रहते हैं

इत्यादि।

6. विरहकाल (अन्तराल-काल) को अन्तर कहते हैं। अर्थात् एक अवस्था को छोड़कर जीव बीच में कितनी ही अन्य अवस्थाओं को प्राप्त कर पुनः उसी अवस्था को प्राप्त करता है, इस तरह दोनों अवस्थाओं के बीच का जो विरह या अन्तराल काल है उसे अन्तर कहते हैं।

जैसे- किस गुणस्थान में जीव बीच में किसी अन्य गुणस्थान को पाकर पुन- स्व स्थान में कितने समय पश्चात् लौटकर आता है और किस मार्गणा के किस गुणस्थान से किस गुणस्थान को पाकर पुनः अपने गुणस्थान को कितने काल के उपरान्त प्राप्त करता है इत्यादि।

7. **औपशमिक और क्षायोपशमिक आदि भाव को (या वस्तु की गुणवत्ता को) भाव कहा जाता है।** जैसे- जीव का यह गुणस्थान ही इस भाव रूप है या इस गुणस्थान में औपशमिक आदि इतने भाव होते हैं, और मार्गणानुसार इस गति के इस गुणस्थान में इतने भाव होते हैं इत्यादि।

8. अन्य की अपेक्षा से जो विशेष ज्ञान रूप प्रतिपत्ति होती है उसको अल्पबहुत्व कहते हैं। जैसे- किस गुणस्थान में किस गुणस्थान की अपेक्षा कितने न्यून या कितने अधिक जीव हैं और किस मार्गणा के किस गुणस्थान में कितने न्यूनाधिक जीव रहते हैं इत्यादि। विशेष देखें (सर्वार्थसिद्धि अ.1, सूत्र 8), (धवलग्रन्थ)

प्र.2114 एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्रिय तक या असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान क्यों कहा है?

उत्तर क्योंकि उनमें इन्द्रिय विकलता होने से और ईषत्-इन्द्रिय रूप मन का अभाव होने से तत्त्वों के ज्ञान करने की वा समझने की सामर्थ्य नहीं होती अर्थात् देशना लब्धि की योग्यता नहीं पायी जाती है, अतः वे एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वाले ही कहलाते हैं।

प्र.2115 स्त्री, पुरुष और नपुंसक रूप तीनों वेदों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति बादर तक नौ ही गुणस्थान क्यों बतलाये हैं?

उत्तर क्योंकि वेद चारित्र मोहनीय के भेद हैं और चारित्रमोहनीय का उदय नवमें गुणस्थान तक ही रहता है, आगे नहीं।

प्र.2116 सयोग केवली और अयोग केवली संज्ञी और असंज्ञी नाम से रहित क्यों हैं?

उत्तर संज्ञी-पने में कारण मन है और मन ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से होता है, परन्तु तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण कर्म का क्षय है अतः भाव मन के अभाव होने से वे केवली तथा मन, वचन, काय रूपी योग रहित अयोग केवली संज्ञी-असंज्ञी व्यपदेश से रहित हैं।

प्र.2117 आहारकों में कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर आहारकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली तक तेरह गुणस्थान होते हैं।

प्र.2118 विग्रह गति को प्राप्त अनाहारकों में कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर विग्रह गति को प्राप्त अनाहारकों में मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि ये तीन गुणस्थान होते हैं।

प्र.2119 समुद्घात गत सयोग केवली और अयोग केवली की आहारक और अनाहारक के क्षेत्र में क्या व्यवस्था है?

उत्तर समुद्घात गत सयोगकेवली और अयोग केवली अनाहारक होते हैं।

प्र.2120 आगम में आहार कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर आगम में आहार छह प्रकार का कहा गया है- 1.कवलाहार, 2.मानसिक-आहार, 3.ओजाहार, 4.लेपाहार, 5.कर्माहार और 5.नोकर्माहार।

प्र.2121 कवलाहार किसे कहते हैं और वह किन जीवों के होता है?

उत्तर ग्रास लेकर रसना इन्द्रिय के द्वारा जो खाया जाता है उसे कवलाहार कहते हैं, जो दो इन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य किया करते हैं।

प्र.2122 मानसिकाहार किसे कहते हैं और वह किन जीवों द्वारा किया जाता है?

उत्तर कण्ठ में अमृत झर जाना मानसिक आहार कहलाता है। जैसे- खाने की इच्छा होने पर देवों के कण्ठ में अमृत झर जाना।

प्र.2123 ओजाहार किसे कहते हैं और वह किसके होता है?

उत्तर अण्डज पक्षियों द्वारा ऊर्जा या उष्णता प्राप्त होने रूप जो आहार होता है वह ओजाहार कहलाता है। जैसे-अण्डों पर पंख फैलाकर मादा पक्षी द्वारा ऊर्जा का दिया जाना।

प्र.2124 लेपाहार किसे कहते हैं और वह किसके होता है?

उत्तर मिट्टी, जल के लेप या सम्पर्क से जीवन संवर्धित होना लेपाहार कहलाता है। जैसे- मिट्टी और जल के सम्पर्क से वनस्पति वृद्धि को प्राप्त होती है।

प्र.2125 कर्माहार किसे कहते हैं और वह किसके होता है?

उत्तर जीव के परिणामों द्वारा प्रतिक्षण कर्म वर्गणाओं का ग्रहण किया जाना कर्माहार कहलाता है। जैसे- नारकी जीवों का अन्य आहारों के बिना कर्म वर्गणाओं के ग्रहण रूप कर्माहार ही होता है।

प्र.2126 नोकर्माहार किसे कहते हैं और वह किस जीव के होता है?

उत्तर तीन शरीर (औदारिक, वैक्रियिक और आहारक) छह पर्याप्ति (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन) के योग्य पुद्गल वर्गणाओं का ग्रहण नोकर्माहार कहलाता है। जैसे- ऐसा आहार विग्रहगति और केवली समुद्घात को छोड़कर सर्व संसारी जीवों के प्राप्त होता है।

प्र.2127 प्रथम गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में रहने वाले जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर ✡ मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं।

✡ सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयातासंयत इनमें से प्रत्येक गुणस्थान वाले जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। (जो कि पूर्व कोटि से अधिक कहना चाहिए।)

प्र.2128 प्रमत्त-संयत और अप्रमत्त-संयत मुनीश्वरों की संख्या कितनी है? अर्थात् छठे और सातवें गुणस्थान में कितने-कितने जीव हैं।

उत्तर प्रमत्त-संयतों की संख्या कोटि पृथक्त्व है अर्थात् पाँच करोड़ तिरानवै लाख अठानवै हजार दो सौ छह हैं (अंकों में 5,93,98,206 है)।

अप्रमत्त-संयत संख्यात हैं अर्थात् दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन हैं (अंकों में 2,96,99,103 हैं)।

प्र.2129 चारों उपशमक अर्थात् आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान के मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर चारों उपशमक गुणस्थान वाले मुनीश्वर प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्ट रूप से चौवन हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुए उक्त जीव संख्यात अर्थात् प्रत्येक गुणस्थान में 299 और कुल 1196 हैं (शब्दों में ग्यारह सौ छ्यानवे हैं)।

प्र.2130 चारों क्षपक अर्थात् आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर चारों क्षपक मुनीश्वर प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुए उक्त जीव संख्यात हैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थान में 598 और कुल 2392 हैं। (शब्दों में तेइस सौ बानवे) हैं।

प्र.2131 सयोग केवली गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर सयोग केवली गुणस्थानवर्ती जीव प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुये उक्त जीव लाख पृथक्त्व हैं अर्थात् 8,98,502 हैं (शब्दों में आठ लाख अंठानवे हजार पाँच सौ दो हैं)।

प्र.2132 अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीव प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं। उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुये जीव संख्यात हैं अर्थात् कुल 598 हैं। (शब्दों में पाँच सौ अंठानवे) (विशेष देखें- स.सि.अ.1 सू. 8)

प्र.2133 छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक रहने वाले नग्न दिगम्बर मुनीश्वर-संयतों की कुल संख्या कितनी है?

उत्तर छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक रहने वाले सम्यग्दृष्टि निर्ग्रन्थ मुनीश्वर-संयतों की

उत्कृष्ट संख्या 8,99,99,997 (शब्दों में आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे है। अर्थात् तीन कम नौ करोड़ होती है।)

प्र.2134 मुनियों के सम्पूर्ण गुणस्थानों की संख्या बतलाते समय यह उत्कृष्ट संख्या है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर प्रमत्त संयत आदि मुनीश्वर उत्कृष्ट रूप से यदि एक समय में एकत्र होते हैं तो उनकी संख्या तीन कम नौ करोड़ होती है।

कारण यह है कि जो जीव आठ समयों में इन श्रेणियों के आठवें गुणस्थान में चढ़े हैं वे ही अन्तर्मुहूर्त्त बाद नौवें गुणस्थान में पहुँचते हैं। इसी तरह आगे भी जानना चाहिए और इस प्रकार समय भेद से अन्तर्मुहूर्त्त के भीतर सब संयत मुनीश्वरों की संख्या 8,99,99,997 सिद्ध हो जाती है, ऐसा उत्कृष्ट संख्या का अभिप्राय है।

प्र.2135 क्या अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग के देव नीचे अधोलोक सम्बंधी तीसरी पृथ्वी तक जाकर नारकियों के लिए सम्बोधन दे सकते हैं?

उत्तर हाँ! परस्थान विहार की अपेक्षा नारकियों को सम्बोधन करने के लिए (सासादन गुणस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि) अच्युत स्वर्ग के देव तीसरी पृथ्वी तक नारकियों को सम्बोधन करने के लिए जाते हैं। तीसरी पृथ्वी सोलहवें स्वर्ग से आठ राजू है अतः परस्थान विहार की अपेक्षा कुछ कम 14 राजू में से 8 राजू स्पर्श होता है।

प्र.2136 मनुष्य गति में प्रथम गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में रहने वाले जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर 1. प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में असंख्यात मनुष्य जीव हैं।

2 .द्वितीय सासादन गुणस्थान में बावन करोड़ मनुष्य हैं।

3. तृतीय सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में एक सौ चार करोड़ मनुष्य हैं।

4. चतुर्थ असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं।

5. पंचम संयतासंयत गुणस्थान में तेरह करोड़ मनुष्य हैं।

प्र.2137 काय मार्गणा की अपेक्षा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की संख्या असंख्यात लोक प्रमाण है, अर्थात् पूर्ण लोक इन पृथ्वीकायिक आदि के सूक्ष्म अथवा बादर भेदों से भरा हुआ है।

प्र.2138 वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या अनन्तानन्त है।

प्र.2139 त्रस काय अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या असंख्यात-असंख्यात है।

प्र.2140 औपशमिक सम्यग्दर्शन के साथ मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद (उत्पत्ति-जन्म) सम्भव है क्या है?

उत्तर औपशमिक सम्यग्दर्शन के साथ किसी भी गति में मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद सम्भव नहीं है, परन्तु उपशम श्रेणी में होने वाले द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के साथ मनुष्यों का ऐसा मारणान्तिक समुद्घात एवं उपपाद सम्भव है।

प्र.2141 असंयत सम्यग्दृष्टि का अन्तमुहूर्त्त कम एक पूर्व कोटि अधिक एक समय कम तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट काल कैसे घटित होता है?

उत्तर जो उपशम श्रेणी वाला जीव मरण कर एक समय कम तेतीस सागरोपम की आयु लेकर अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है, फिर पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में जन्म लेकर जीवन भर असंयम के साथ रहा है, केवल जीवन में अन्तर्मुहूर्त्त काल शेष रहने पर संयम को प्राप्त होकर सिद्धपद को प्राप्त होता है, उस जीव के असंयत सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल घटित होता है(स.सि.,अ.1 सू. 8)

प्र.2142 संयमासंयम का अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पूर्वकोटि उत्कृष्ट काल कैसे घटित होता है?

उत्तर पूर्वकोटि की आयु वाला जो सम्मूर्छिम तिर्यञ्च उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त्त बाद क्षयोपशम सम्यग्दर्शन के साथ संयमासंयम को प्राप्त करता है, उस जीव के संयमासंयम का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पूर्व कोटि घटित होता है।

प्र.2143 अधोलोक सम्बन्धी सातों पृथ्वियों में सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल कैसे घटित होता है?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में सम्यक्त्व के साथ जन्म लेकर पूर्ण आयु एक सागरोपम पर्यन्त सम्यक्त्व के साथ घटित होता है और सम्यक्त्व के साथ निकल भी सकता है। अथवा कोई जीव प्रथम पृथ्वी में या छह पृथ्वियों में मिथ्यात्व के साथ उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त्त बाद सम्यक्त्व को प्राप्त कर जीवन पर्यन्त सम्यक्त्व के साथ रह सकता है। लेकिन सातवी पृथ्वी में प्रवेश और उससे निर्गम मिथ्यात्व के साथ होता है बीच के काल में सम्यक्त्व के साथ बने रहने में कोई बाधा नहीं होती है। अतः प्रथम पृथ्वी में उस पृथ्वी की पूर्ण आयु पर्यन्त समयक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति (काल), द्वितीय से लेकर छठी पृथ्वी तक प्रारम्भ के अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्ण आयु तक सम्यक्त्व की स्थिति का काल और सातवी पृथ्वी में प्रारम्भ और अंत के अन्तर्मुहूर्त्त कम अपनी पूर्ण आयु पर्यन्त सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल घटित होता है। (एक अन्तर्मुहूर्त में लघु अनेक अन्तर्मुहूर्त्त घटित हो सकते हैं।)

प्र.2144 एक सादिसान्त मिथ्यादृष्टि जीव का मिथ्यात्व का उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन कैसे घटित होता है?

उत्तर जैसे कोई भव्य जीव अल्प कालिक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण उपशम सम्यक्त्व के काल को बिताकर पुनः मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर मिथ्यादृष्टि हुआ और मिथ्यात्व के साथ कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल संसार में परिभ्रमण कर अन्तिम भव में मनुष्य हुआ और संसार परिभ्रमण के

अन्तिम अन्तर्मुहूर्त्त (जिसमें लघु अनेक अन्तर्मुहूर्त्त होते हैं) में संयम धारण का क्षपक श्रेणी में शुक्लध्यान के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष पा लेता है। तब सादिसान्त मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन घटित होता है।

प्र.2145 लघु अन्तर्मुहूर्त्त से क्या तात्पर्य है और इसमें किस तरह से मोक्ष जाने तक कौन-कौन से कार्य हुआ करते हैं?

उत्तर समय, आवलि से लेकर 48 मिनट में एक समय कम रहने तक एक ही अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है। परन्तु इस अन्तर्मुहूर्त्त में अनेक लघु अन्तर्मुहूर्त्त हुआ करते हैं। जैसे- 1.पाँच प्रकृति का उपशम कर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पाना, 2.तीन करण कर प्रथमोशम सम्यक्त्व को प्राप्त करना, 3.वेदक सम्यक्त्व को पाना, 4.अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करना, 5.दर्शनमोहनीय का क्षय करना, 6.अप्रमत्तसंयत होना, 7.प्रमत्ताप्रमत्त में पुनरावृत्ति होना, 8.क्षपक श्रेणी हेतु अधः प्रवृत्तकरण करना, 9.अपूर्वकरण क्षपक होना, 10.अनिवृत्तिकरण क्षपक होना, 11.सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक होना, 12. क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ क्षपक होना, 13.सयोगकेवली होना, 14.अयोगकेवली होकर सिद्ध पद पाना। इस तरह तेरह कार्य हेतु13 अन्तर्मुहूर्त्त एक बड़े अन्तर्मुहूर्त्त में हुआ करते हैं।

प्र.2146 मनुष्य गति में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का काल एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट रूप से पूर्वकोटि पृथक्त्व अर्थात् सैंतालीस पूर्वकोटि से अधिक तीन पल्योपम कैसे घटित होता है?

उत्तर इसका समाधान यह है कि किसी जीव ने नपुंसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद के साथ आठ-आठ बार पूर्वकोटि की आयु से उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त्त के अन्दर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के आठ क्षुद्र भव धारण किये, उसके पश्चात् उस जीव ने पुनः नपुंसकवेद और स्त्री वेद के साथ आठ-आठ भव पूर्व-कोटि की आयु के साथ धारण किये, किन्तु पुरुषवेद के साथ सात, सात बार ही पूर्वकोटि की आयु में उत्पन्न हुआ उसके बाद भोगभूमि में तीन पल्योपम की आयु को प्राप्त किया और तत्पश्चात् वह देव हो गया। इस तरह उस जीव के एक अन्तर्मुहूर्त्त तीन पल्योपम अधिक सैंतालीस पूर्वकोटि काल घटित होता है।

प्र.2147 क्षुद्र-भव का अर्थ क्या है एवं एक अन्तर्मुहूर्त्त में कितने क्षुद्र-भव धारण हो सकते हैं?

उत्तर जब एक मुहूर्त के भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्त में एकेन्द्रिय होकर कोई जीव छियासठ हजार एक सौ बत्तीस बार जन्म मरण करता है तथा वही जीव उसी मुहूर्त्त में दो इन्द्रिय के अस्सी, तीन इन्द्रिय के साठ, चौइन्द्रिय के चालीस और पञ्चेन्द्रिय के चौबीस जन्म मरण धारण करता है। तब ये सभी क्षुद्र-भव मिलकर छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस जन्म मरण रूप होते हैं। तब एक उच्छ्वास में जो अठारह बार जन्म मरण प्राप्त होते हैं उसमें से एक की ही संज्ञा क्षुद्रभव है।

प्र.2148 आयु स्थिति और भव स्थिति किसे कहते है?

उत्तर अनेक जन्मों की आयु स्थिति का युगपत् कथन भव स्थिति कहलाता है और एक जन्म की स्थिति

आयुस्थिति कहलाती है जैसे-मनुष्यों के लगातार आठ भव का कथन भव स्थिति है और मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कहना यह आयु स्थिति है।

प्र.2149 पञ्चेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टि अवस्था के एक सामान्य पर्याप्तक अपर्याप्तक जीव की अपेक्षा कितना उत्कृष्ट काल घटित होता है?

उत्तर पञ्चेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त हुआ जीव जब तक अन्य इन्द्रिय (विकलेन्द्रिय या स्थावर) अवस्था को प्राप्त न हो जावे तब तक पञ्चेन्द्रिय जीव का उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। ऐसे पञ्चेन्द्रिय जीव का उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व(छियानवे पूर्वकोटि) से अधिक एक हजार सागरोपम है। जैसे- जो जीव नपुंकसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद में संज्ञी रूप से आठ-आठ बार एक पूर्वकोटि की आयु लेकर उत्पन्न होता है। मध्य में अन्तर्मुहूर्त्त में आठ बार क्षुद्र-भव धारी पंचेन्द्रिय होता है। पुनः दूसरी बार नपुंसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद में संज्ञी और असंज्ञी के रूप में अड़तालीस पूर्वकोटि आयु घटित करना, इस तरह छियानवे पूर्व कोटि और सौधर्म, माहेन्द्र और प्रथम पृथ्वी में चार-चार बार उत्पन्न होने से तथा द्वितीयादिक छह पृथ्वियों में ब्रह्म कल्प से आदि लेकर आरणाच्युत कल्प तक के देवों में पाँच-पाँच बार उत्पन्न होने से (सात पृथ्वियों में 4 + 15 +35 + 50 + 85 + 110 +165 =464, सौधर्म कल्प, माहेन्द्र आदि कल्पों में 8 + 28 + 50 + 70 + 80 + 90 + 100 + 110 = 536 अर्थात् 464 + 536 = 1000 सागरोपम) उत्कृष्ट काल छियानवे पूर्वकोटि अधिक एक हजार सागरोपम पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि सामान्य अर्थात् पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव का घटित होता है। इसी विषय के लिए चार्ट से समझें-

पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के एक हजार सागरोपम

(प्रथमादि पृथ्वियों संबंधी)

क्र	किस पृथ्वी में	कितनी बार	पृथ्वियों में उत्कृष्ट आयु	कुल आयु
1.	प्रथम पृथ्वी	4 बार	1 सागरोपम	4 सागरोपम
2.	द्वितीय पृथ्वी	5 बार	3 सागरोपम	15 सागरोपम
3.	तृतीय पृथ्वी	5 बार	7 सागरोपम	35 सागरोपम
4.	चतुर्थ पृथ्वी	5 बार	10 सागरोपम	50 सागरोपम
5.	पंचम पृथ्वी	5 बार	17 सागरोपम	85 सागरोपम
6.	षष्ठम पृथ्वी	5 बार	22 सागरोपम	110 सागरोपम
7.	सप्तम पृथ्वी	5 बार	33 सागरोपम	165 सागरोपम
		सातों पृथ्वियों में कुल आयु-		464 सागरोपम

सौधर्मादि कल्पों संबंधी

क्र.	किस कल्प में	आयु सागरोपम	कितनी बार	कुल आयु
1.	सौधर्म-ईशान	2 सागरोपम	4 बार	8 सागर
2.	सानत्कुमार-माहेन्द्र	7 सागरोपम	5 बार	28 सागर
3.	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	10 सागरोपम	5 बार	50 सागर
4.	लांतव-कपिष्ठ	14 सागरोपम	5 बार	70 सागर
5.	शुक्र-महाशुक्र	16 सागरोपम	5 बार	80 सागर
6.	शतार-सहस्रार	18 सागरोपम	5 बार	90 सागर
7.	आनत-प्राणत	20 सागरोपम	5 बार	100 सागर
8.	आरण-अच्युत	22 सागरोपम	5 बार	110 सागर
			आठों कल्पों में जीवों की कुल आयु -	536 सागरोपम

प्र.2150 संयतासंयत का एक जीव की अपेक्षा कुछ अधिक (साधिक) छियासठ सागरोपम अन्तर काल किस तरह से घटित होता है?

उत्तर एक जीव मनुष्य पर्याय में उत्पन्न हुआ। आठ वर्षोपरान्त एक साथ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और संयमासंयम को प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त्त संयम को प्राप्त करके अन्तर को प्राप्त हुआ। संयम के साथ पूर्वकोटि काल बिताकर तैतीस सागरोपम की आयु के साथ देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटि आयु के साथ मनुष्य हुआ। पुनः संयम धारण कर और मरण कर तैतीस सागरोपम की आयु लेकर देव हुआ। वहाँ से च्युत हो पुनः पूर्वकोटि आयु लेकर मनुष्य हुआ। वहाँ दीर्घकाल तक रहकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। इस तरह आठ वर्ष कुछ अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पूर्वकोटि अधिक छियासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर काल एक जीव की अपेक्षा संयमासंयम का काल घटित होता है। (ध.पु.5, पृ.116)

प्र.2151 संयमासंयम से पुनः संयमासंयम प्राप्ति हेतु उत्कृष्ट अन्तरकाल के बीच एक अपेक्षा से 3 अन्तर्मुहूर्त्त या 12 अन्तर्मुहूर्त्त कौन से हो सकते हैं?

उत्तर संयमासंयम से पुनः संयमासंयम प्राप्ति के बीच आठ वर्ष कम तीन पूर्वकोटि अधिक छियासठ सागरोपम अन्तर काल के साथ 3 या 12 अन्तर्मुहूर्त्त इस तरह हो सकते हैं- 1.संयम धारण, 2.क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और 3.अवधिज्ञान की प्राप्ति। या 1.संयमधारण 2.मनुष्यगति से मरण, 3.देवगति में जन्म, 4.देवगति में मरण, 5.मनुष्य गति में जन्म, 6.मनुष्य गति से मरण, 7.देवगति में जन्म, 8.देवगति से मरण, 9.मनुष्य गति में जन्म, 10.क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्ति, 11.अवधिज्ञान प्राप्ति और 12. संयमासंयम की प्राप्ति। (यह चिंतन स्वतन्त्र रूप है)

प्र.2152 सिद्धांत में कौन-से गुणस्थान में कौन-सा भाव घटित होता है?

उत्तर सिद्धांत में सामान्य की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान औदायिक भाव है। सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पारिणामिक भाव है; क्योंकि सासादन सम्यक्त्व यह दर्शनमोहनीय कर्म के उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशम से नहीं होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान यह क्षायोपशमिक भाव है; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व कर्म का उदय होने से श्रद्धानाश्रद्धात्मक मिश्र अवस्था जीव का परिणाम है, उसमें श्रद्धानांश यह सम्यक्त्व रूप अंश है, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व कर्म का उदय उसका अभाव करने में असमर्थ है, इसलिए सम्यक्त्व-मिथ्यात्व यह क्षायोपशमिक भाव है।

असंयत नामक चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये तीनों भाव होते हैं; क्योंकि उस गुणस्थान का कथन दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से है, अतः दर्शनमोह के क्षयादि से होने वाले तीनों सम्यक्त्व उस गुणस्थान में होते हैं, इस कारण उस गुणस्थान में तीनों भाव हैं, परंतु उसमें असंयतपना औदायिक भाव की अपेक्षा से है। संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत ये क्षायोपशमिक भाव हैं। यह चारित्र मोहनीय की अपेक्षा वर्णन है। चारों उपशमकों के (8, 9, 10 और 11 वें गुणस्थान के) औपशमिक भाव हैं। चारों क्षपकों (8, 9, 10 और 12वें गुणस्थानवर्ती), सयोगकेवली और अयोगकेवली के क्षायिक भाव हैं। (स.सि., अ.1, सू.8)

प्र.2153 आगम में कौन-से गुणस्थान में अल्प-बहुत्व किस तरह से घटित होता है? या अल्प-बहुत्व उपशमक से प्रारम्भ क्यों होता है?

उत्तर क्योंकि उपशमकों की संख्या सबसे कम है। सामान्य की अपेक्षा तीनों उपशमक (8, 9, 10 वें गुणस्थानवर्ती) सबसे कम है जो अपने-अपने गुणस्थान के कालों में प्रवेश की अपेक्षा समान संख्या वाले हैं। अर्थात् कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक चौवन। उपशान्त कषाय जीव उतने ही हैं। उससे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थान के क्षपक संख्यात गुणे हैं। अर्थात् कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक एक सौ आठ हैं।

क्षीणकषाय वीतराग-छद्मस्थ उतने ही हैं अर्थात् कम-से-कम एक और उत्कृष्ट रूप से 108 हैं। सयोगकेवली और अयोग केवली प्रवेश की अपेक्षा समान संख्या वाले हैं। इनसे अपने काल में समुदित हुए (संगृहीत हुए) सयोग-केवली संख्यात गुणे हैं। इनसे अप्रमत्त-संयत संख्यात गुणे हैं। इनसे प्रमत्त-संयत संख्यात गुणे हैं। इनसे संयतासंयत असंख्यात गुणे हैं। इनसे सासादन सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात गुणे हैं। इनसे असंयत-सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। इनसे भी मिथ्यादृष्टि अनंत गुणे हैं।

प्र.2154 शुक्ल लेश्या वाले असंख्यात गुणे मिथ्यादृष्टियों से शुक्ल लेश्या वाले असंयत सम्यग्दृष्टि संख्यात गुणे क्यों हैं?

उत्तर क्योंकि शुक्ल लेश्या वाले मिथ्यादृष्टियों से अधिक संख्या शुक्ल लेश्या वाले ग्यारहवें स्वर्ग से लेकर

नवग्रैवेयक नवअनुदिश और पंचानुत्तर विमानों में रहने वाले असंयत सम्यग्दृष्टि देवों की होती है।

प्र.2155 अभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ पूर्व में होकर वही अवस्था बाद में न हो वहाँ उसका अभाव कहा जाता है। वस्तु का कभी सर्वथा अभाव नहीं होता। अतः भावान्तर रूप होना ही अभाव कहा जाता है। जैसे- किसी स्थल पर घट रखा था और फिर वहाँ से वह घट हटा लिया गया तो वहाँ के घट का अभाव हो गया।

प्र.2156 अभाव कितने प्रकार का होता है?

उत्तर अभाव चारप्रकार का होता है- 1. प्राग्-अभाव, 2.प्रध्वंस-अभाव, 3.अन्योन्य-अभाव और 4.अत्यन्तअभाव।

प्र.2157 प्रागभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ द्रव्य की वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में जो अभाव है उसे प्रागभाव कहते हैं। जैसे- वर्तमान दधी रूप पर्याय (अवस्था) का पूर्व की दुग्ध रूप पर्याय में जो अभाव है वह प्राग्-अभाव ही प्रागभाव कहलाता है। (अथवा कार्य का कारण में अभाव होना प्रागभाव कहलाता है।)

प्र.2158 प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय का जो अभाव है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं। जैसे- आगामी घृत-पर्याय में वर्तमान की दधि पर्याय का जो अभाव है वह प्रध्वंस-अभाव ही प्रध्वंसाभाव कहलाता है। (अथवा कार्य का स्वरूप लाभ के पश्चात् जो अभाव होता है प्रध्वंसाभाव कहलाता है।)

प्र.2159 अन्योन्याभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ एक द्रव्य की एक पर्याय का उसी द्रव्य की दूसरी पर्याय में जो अभाव है उसे अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे- पुद्गल की घट रूप पर्याय का पुद्गल की ही वस्त्र रूप पर्याय में जो अभाव है वह अन्योन्य-अभाव ही अन्योन्याभाव कहलाता है। (अर्थात् घट; वस्त्र नहीं और वस्त्र; घट नहीं है यही अन्योन्याभाव जानना चाहिए।)

प्र.2160 अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का जो अभाव है उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे- जीव द्रव्य का पुद्गल द्रव्य में और पुद्गल द्रव्य में जो जीव द्रव्य का अभाव होता है वह अत्यन्त-अभाव ही अत्यन्ताभाव कहलाता है।

प्र.2161 जब जीव और पुद्गलादि द्रव्यों का एक दूसरे में अत्यन्तअभाव है तो पुनः जीवों में पुद्गलादि के सम्बन्ध में आसक्ति या राग-द्वेष क्यों देखे जाते हैं?

उत्तर चूंकि, जीव और पुद्गलादि द्रव्यों में अत्यन्ताभाव है और वे निश्चय नय से भी भिन्न-भिन्न हैं। और व्यवहार नय से इनका सम्बन्ध भी आगम में बतलाया गया है, परन्तु जीव द्वारा पुद्गलादि अजीव द्रव्यों में अथवा शरीर एवं धनादि द्रव्यों में जो आसक्ति रूप राग-द्वेष पैदा होते हैं उसका मुख्य कारण मोह-

भाव है।

किन्तु यह भव्य प्राणी अगर मोह रूपी मदिरा को त्यागकर वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की शरण में संयम के पथ पर चल पड़े तो उसे अनादि कालीन कर्म की बेड़ियों और संसार के कारागृह से एक दिन मुक्ति निःसंदेह अवश्य ही मिलेगी और अधिक क्या कहें; वह भव्यात्मा अनन्त सुखों या अनन्त गुणों का भाजन भी बन जावेगा, मोक्ष पद पावेगा। धन्य... धन्य... धन्य।

ज्ञानी जन; भेद-विज्ञान के सम्बन्ध में कहते ही हैं कि-

जीव जुदा, पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार।
इसके आगे जो कहा, या ही का विस्तार॥

अंतिम मंगल

निकट हि, गोलाकोट के, खनियांधाना गाँव।
शीतकाल में शुभ मिली, पार्श्वप्रभो की छाँव॥

★★★

पच्चीस सौ पचासवाँ, वीर प्रभो निर्वाण।
शुभ आगम-अनुयोग का, पूर्ण-सुचिंतन मान॥

★★★

कृति आगम-अनुयोग यह, सुखद हुई संपूर्ण।
पढ़ें भवि पढ़वायेंगे, हों रत्नत्रय पूर्ण॥

★★★

'विद्यागुरु' ने की कृपा, संयम मिला सुपूर्ण।
'आर्जवता' से हो नमन, शिव पाऊँ संपूर्ण॥

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-1

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. आचरांग किन महानात्मा द्वारा उपदिष्ट है?
प्र. 2. आचारांग किन महान आत्मा द्वारा रचित है?
प्र. 3. किन विशेषताओं सहित आचारांग होता है?
प्र. 4. कौन-से प्रमुख अधिकारों से निबद्ध और अर्थों से गंभीर आचारांग है?
प्र. 5. चरणानुयोग का लक्षण जिनागम में किस रूप में कहा गया है?
प्र. 6. यम और नियम किसे कहते हैं?
प्र. 7. मुनि किन्हें कहते है?
प्र. 8. महाव्रत इतने महान क्यों कहलाते हैं?
प्र. 9. जैन साधु, साध्वी स्वहस्त से केशलोंच क्यों करते हैं?
प्र.10. मुनि रूप के चार चिह्न (लिंग) कौन-से माने गये हैं?
प्र.11. साधु तीन स्थान की भूमि देखकर आहार ग्रहण करते हैं, इसका अर्थ क्या है?
प्र.12. मुनिराज एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्त तक आहार ग्रहण करते हैं इसका क्या तात्पर्य है?
प्र.13. यतियों के (मुनियों के) जीवन में होने वाले छः काल कौन-से हैं?
प्र.14. यतियों के द्वारा त्याज्य तीन गारव (गौरव) कौन से हैं?
प्र.15. प्रवचन मातृका की असादना किस रूप होती है?
प्र.16. यति लोग जिन निर्यापक के पास आलोचना प्रकट करते हैं वे कैसे आचार्यों के गुणों से समन्वित होते हैं?
प्र.17. आवश्यक का लक्षण क्या है?
प्र.18. अचेलकत्व की परिभाषा क्या है?
प्र.19. पाँच इन्द्रिय निरोध किस तरह घटित होता है?
प्र.20. स्थिति भोजन मूलगुण से जीवन के अंत सम्बन्धी कौन-सा संकेत प्राप्त होता है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-2

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल को अनन्त संज्ञा कैसे दी है?
प्र. 2. संघ किसे कहते हैं?
प्र. 3. परीत संसारी कैसे होते हैं?
प्र. 4. भूख प्यासादिक की बाधाओं में क्षपक किस तरह का चिंतवन करे?
प्र. 5. काम, भोगों के सेवन में तृप्ति क्यों नहीं मिलती, इसका कोई उदाहरण दें?
प्र. 6. क्षपक को उत्कृष्ट रूप से, मोक्ष प्राप्ति में तीन भव कौन-से लगते हैं?
प्र. 7. क्षपक; अंतिम इच्छा रूप प्रशस्त निदान में क्या फल चाहता है?
प्र. 8. भेद-विज्ञान को प्राप्त कराने वाला मंत्र कौन-सा है?
प्र. 9. सच्चे; सल्लेखना धारक व आराधक कौन हैं?
प्र. 10. विज्ञान का अर्थ चारित्र क्यों लिया गया है?
प्र.11. समाधि के समय कौन-सी शरणों का विचार करना चाहिए?
प्र.12. तीर्थंकर महावीर की शरण का चिंतवन किस तरह करना चाहिए?
प्र.13. सल्लेखना के समय एक बीज पद की शरण से क्या तात्पर्य है?
प्र.14. सल्लेखना के समय क्षपक किन भावों का त्याग कर देता है?
प्र.15. स्वध्याय-मरण से क्या तात्पर्य है?
प्र.16. बोधि की सुलभता किस तरह से होती है?
प्र.17. उत्तमार्थ प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?
प्र.18. यदि मरणकाल में परिणाम बिगड़ जायें तो क्या गति होती है?
प्र.19. किल्विष भावना का स्वरूप एवं फल क्या है?
प्र.20. शिष्य द्वारा गुरु से निवेदित गुप्त दोषों को रहस्य में रखना गुरु का कौन-सा गुण है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-3

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. औघिक समाचार में तथाकार क्या कहलाता है?

प्र. 2. आचार्य कुन्दकुन्द देव ने दीक्षा गुरु व निर्यापक किसको कहा है?

प्र. 3. सूत्र किसे कहते हैं?

प्र. 4. उपसंपत् क्या है? और वह कैसे करना चाहिए?

प्र. 5. औघिक समाचार के तथाकार में वाचना किसको कहते हैं?

प्र. 6. छह आयतन कौन-से होते हैं?

प्र. 7. निषेधिका और आसिका कहाँ-कहाँ की जाती है?

प्र. 8. प्रवर्तक मुनि कौन कहलाते हैं?

प्र. 9. निर्ग्रन्थ मुनि या आचार्य परमेष्ठी को आयतन किस अपेक्षा से कहा है?

प्र. 10. तत्त्व ज्ञाता होते हैं आचार्य परमेष्ठी, इसका अर्थ क्या है?

प्र.11. संविग्न या संवेगी किन्हें कहते हैं?

प्र.12. आर्यिकाएँ वसतिका में किस प्रकार काल व्यतीत करती हैं?

प्र.13. देववंदना, गुरुवंदना आदि क्रियाओं में आर्यिकाएँ किस तरह जाती हैं?

प्र.14. स्वाध्याय में परिवर्तन का अर्थ क्या है?

प्र.15. मुनियों की प्रतिक्रमण क्रियायें कितने प्रकार की हैं?

प्र.16. आर्यिकाएँ आचार्य, उपाध्याय आदि की वंदना कितने दूर से करती हैं?

प्र.17. जीवदया के निमित्त मुनिगणों की शुद्धियाँ कितने प्रकार की हैं?

प्र.18. मुनियों के उपकरण कौन-से होते हैं?

प्र.19. मुनियों के संस्तर कितने प्रकार के होते हैं?

प्र.20. आचार्य परमेष्ठी के अनुग्रह गुण का अर्थ क्या है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-4

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. जिनागम में दस प्रकार के सत्य कौन-से हैं?
प्र. 2. विस्मृत हुआ कौन-सा ज्ञान पर भव में केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है?
प्र. 3. सत्य आदिक में साधु-जनों को कौन-से वचन बोलना चाहिए?
प्र. 4. स्वाध्याय से साधुओं के लिए होने वाले तात्कालिक लाभ कौन-से हैं?
प्र. 5. श्रावकों द्वारा बनाये गये आहार को करते हुए साधु किस तरह निर्दोष कहलाते हैं?
प्र. 6. मुनिराज किस तरह का आहार ग्रहण करते हैं?
प्र. 7. मुनिवर किन कारणों से आहार ग्रहण नहीं करते हैं?
प्र. 8. मुनिराज किस लिए आहार ग्रहण करते हैं?
प्र. 9. कोई नई वस्तु से या पदार्थ से निर्मित आहार सर्व प्रथम मुनि को देने से क्या दोष है?
प्र. 10. चौदह मल दोष कौन-से हैं?
प्र.11. असंयतों के साथ साधु को आहार देने में कौन-सा दोष है और क्यों?
प्र.12. मुनियों के योग्य निर्दोष आहार कैसा होता है?
प्र.13. अतिथि संविभाग करने से श्रावक को कौन-सा फल प्राप्त होता है?
प्र.14. क्या अशुभ कार्यों में ही मुनि को आहार त्याग करना चाहिए?
प्र.15. पिण्ड-शुद्धि कितने प्रकार की होती है?
प्र.16. ज्योतिषज्ञान बताकर आहार प्राप्त करना कौन-सा दोष है?
प्र.17. औषध उपचार कर आहार प्राप्त करना कौन-सा दोष है?
प्र.18. अप्रधान दाता या (गुरु सेवा से वेतन चहेता) से आहार लेने में कौन-सा दोष है?
प्र.19. बालक आदि को सजाकर आहार उत्पन्न करवाने में कौन-सा दोष है?
प्र.20. मुनिराज किन कारणों से आहार ग्रहण करते हैं?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-5

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. संस्कृत/प्राकृत भक्तियों के अन्त में पढ़ी जाने वाली चूलिका का अर्थ क्या है?

प्र. 2. प्रतिमा-योग किसे कहते हैं?

प्र. 3. प्रतिक्रमण में वर्णित पाप सूत्रों में गान्धर्व सूत्र किसे कहा है?

प्र. 4. असमाधि के स्थानों में रादीणीय पडिहासीका अर्थ क्या है?

प्र. 5. सूरधमाण भोजी किसे कहते हैं?

प्र. 6. थेर विवाद तराए का अर्थ क्या है?

प्र. 7. चित्र कर्मादि सूत्र को पाप सूत्र क्यों कहा जाता है?

प्र. 8. जीव का लक्षण क्या है?

प्र. 9. बादर और सूक्ष्मकायिक जीव किसके आधार से रहते हैं?

प्र. 10. जीवादि पदार्थों को सम्यक्त्व कैसे कहा गया है?

प्र.11. मोक्ष क्या है?

प्र.12. द्रव्यानुयोग का लक्षण क्या है?

प्र.13. बंध का लक्षण क्या है?

प्र.14. पुण्य किसे कहा जाता है?

प्र.15. किण्व वनस्पति किसे कहा जाता है?

प्र.16. संमूर्च्छिम का लक्षण क्या है?

प्र.17. शुद्धाग्नि किसे कहा जाता है?

प्र.18. मूल वनस्पति क्या है?

प्र.19. पृथ्वी के चार भेद कौन-से हैं?

प्र.20. निर्जरा का लक्षण क्या है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-6

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. अनुजीवी गुणों का लक्षण क्या है एवं वे कौन-से हैं?
प्र.2. भाव-कर्म किसे कहते हैं?
प्र.3. द्रव्य-कर्म किसे कहते हैं?
प्र.4. कर्म किसे कहते हैं?
प्र.5. पौद्गलिक वर्गणाओं का स्वरूप क्या है, और वे कैसी हैं?
प्र.6. पुण्यास्रव और पापास्रव के कारण क्या हैं?
प्र.7. रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि रूप पुद्गल किसके कारण हैं?
प्र.8 परमाणु किसे कहते हैं?
प्र.9. रूपी पुद्गल के चार भेद कौन-से हैं?
प्र.10. अष्ट कर्मों का जघन्य प्रदेश बन्ध किस जीव के कब होता है?
प्र.11. आबाधा का लक्षण क्या है?
प्र.12. कर्म प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध कब होता है?
प्र.13. उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेश-बन्ध की योग्यता रूप सामाग्री क्या है?
प्र.14. मूल प्रकृति रूप ज्ञानावरणादिक कर्मों का जघन्य स्थितिबंध कितना है?
प्र.15. ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध किस गुणस्थान में होता है?
प्र.16. व्युच्छित्ति का अर्थ क्या होता है?
प्र.17. बंध, उदय और सत्त्व का वर्णन आगम में किस विवक्षा से है?
प्र.18. कर्म बन्ध का स्वरूप क्या है?
प्र.19. स्वोदय बन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं?
प्र.20. कर्म-बन्ध के काल में ज्ञानावरणादि कर्मों में विभाग किस तरह होता है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-7

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. कर्मों के उदय और उदीरणा में क्या अन्तर है?
प्र.2. मूल प्रकृतियों का उदय कौन-कौन से गुणस्थानों तक होता है?
प्र.3. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति कौन-सी प्रकृतियों की है?
प्र.4. कर्म सत्त्व का अर्थ क्या है?
प्र.5. गुणस्थानों की अपेक्षा कर्म सत्त्व कैसे समझना चाहिए?
प्र.6. अणुव्रतों, महाव्रतों का लाभ कौन-कौन सी आयु बंधने के बाद नहीं होता है?
प्र.7. क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कौन-सी भूमि में हो सकती है?
प्र.8. नवीन आयु का बंध किस जीव को नहीं होता है?
प्र.9. क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होती है?
प्र.10. क्षायिक सम्यग्दर्शन में कौन-सी सप्त प्रकृतियों का क्षय होता है?
प्र.11. अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के कितनी कर्म प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है?
प्र.12. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध छूट जाता है?
प्र.13. प्रमत्त संयत गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है?
प्र.14. सयोगकेवली गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों का अबंध है?
प्र.15. षट्खण्डागम ग्रन्थानुसार किस गुणस्थान में कितने कर्म-प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?
प्र.16. आहारकद्विक का उदय कौन-से गुणस्थान में होता है?
प्र.17. तीर्थंकर प्रकृति का उदय कौन-कौन से गुणस्थान में होता है?
प्र.18. आनुपूर्वी का उदय किन-किन गुणस्थानों में होता है?
प्र.19. संज्वलन लोभ का उदय किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होता है?
प्र.20. नरकायु और देवायु का उदय किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होता है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-8

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. मोक्ष और संसार के कारण रूप ध्यान कौन कौन से हैं?
प्र.2. कर्म क्षय के कारण रूप ध्यान का स्वरूप क्या है?
प्र.3. नयों के प्रकरण में एवंभूतनय किसे कहते हैं?
प्र.4. व्यवहार नय का स्वरूप क्या है?
प्र.5. व्यंजन पर्याय कौन-से द्रव्यों में होती है?
प्र.6. जीव द्रव्य की विभाव अर्थ पर्यायें कौन-सी हैं बतलाओ?
प्र.7. पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय बतलायें?
प्र.8. पुद्गल द्रव्य की विभाव अर्थ पर्यायें कौन-कौन-सी हैं?
प्र.9. आगम में नय का लक्षण क्या है?
प्र.10. विकलप्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहा जाता है?
प्र.11. बोधितबुद्ध अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य है?
प्र.12. सिद्धों का क्या संसार में अवतार संभव है?
प्र.13. सर्वज्ञ और आत्मज्ञ का कथन किस नय से है?
प्र.14. धर्मध्यान के स्वामी कौन होते हैं?
प्र.15. निदान नामक आर्त्तध्यान मुनि के संभव है क्या?
प्र.16. संस्थान विचय धर्मध्यान किसे होता है?
प्र.17. परिग्रहानन्द नामक रौद्रध्यान का स्वरूप क्या है?
प्र.18. अनिष्ट संयोग ध्यान का लक्षण क्या है?
प्र.19. पदस्थ ध्यान में क्या किया जाता है?
प्र.20. पंच धारणाएँ कौन-कौन सी हैं?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र-9

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?
प्र.2. विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहा गया है?
प्र.3. त्रिकाल गोचर निवास क्षेत्र को क्या कहते हैं?
प्र.4. मंगलाचरण क्या है?
प्र.5. मंगल के पर्यायवाची नाम क्या हैं?
प्र.6. संश्लेष सम्बन्ध का लक्षण क्या है?
प्र.7. अरिहंतों के नमस्कार में केवल पुण्यबन्ध है या निर्जरा भी?
प्र.8. व्यवहार नय को असत्य कहना उचित है क्या?
प्र.9. संयोग सम्बन्ध की परिभाषा क्या है?
प्र.10. बुद्धिमान लोग कहाँ-कहाँ पर मंगलाचरण करना आवश्यक कहते हैं?
प्र.11. शास्त्र नाम की व्याख्या आचार्यों द्वारा किस तरह से की जाती है?
प्र.12. शुभोपयोग से मात्र पुण्य बन्ध होता है या निर्जरा भी होती है?
प्र.13. किसका नाम तादात्म सम्बन्ध है?
प्र.14. स्थावरों से लेकर त्रसों में असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव मिथ्यादृष्टि क्यों हैं?
प्र.15. शास्त्र प्रवचन के पहले शास्त्र परिमाण की व्याख्या गुरु कैसे करते हैं?
प्र.16. शुद्ध निश्चय नय का लक्षण क्या है?
प्र.17. केवली को संज्ञी असंज्ञी कहा जा सकता है क्या?
प्र.18. सोलहवें स्वर्ग के देव क्या तीसरी पृथ्वी तक जाकर संबोधन दे सकते हैं?
प्र.19. आहार के प्रकार आगम-अनुयोग में कितने बतलाये गये हैं?
प्र.20. स्थिति के प्रकरण में आयु और भव स्थिति किसे कहा गया है?

आधार : आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'आगम-अनुयोग', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सिद्धांत-भूषण पदवी हेतु परीक्षार्थी के लिए नियमावली

1. उपर्युक्त पदवी हेतु परीक्षार्थी की उम्र कम-से-कम 13 वर्ष पूर्ण और अधिक-से-अधिक आंखों की दृष्टि और लेखनी के स्थिर रहने तक रहेगी।
2. परीक्षार्थी अवश्य रूप से सप्त-व्यसनों अथवा मद्य, मधु, मांस का त्यागी एवं तीर्थंकर व उनकी जिनवाणी का श्रद्धालु होना चाहिए।
3. आगम-अनुयोग कृति सम्बन्धी प्राप्त होने वाले प्रश्नोत्तरों तथा अंत में दिये गये प्रश्न-पत्र को स्वयं पढ़कर हल करें और प्रेषित करें तथा अन्य जनों तक भी परीक्षा में भाग लेने की जानकारी अवश्य देने का पूर्ण प्रयास करें। (इस कार्य हेतु इंटरनेट का भी उपयोग कर सकते हैं।)
4. परीक्षार्थी के लिए यह आवश्यक होगा कि वे प्रश्नोत्तरी पढ़कर स्वयं साफ-सुथरे रजिस्टर के पेपर्स पर पूर्ण शुद्धता और विनयपूर्वक उत्तर लिखकर निम्नलिखित पते पर भेजने का उपक्रम करें।
5. उत्तर पुस्तिका पर अंक (नम्बर) देने का भाव उत्तर-पुस्तिका में वर्णित उत्तरों की शुद्धता और लिखावट आदि पर निर्भर करेगा।
6. परीक्षार्थी से ऑनलाइन या फोन द्वारा उत्तर पूछने की पहल भी की जा सकती है अतः अपने पते के साथ ई-मेल एड्रेस या मोबाईल/फोन नं. अवश्य लिखें।
7. उत्तर लिखकर काट दिये जाने पर या घिस दिये जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।
8. परीक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर स्वतः अपनी लिखावट में ही लिखें, अन्य किसी के नाम से उत्तर पुस्तिका भरकर प्रेषित किये जाने पर हमारे परीक्षा बोर्ड द्वारा उसे पदवी हेतु मान्य नहीं किया जावेगा।
9. किसी भव्य द्वारा उनके आग्रह किये जाने पर उन्हें आगम-अनुयोग प्रश्नोत्तरी व प्रश्नपत्र उपलब्ध कराये जाने की व्यवस्था परीक्षा-बोर्ड द्वारा की जा सकेगी।
10. सम्यग्ज्ञानभूषण एवं सिद्धांतभूषण पदवी सम्बन्धी उत्तीर्णता प्राप्त करने वाले भव्य गणों को आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट, भोपाल के द्वारा अधिक से अधिक दो या चार वर्षों में प्रमाण पत्र सह सम्मानित किया जावेगा।
11. प्रश्नोत्तरी पुस्तक व प्रश्न-पत्र मंगवाने हेतु परीक्षा-बोर्ड के निम्न लिखित पदवीधारी से सम्पर्क करें:-

भाव-विज्ञान पत्रिका के प्रधान सम्पादक	आर्जव तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट के मंत्री	आर्जव तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट के अध्यक्ष
डॉ. अजित जैन	प्रो. सुधीर जैन	श्री राजेन्द्र जैन
मो. 7222963457	मो. 8839242707	मो. 7049004653

12. उत्तर पुस्तिका डाक/पोस्ट से निम्न पते पर प्रेषित करें:-
सम्पादक, भाव-विज्ञान, 114, डीके काटेज, ई-8 एक्सटेंशन,
दानापानी रेस्टोरेंट के पास, बावड़िया कला, भोपाल 462026 (म.प्र.)

आगम अनुयोग ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्रन्थ सूचि

संकेताक्षर	ग्रंथ का नाम	ग्रंथकार
1. मू.चा.	मूलाचार	आचार्य वट्टकेर
2. जै.सं.	जैनागम संस्कार	आचार्य आर्जवसागर
3. प्र.सा.	प्रवचनसार	आचार्य कुंदकुंद
4.क.दी.	करणानुयोग दीपक	पं.डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
5. गो.सा.जी.का.	गोम्मटसार जीवकाण्ड	आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
6. गो.सा.क.का.	गोम्मटसार कर्मकाण्ड	आचार्य देवसेन
7. न.च.प्र.	नय-चक्र प्रकरण	श्री माइल्ल धवल
8. त्रि.महा.	त्रिकालवर्ती महापुरुष	संकलन- (मुनि आदिसागर सेडवाल)
9.ष.ख.ग्रं.	षट्खण्डागम ग्रंथ	आ.पुष्पदन्त भूतबली
10. ज.ध.	जयधवला पुस्तक	आ.वीरसेन स्वमी
11. स.सि.	सर्वार्थसिद्धि	आचार्य पूज्यपाद
12. ध.पु.	धवला पुस्तक	आ.वीरसेन स्वमी
13. म.पु.	महापुराण	आ. जिनसेन स्वामी
14. त्रि.सा.	त्रिलोकसार	आ. नेमिचन्द्र
15. आ.पु.	आदिपुराण	आ.जिनसेन स्वामी
16. जै.सि.कोश	जैनेन्द्र सिद्धांत कोश	जिनेन्द्र वर्णी
17.मु.का.	मुनिसुव्रत का.	कविवर अर्हद्दास
18. ति.प.	तिलोयपण्णत्ति	आ. यतिवृषभ
19. क.प्र.	करणानुयोग प्रवेशिका	पं. कैलासचन्द्र शास्त्री
20. स्वा.का.	स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा	स्वामिकार्तिकेय
21. ह.पु.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन स्वामी
22. पं.सं.	पंचसंग्रह	श्रीचन्दर्षि महत्तर
23. आ.प.	आलाप पद्धति	आ.देवसेन

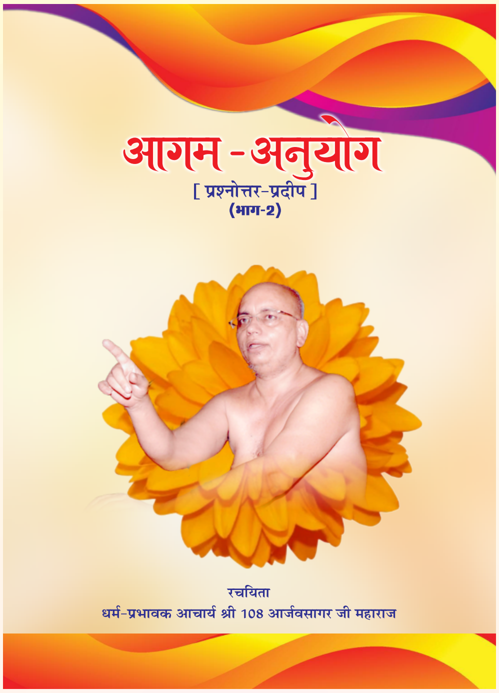

बहुमूल्य कृति : आगम-अनुयोग

'आगम-अनुयोग' एक ऐसी अनूठी, अद्वितीय (unique) कृति है; जिसमें जैन धर्म के चारों अनुयोगों का सार समाहित है। यह बहुमूल्य कृति पाठशालाओं एवं सामूहिक स्वाध्याय के लिये अत्यंत मूल्यवान एवं बहुपयोगी है। इस कृति में जैनधर्म की लोक-अलोक की विस्तृत जानकारी का समावेश है। 'आगम-अनुयोग' प्रश्नोत्तर प्रदीप कृति रूप में अत्यंत सरल शब्दों में आगम को सम्यग्ज्ञान वर्धिनी होकर कल्याणकारी रूप मोक्ष रूपी शिवालय को प्राप्त करने में नौका सदृश है।

इसके स्वाध्याय के माध्यम से भव्य लोग सम्यग्ज्ञान-भूषण एवं सिद्धांत भूषण पदवी को भी प्राप्त कर सकते हैं।

अतिशय क्षेत्र महावीर जी (राजस्थान)